सुन्दर साहित्य-माला

१ पद्यप्रसून (महाकवि 'हरिऔध')	...	१।)
२ दागे जिगर (श्रीरामनाथ 'सुमन')	...	१।)
३ निर्माल्य (श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी')		१)
४ सौरभ (श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', एम० ए०)	...	१)
५ कविरत्न 'मीर' (श्रीरामनाथ 'सुमन')	...	१।।।)
६ बिहार का साहित्य (दस साहित्यिकों के भाषण)	...	१।।।)
७ देहाती दुनिया (श्रीशिवपूजन सहाय)	...	१॥)
८ प्रेमपथ (श्रीभगवती प्रसाद बाजपेयी)	...	२)
९ नवीन वीन (स्वर्गीय लाला भगवान 'दीन')	...	२)
१० प्रेमिका (स्वर्गीय पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा)	...	२॥)
११ विमाता (श्रीअवधनारायण लाल)	...	२)
१२ एकतारा (श्रीमोहनलाल महतो गयावाल 'वियोगी')		१)
१३ विभूति (श्रीशिवपूजन सहाय)	...	२)
१४ अशोक (श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०)	...	१।)
१५ नवपल्लव (श्रीविनोदशंकर व्यास)	...	१।)
१६ सुधासरोवर (श्रीदामोदर सहाय सिंह 'कविकिङ्कर')	...	१)
१७ किसलय (श्रीजनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०)		१॥)
१८ दुर्गादत्त परमहंस (प्रोफेसर अक्षयवट मिश्र)	...	१॥)
१९ वाग्विलास (स्वर्गीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी)		१॥)
२० रसकलस (महाकवि 'हरिऔध')	...	४)
२१ कैलास-दर्शन (श्रीशिवनन्दन सहाय, बी० ए०)	...	१॥)
२२ आदर्श राघव (स्वर्गीय उदित नारायण दास, बी० ए०, बी० एल०)		२)
२३ उत्तराखंड के पथ पर (प्रोफेसर मनोरंजन, एम० ए०)		२)
२४ कामना (स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद')	...	१॥)
२५ आवारे की यूरोप-यात्रा (डाक्टर सत्यनारायण, पी०-एच० डी०)		२॥)
२६ छाया (स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद')	...	१॥)
२७ कानन-कुसुम (,, ,,)	...	१)
२८ रेणुका (श्री'दिनकर')	...	२)
२९ शिकारियों की सच्ची कहानियाँ (श्रीशिवनाथसिंह शांडिल्य)		१॥)

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

पारिजात

आध्यात्मिक और आधिभौतिक विविध-विषय-विभूषित एक महाकाव्य

साहित्यवाचस्पति, साहित्य-रत्न, कवि-सम्राट्

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

विरचित

हो तरंगायमान कविमानस
सिन्धु-सम भाव-रत्न जनता है

स्थान बदले सुधा गरल मुक्ता
स्वाति वर वारि विन्दु बनता है

—'हरिऔध'

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

विषय-सूची

प्रथम सर्ग

द्वितीय सर्ग

तृतीय सर्ग

दृश्य जगत्

नवम सर्ग

सांसारिकता

दशम सर्ग

स्वर्ग

एकादश सर्ग

कर्मविपाक

द्वादश सर्ग

प्रलय-प्रपंच

त्रयोदश सर्ग

कान्त कल्पना

विषय	पृष्ठसंख्या

विषय			पृष्ठसंख्या

पंचदश सर्ग

परमानन्द

विषय			पृष्ठसंख्या
८ विवाह	...	...	४६०—४६१
९ धर्म-धारण	...	...	४६१—४६२
१० उद्‍बोधन	...	...	४६१—४७९

पंचदश सर्ग

परमानन्द

चतुर्दश सर्ग

सत्य का स्वरूप

विषय		पृष्ठसंख्या

पंचदश सर्ग

परमानन्द

पारिजात

प्रथम सर्ग

[१]

गेय गान

शार्दूल-विक्रीडित

आराधे भव-साधना सरस हो साधें सुधासिक्त हों।
सारी भाव-विभूति भूतपति की हो सिद्धियों से भरी।
पाता की अनुकूलता कलित हो धाता विधाता बने।
पाके मादकता-विहीन मधुता हो मोदिता मेदिनी।१।
सारे मानस-भाव इन्द्रधनु-से हों मुग्धता से भरे।
देखे श्यामलता प्रमोद-मदिरा मेधा-मयूरी पिये।
न्यारी मानवता सुधा बरस के दे मोहिनी मंजुता।
भू को भव मनोज्ञ-मूर्त्ति कर दे माधुर्य-मुक्तामयी।२।

वसंत-तिलका

तो क्यों न लोकहित लालित हो सकेगा।
जो लालसा ललित भाव ललाम होंगे।
तो क्यों अलौकिक अनेक कला न होगी।
जो कल्प-वेलि सम कामद कल्पना हो।३।

पारिजात

हरिऔध

पारिजात

प्रथम सर्ग

[१]

गेय गान

शार्दूल-विक्रीडित

आराधे भव-साधना सरस हो साधें सुधासिक्त हों।
सारी भाव-विभूति भूतपति की हो सिद्धियों से भरी।
पाता की अनुकूलता कलित हो धाता विधाता बने।
पाके मादकता-विहीन मधुता हो मोदिता मेदिनी।१।
सारे मानस-भाव इन्द्रधनु-से हों मुग्धता से भरे।
देखे श्यामलता प्रमोद-मदिरा मेधा-मयूरी पिये।
न्यारी मानवता सुधा बरस के दे मोहिनी मंजुता।
भू को मेघ मनोज्ञ-मूर्त्ति कर दे माधुर्य-मुक्तामयी।२।

वसंत-तिलका

तो क्यों न लोकहित लालित हो सकेगा।
जो लालसा ललित भाव ललाम होंगे।
तो क्यों अलौकिक अनेक कला न होगी।
जो कल्प-बेलि सम कामद कल्पना हो।३।

द्रुतविलम्बित

सुजनता जनता-हितकारिता।
मधुरता मृदुता यदि है भली।
मनुजता-रत सादर तो सुनें।
सुकवि की कलिता कवितावली।४।

विकल है करती यदि काल की।
कलि-विभूति-मयी विकरालता।
बहु समाहित हो बुध तो सुनें।
हितकरी 'हरिऔध'-पदावली।५।

शार्दूल-विक्रीडित

है आलोकित लोक-लोक किसकी आलोक-माला मिले।
पाते हैं उसको सुरासुर कहाँ जो सत्य सर्वस्व है।
है संयोजक कौन सूर-शशि का, स्वर्गीय सम्पत्ति का।
कोई क्यों उसको असार समझे, संसार में सार है।६।
न्यारी शान्ति मिली कहीं विलसती, है क्रान्ति होती कहीं।
प्याला है रस का कहीं छलकता, है ज्वाल-माला कहीं।
है आहार, विहार, वैभव कहीं; संहार होता कहीं।
है अत्यन्त अकल्पनीय भव की क्रीडामयी कल्पना।७।

---

[२]

दिव्य दशमूर्त्ति

गीत

जय-जय जयति लोक-ललाम ।

सकल मंगल-धाम ।

भरत भू को देख अभिनव भाव से अभिभूत ।
राममोहन रूप धर भ्रम-निधन-रत अविराम ।१।
विविध नवल विचार-विचलित युवक-दल अवलोक ।
रामकृष्ण स्वरूप में अवतरित बन विश्राम ।२।
विपुल आकुल बाल-विधवा बहु विलाप विलोक ।
विदित ईश्वरचन्द्र वपु धर स्ववश-कृत विधि वाम ।३।
वेद-विहित प्रथित सनातन-पंथ मथित विचार ।
दयानन्द शरीर धर शासन-निरत वसु याम ।४।
पतन-प्राय समाज-शोधन की बताई नीति ।
विहर रानाडे-हृदय में विदित कर परिणाम ।५।
एक सत्ता मंत्र से दी धर्म्म को ध्रुव शक्ति ।
रामतीर्थ स्वरूप धर उर-हार कर हरि-नाम ।६।
दलित वंचित व्यथित महि में की अचिन्तित क्रान्ति ।
बाल-गंगाधर तिलक बन कर अलौकिक काम ।७।
राजनीति-विधान की विधि-हीनता की हीन ।

गोखले गौरवित तन धर विरच सित मति श्याम ।८।
तिमिर-पूरित भरत-भू में ज्योति भर दी भूरि ।
मदनमोहन मूर्त्ति धर बनकर भुवन-अभिराम ।९।
विविध बाधा मुक्ति-पथ की शमन की रह शान्त ।
मंजु मोहन-चन्द में रम कर विहित संग्राम ।१०।
मातृ-महि-हित-रत करे हर हृदय कुत्सित भाव ।
द्रवित उर 'हरिऔध' गुंफित दिव्य जन गुणग्राम ।११।

शार्दूल-विक्रीडित

नाना कार्य-विधायिनी निपुणता नीतिज्ञता विज्ञता ।
न्यारी ज़ाति-हितैपिता सबलता निर्भीकता दक्षता ।
सच्ची सज्जनता स्वधर्म-मतिता स्वच्छन्दता सत्यता ।
दिव्यों की दशमूर्त्ति देश-जन को देती रहे दिव्यता ।१२।

---

[३]

कामना

गीत

विधि-विधान हो मधुमय मृदुल मनोहर ।
आलोकित हो लोक अधिकतर ।
हो काल विपुल अनुकूल सकल कलि-मल टले ।१।
विमल विचार-विवेक-वलित हो मानस ।

पाये तेज दलित हो तामस।
मंजुल-तम ज्ञान-प्रदीप हृदय-तल में वले।२।
हो सजीवता सर्व जनों में संचित।
करे न कोमल प्रकृति प्रवंचित।
भावे भावुकता भूति भाव होवें भले।३।
कर न सके भयभीत किसी को भावी।
साहस वने सुधारस-स्रावी।
दिखलावे सवल समोद दुखित दल दुख दले।४।
मद-रज से हों मानस-मुकुर न मैले।
बंधु-भाव वसुधा में फैले।
मानवता का कर दलन न दानवता खले।५।
मर्म हृदय का हृदयवान् जन जाने।
ममता पर ममता पहचाने।
वन धर्म धुरंधर लोक-कर्म-पथ पर चले।६।
जगा जीवनी-ज्योति जातियाँ जागें।
अनुरंजन-रत हो अनुरागें।
भव-हित-पलने में देश-प्रेम प्रिय शिशु पले।७।
विपुल विनोदित वने सुखित हो पावे।
सुर-वांछित वैभव अपनावे।
पहुँचे पुनीत तम सुजन देव-पादप-तले।८।

द्रवित मोम सम पवि मानस हो जावे।
कूटनीति तृण-राशि जलावे।
होवे हित-पावक प्रखर प्रेम-पंखा झले।९।
छिले न कोई उर न क्षोभ छू जावे।
शान्ति-छटा छिटकी दिखलावे।
छल करके कोई छली न क्षिति-तल को छले।१०।
सब विभेद तज भेद-साधना जाने।
महामंत्र भव-हित को माने।
अभिमत फल पाकर साधक जन फूले-फले।११।

शिखरिणी

दिवा-स्वामी होवे रुचिर रुचिकारी दिवस हो।
दिशाएँ दिव्या हों सरस सुखदायी समय हो।
मयंकाभा होवे सित-तम महा मंजु रजनी।
सुधा की धारा से धुल-धुल धरा हो धवलिता।१२।
भले भावों से हो भरित भव भावी सबलता।
स्वभावों को भावे भुवन-भयहारी सदयता।
सदाचारों द्वारा सफलित बने चित्त-शुचिता।
सुधारों में होवे सुरसरि-सुधा-सी सरसता।१३।

---

[४]

उमंग-भरे युवक

गीत

हैं भूतल-परिचालक प्रतिपालक ए।
तोयधि-तुंग-तरंग युवक-उमंग-भरे।१।
हैं भव-जन-भय-भंजन मन-रंजन ए।
बंधन-मोचन-हेतु अवनि में अवतरे।२।
हैं अनुपम यश-अंकित अकलंकित ए।
लोक अलौकिक लाल मराल विरद वरे।३।
हैं दानव-दल-दण्डन खल-खंडन ए।
अरि-कुल-कंठ-कुठार अकुंठित व्रत धरे।४।
हैं नर-पुंगव नागर सुखसागर ए।
मनुज-वंश-अवतंस सरस रुचि सिर-धरे।५।
हैं जनता-संजीवन जग-जीवन ए।
पीड़ित-जन-परिताप-तप्त पथ पौसरे।६।
हैं समाज-सुख-साधक दुख-बाधक ए।
देश-प्रेम-प्रासाद प्रभावित फरहरे।७।
हैं नवयुग-अधिनायक प्रिय पायक ए।
वसुधा-विजयी वीर विजय-प्रद पैंतरे।८।

हैं सुविचार-प्रचारक परिचारक ए।
सब सुधार-आधार-धरा-पादप हरे।९।
हैं पविता-परिचायक शित शायक ए।
सब पदार्थ-सर्वस्व स्वार्थ-परता परे।१०।

वंशस्थ

सदैव होवें समयानुगामिनी।
प्रसादिनी मानवतावलम्बिनी।
गरीयसी, गौरविता, महीयसी।
यवीयसी हों युवक-प्रवृत्तियाँ।११।
प्रफुल्ल हों, पीवर हों, प्रवीर हों।
प्रवीण हों, पावन हों, प्रबुद्ध हों।
विनीत हों, वत्सलता-विभूति हों।
वसुंधरा-वैभव बाल-वृन्द हों।१२।

वसंत-तिलका

भूलोक-भूति भवसिद्धि-मयी मनोज्ञा।
सारी धरा-विजयिनी कल-कीर्त्ति कान्ता।
सम्पत्तिदा जन-विपत्ति-विनाश-मूर्त्ति।
होवे पुनीत प्रतिपत्ति युवा जनों की।१३।
धीरा प्रशान्त अति कान्त नितान्त दिव्या।
हिंसा-विहीन सरसा भव-वांछनीया।

संसार-शान्ति अवनी नवनी समाना ।
हो पूत-भाव-जननी जनताभिलाषा ।१४।
हो उक्ति मंजु अनुरक्ति प्रवृत्ति पूत ।
आसक्ति उच्च भव-भक्ति-विरक्ति-हीन ।
बाधामयी विषमता क्षमता-विनाशी ।
हो सिद्ध-भूत समता ममता युवा को ।१५।
भूले न लोक-हित मंत्र-मदांध हो के ।
पी के प्रमाद-मदिरा न बने प्रमादी ।
पाके महान पद मानवता न खोवे ।
होवे न मत्त बहु मान मिले मनस्वी ।१६।
दे दे विभा विहित नीति विभावरी को ।
पाले कुमोदक-समान प्रजाजनों को ।
सींचे सुधा बरस के अरसा रसा को ।
सच्चा सुधाधर बने वसुधाधिकारी ।१७।

---

[५]

भारत-भूतल

शिखरिणी

सिता-सी साधें हों सुकथन सुधा से मधुर हो ।
अछूते भावों से भर-भर बने भव्य प्रतिभा ।

रसों से सिक्त हो पुलकित करे सूक्ति सबको।
विचारों की धारा सरस सरि-धारा-सदृश हो।१।

गीत

जय भव-वंदित भारत-भूतल।
शिर पर शोभित कलित क्रीट सम विलसित अचल हिमाचल।१।
कंठ-लग्न मुक्ता-माला-इव मंजुल सुर-सरि-धारा।
होता है विधौत पग पावन पूत पयोनिधि द्वारा।२।
मणि-गण-मंडित कान्त कलेवर तरु कोमल दल श्यामल।
सुधा-भरित नाना फल-संकुल सफलीकृत वसुधातल।३।
मधु-विकास-विकसित बहु सरसित शरद सितासित सुन्दर।
सुरभित मलय-समीर-सुसेवित सुखनिधि मंजुल मंदर।४।
नव-नव उषा-राग-आरंजित मन-रंजन घन-माली।
राका रजनी आयोजन रत लोकोत्तर छविशाली।५।
रुचिर पुरन्दर-चाप-विभूपित तारक-माला-सज्जित।
रविकर-निकर-कलित-आलोकित चन्द्र-चारुता-मज्जित।६।
नन्दन-वन-समान उपवन-मय चन्दन-तरु-चयधारी।
लोक ललित लतिका कर-लालित ललामता अधिकारी।७।
खग-कुल-कलरव-कान्त कोकिला-आकुल-नाद-अलंकृत।
मुग्धकरी कुसुमावलि-पूरित अलि-झंकार-सुझंकृत।८।
मनभावन महान महिमामय पावन पद्-परिचायक।

सुरपुर-सम सम्पन्न दिव्य-तम सप्तपुरी-अधिनायक ।९।
सकल अमंगल-मूल-निकंदन भव-जन-मंगलकारी ।
प्रेम-निलय 'हरिऔध' मधुर-तम मानस-सदन-विहारी ।१०।

द्रुतविलम्बित

वृषभ-वाहन है शशि-मौलि है ।
वर-विभूति-विराजित गात है ।
सुर-तरंगिणि है शिर-मालिका ।
भरत-भूतल ही भव-मूर्त्ति है ।११।
सतत है अवनीतल-रंजिनी ।
कमल-लोचन की कमनीयता ।
भुवन-मोहन है तन-श्यामता ।
भरत-भूमि रमापति-मूर्त्ति है ।१२।
मलिन लोचन की मल-मूलता ।
विविध मायिकता मनुजात की ।
हरण है करती मद-अंधता ।
भरत-भूतल-श्याम-स्वरूपता ।१३।

वसंत-तिलका

है हंसवाहन चतुर्मुख चारु-मूर्त्ति ।
है वेद-वैभव-विकासक बुद्धि-दाता ।

सत्कर्म-धाम कमलासनताधिकारी।
नाना विधान-रत भारत है विधाता।१४।

वंशस्थ

रमा समा है रमणीयता मिले।
उमा समा है वन-सिंह-वाहना।
गिरा समा है प्रतिभा-विभूषिता।
विचित्र है भारत की वसुंधरा।१५।

---

[६]

भारतीय महत्ता

शार्दूल-विक्रीडित

है आराधक सर्वभूत-हित का आधार सद्वृत्ति का।
व्याख्याता भव-मुक्ति-भुक्ति-पथ का त्राता सदासक्ति का।
पाता है जन पूत भाव निधि का दाता महामंत्र का।
ज्ञाता भारत है समस्त मत का धाता धराधर्म का।१।

गीत

भारत है भव-विभव-विधाता।
उसका गौरव-गीत प्रगति पा वसुधा-तल है गाता।१।
किसके पलने में पल पहले हुई प्रकृति-कृति पुलकित।

किसका ललित विकास विलोके हुई लोक-रुचि ललकित ।२।
मानस-तम तमारि बन पाया किसका मुख आलोकित ।
पा किसका आलोक हो सका लोक-लोक आलोकित ।३।
किसके प्रथम प्रभात में हुआ भूतल भूति-विभासित ।
किसने बन सित भानु-सिता से की समस्त वसुधा सित ।४।
किसके आदिम तम उपवन में वह कुसुमाकर आया ।
जिसने भू को कुसुमित, सुरभित, सफलित, सरस बनाया ।५।
हुआ कहाँ पर साम-गान वह जिसने सुधा बहाई ।
जिसकी स्वर-लहरी सुरपुर में लहराती दिखलाई ।६।
बजी कहाँ वह मंजुल वीणा जो जगती में गूँजी ।
जिसकी व्यंजक ध्वनि बन पाई धरा-धर्म की पूँजी ।७।
किसकी कुंजों में मुरली का वह मृदु नाद सुनाया ।
जिसने जगत-विजित जीवों पर जीवन-रस बरसाया ।८।
कौन है हृदय-तिमिर-विमोचन अंध-विलोचन-अंजन ।
सुख-सुमेरु का शिखर मनोहर, जन-मानस-अनुरंजन ।९।
सिद्धि सकल का सुन्दर साधन, विमल विभूति-सहारा ।
भारत है 'हरिऔध' ज्ञान-नभ-तल-उज्ज्वलतम तारा ।१०।

वसन्त-तिलका

आलोक-दान-रत भारत है प्रभात ।
संसार-मानसर-जात प्रफुल्ल पद्म ।

है मंजु-भाव-गगनांगण का मयंक।
आनन्द-मंदिर-मनोज्ञ-मणि-प्रदीप ।११।

शार्दूल-विक्रीडित

माता है मृदु भाव की, मनुजता की है महा साधना।
पाता है भव-शान्ति की सरलता की सिद्धि-भूता सुधा।
है आधार विभूति की, सुहृदता-राका-निशा-चंद्रिका।
सद्भावामृत-सिंचिता श्रुति-रता है भारती सभ्यता ।१२।
छाया था जब अंधकार भव में, संसार था सुप्त-सा।
ज्ञानालोक-विहीन ओक सब था, विज्ञान था गर्भ में।
ऐसे अद्भुत काल में प्रथम ही जो ज्योति उद्भूत हो।
ज्योतिर्मान बना सकी जगत को है वेद-विद्या वही ।१३।
नाना देश अनेक पंथ मत में है धर्म-धारा वही।
फैली है समयानुसार जितनी सद्वृत्ति संसार में।
देखे वे बहु पूत भाव जिनसे भू में भरी भव्यता।
सोचा तो सब सार्वभौम हित के सर्वस्व हैं वेद ही ।१४।
मूसा की वह दिव्य ज्योति जिसमें है दिव्यता सत्य की।
सच्चिन्ता जरदस्त की सदयता उद्बुद्धता बुद्ध की।
ईसा की महती महानुभवता पैगम्बरी विज्ञता।
पाती है विभुता-विभूति जिससे है वेद-सत्ता वही ।१५।
नाना धर्म-विधान के विलसते उद्यान देखे गये।

फूले थे जितने प्रसून उनमें स्वर्गीय सद्भाव के।
फैली थी जितनी सुनीति-लतिका, थे बोध-पौधे लसे।
जाँचा तो श्रुतिसार-सूक्ति-रस से थे सिक्त होते सभी।१६।
देखे ग्रंथ समस्त पंथ मत के, सिद्धान्त-बातें सुनीं।
नाना वाद-विवाद-पुस्तक पढ़ी, संवाद वादी बने।
जाँची तर्क-वितर्क-नीति-शुचिता, त्यागा कुतर्कादि को।
तो जाना सर्वज्ञता जगत की है वेद-भेदज्ञता।१७।

वह सित भानु भानु उस वारिधि के हैं विविध बल्ले।
उस महान उपवन में तारक हैं प्रसून सम फूले ।७।
तेज उसी के तेज-पुंज से तेज-बीज है बोता।
विरच विपुल आलोक-पिंड को लोक-तिमिर है खोता ।८।
वह समीर जीवन-प्रवाह बन जो प्रति दिन है बहता।
उस अनन्त-जीवन के जीवन से है जीवित रहता ।९।
सलिल की सलिलता उससे ही सहज सरसता पाती।
रसा उसी के रस-सेचन से है रसवती कहाती ।१०।६।

द्रुत-विलम्बित

विधु - प्रदीप - सुमौक्तिक - तारका -
लसित ले नभ थाल स्व-हस्त में।
किस महाप्रभु की अति प्रीति से
प्रकृति है करती नित आरती ।७।

शार्दूल-विक्रीडित

लोकों का लय हो गये प्रलय में भू लोप लीला हुए।
नाना भूत-प्रसूत वाष्प अणु के संसारव्यापी बने।
छाये कज्जल-से प्रगाढ़ तम के आये महाशर्वरी।
सोता है विभु शेष-भूत भव में, है शेषशायी अतः ।८।

गीत

लोकपति का ललाम-तम लोक ।

है अति लोकोत्तर लीलामय भरित ललित आलोक ।१।
आलोकित उससे हैं नभ-तल के अगणित रवि-सोम ।
विलसित हैं असंख्य तारक-चय, विदलित है तमतोम ।२।
उसके उपवन हर लेते हैं नन्दन-वन का गर्व ।
कल्प-वेलि हैं सकल वेलियाँ, कल्पद्रुम द्रुम सर्व ।३।
विकच बने रहते जो सब दिन, जिनमें है रस-सार ।
जिनके सौरभ से सुरभित होता सारा संसार ।४।
उसमें सतत लसित मिलते हैं ऐसे सुमन अपार ।
जिनपर विश्व वसंत-मधुप बन करता है गुंजार ।५।
उसमें हैं अमोल फल ऐसे जो हैं सुधा-समान ।
जिनसे मिली अमरता सुर को, रहा अमर-पद-मान ।६।
होती सदा वहाँ ध्वनि ऐसी जो है सरस अपार ।
जिससे ध्वनित हुआ करता है भव-उर-तंत्री-तार ।७।
पारस-रचित वहाँ की भू है कामधेनु कमनीय ।
है रज-राजि रुचिर चिन्तामणि रत्न-राशि रमणीय ।८।
सुधा-भरे हैं अमित सरोवर जो है सिंधु-समान ।
परम सरसतामय सरिता बन करती है रस-दान ।९।

वहाँ विलसते मूर्त्तिमन्त बन सब सुख हास-विलास।
सब चिन्मय हैं, सबमें करता है आनन्द निवास।१०।
मूलभूत है पंचभूत का सब जग जीव निजस्व।
वही सकल संसार-सार है सुरपुर का सर्वस्व।११।

शार्दूलविक्रीडित

नाना लोक समस्त भूतचय में सत्तामयी सृष्टि में।
सारी मूर्त्त अमूर्त्त ज्ञात अथवा अज्ञात उत्पत्ति में।
जो है व्यापक, क्या वही न विभु है, क्या है न कर्त्ता वही।
है संचालक कौन दिव्य कर से संसार के सूत्र का।१०।

गीत

विभु है भव-विभूति-अवलंबन।
सत-रज-तम कमनीय विकासक प्रकृति-हृदय-अभिनन्दन।
इसके परिचालन-बल से ही जग परिचालित होता।
वही सकल संसृति-वसुधा में सृजन-बीज है बोता।
नील वितान तान उसमें है तेज-पुंज उपजाता।
नव-निर्मित तारक-चय से है त्रिभुवन-तिमिर भगाता।
पावन पवन विश्व-तन को है प्राण-दान कर पाता।
उसको आतप-तपे विश्व का है वर व्यजन बनाता।
रस-संचय कर सकल लोक को परम सरस करता है।
उसमें जीव-निवास विधायक नव-जीवन भरता है।

हरी विविध बाधक बाधाएँ बनकर धरा-विधाता।
दे वह विभूतियाँ जिससे है भूत भव-विभव पाता।
उसके ही कर में है कृति-संचालन-सूत्र दिखाता।
नियति-नटी को दारु-योपिता सम है वही नचाता।११।

[७]

विभु-विभुता

शार्दूलविक्रीडित

चाहे हों फल, फूल, मूल, दल या छोटी-बड़ी डालियाँ।
चाहे हो उसकी सुचारु रचना या मुग्धकारी छटा।
जैसे हैं परिणाम अंग-तरु के सर्वांश में बीज के।
वैसे ही उस मूलभूत विभु का विस्तार संसार है।१२।
जैसे दीपक-ज्योति से तिमिर का है नाश होता स्वतः।
जैसे वायु-प्रवाह से चलित है होती पताका स्वयं।
जैसे वे यह कार्य हैं न करते इच्छा-वशीभूत हो।
वैसे ही भव है विभूति-पति की स्वाभाविकी प्रक्रिया।१३।
जैसे है घटिका स्वतंत्र बजने या बोलने आदि में।
जैसे सूचक सूचिका समय को देती स्वयं सूचना।
निर्माता मति ज्यों निमित्त बन के है सिद्धिदात्री बनी।
सत्ता है उस भाँति ही विलसती सर्वेश की सृष्टि में।१४।

जो सत्ता सब काल है विलसती सर्वत्र संसार में।
सारे जीव-समूह-मध्य जगती जो जीवनी-ज्योति है।
व्यापी है वह व्योम से अधिक, है तेजस्विनी तेज से।
पूता है पवमान से, सलिल से सिक्ता, रसा से रसा।१५।

गीत

नभ-तल था कज्जल-पूरित
था परम निविड तम छाया।
जब था भविष्य-वैभव में
भव का आलोक समाया।१।

जब पता न था दिनमणि का
था नभ में एक न तारा।
जब विरचित हुआ न विधु था
कमनीय प्रकृति-कर द्वारा।२।

जब तिमिर विमिरता-भय से
थी जग में ज्योति न आई।
जब विश्व-व्यापिनी गति से।
थी वायु नहीं वह पाई।३।

अनुकूल काल जब पाकर।
था सलिल न सलिल कहाया।

परमाणु-पुंज-गत जब थी।
वसुधा-विभूतिमय काया।४।

नाना कल-केलि-कलामय।
जब लोक न थे बन पाये।
जब बहु विधि प्रकृति-सृजन के।
वर वदन न थे दिखलाये।५।

जब स्तब्ध सुप्त अक्रिय हो।
था जडीभूत भव सारा।
तब किसके सत्ता-बल से।
सब जग का हुआ पसारा।६।

परमाणु - पुंज - मंदर से।
तम-तोम - महोदधि मथकर।
तब किसने रत्न निकाले।
अभिव्यक्ति - मूठियों में भर।७।

क्यों जड को अजड बनाया।
क्यों तम में किया उजाला।
क्यों प्रकृति-कंठ में किसने।
डाली मणियों की माला।८।

उस बहु युग की रजनी ने।
जिसने विकास को रोका।

कैसे किसके बल-द्वारा।
उज्ज्वल दिन-मुख अवलोका।९।

क्यों कहें रहस्य-उदर की।
कितनी लम्बी हैं आँतें।
हैं किसका भेद बताती।
ये भेद-भरी सब बातें।१०।

शार्दूल-विक्रीडित

आती तो न सजीवता अवनि में जो वायु होती नहीं।
कैसे तो मिलती उसे सरसता जो वारि देता नहीं।
तो मीठे स्वर का अभाव खलता जो व्योम होता नहीं।।
कैसे लोक विलोकनीय बनता आलोक पाता न जो।१७।

वंशस्थ

सदन्न सद्रत्न सदौषधी तथा।
सुधातु सत्पुष्प सुपादपावली।
कभी न पाती जगती विभूतियाँ।
उसे न देती यदि मंजु मेदिनी।१८।

गीत

संसार बन गया कैसे।
इसकी है अकथ कहानी।

थोड़ा बतला पाते हैं ।
वसुधा-तल के विज्ञानी ।१।

जो कहीं नहीं कुछ भी था ।
तो कुछ कैसे बन पाया ।
होते अभाव कारण का ।
क्यों कार्य सामने आया ।२।

परमाणु-पुंज तो जड थे ।
कैसे उनमें गति आई ।
कैसे अजीव अणुओं में ।
जीवन - धारा वह पाई ।३।

हो पुंजीभूत विपुल अणु ।
क्यों अंड बन गया ऐसा ।
अबतक भव की आँखों ने ।
अवलोक न पाया जैसा ।४।

वह अपरिमेय ओकों में ।
बन प्रगतिमान था फैला ।
तारक-समूह मोहरों का ।
वह था मंजुलतम थैला ।५।

वह घूम रहा था बल से ।
अतएव हुआ उद्भासित ।

थी ज्योति फूटती जिसमें।
पल-पल नीली, पीली, सित।६।

आभा की अगणित लहरें।
नभ में थीं नर्त्तन करती।
लाखों कोसों में अपनी।
कमनीय कान्ति थीं भरती।७।

अगणित बरसों के दृग ने।
यह प्रभा-पुंज अवलोका।
फिर प्रकृति-यवनिका ने गिर।
इस दिव्य दृश्य को रोका।८।

संकेत काल का पाकर।
यह अंड अचानक टूटा।
तारक-चय मिष नभ-पट का।
बन गया दिव्यतम बूटा।९।

हैं किस विचित्र त्रिभुवन के।
ये कौतुक परम निराले।
हैं जिसे विलोक न पाते।
विज्ञान-विलोचनवाले।१०।१९।

शार्दूल-विक्रीडित

कान्ता कुण्डलिनी अनन्त नभ की धारा समा क्यों बनी।
... ब्रह्मांड उसमें जो हैं महाभा-भरे।

कैसे तारक-पुंज साथ उसको ब्रह्मांड-माला मिली।
है वैचित्र्यमयी विभूति किसकी नीहारिका व्योम की।२०।
आभा से तन की विभामय बना ब्रह्मांड-व्यापार को।
नाना लोक लिये अचिन्त्य गति से लोकाभिरामा बनी।
तारों के मिष कंठ-मध्य पहने मुक्तावली-मालिका।
जाती है बन केलि-कामुक कहाँ आकाश-गंगांगना।२।२१।

गीत

जब ज्ञान-नयन को खोला।
अगणित ब्रह्मांड दिखाये।
प्रति ब्रह्म-अंड में हमने।
बहु विलसित तारे पाये।१।

ये अखिल अंड विभुवर के।
तन-तरु के कतिपय दल हैं।
उस वारिद-से वपुधर के।
वपु से प्रसूत कुछ जल हैं।२।

वह अंश विश्व का अब भी।
है क्रिया-विहीन अनवगत।
विज्ञान-निरत विबुधों का।
है माननीय-तम यह मत।३।

ब्रह्मांड क्या ? गगन-तल के।
ये नयन-विमोहन तारे।
कितने विचित्र अद्भुत हैं।
कितने हैं छवि में न्यारे।४।

यदि महि मृत्कण रवि घट है।
तो हैं बहु तारक ऐसे।
जिनके सम्मुख बनते हैं।
रवि से भी रजकण जैसे।५।

है जगत-ज्योति अवलंबन।
अनुरंजनता - दृग - प्यारे।
हैं कौतुक के कल केतन।
ये कान्ति-निकेतन तारे।६।

नभ-तल-वितान में कितने।
हैं लाखों लाल लगाते।
कितने असंख्य हीरक-से।
उज्ज्वल हैं उसे बनाते।७।

लाखों पन्नों को कितने।
पथ में उछालते चलते।
कितने नीलम-मन्दिर में।
हैं मणि-दीपक-से जलते।८।

पीताभ मंजुता महि में।
हैं बीज विभा का बोते।
अगणित पीली मणियों से।
कितने मंडित हैं होते।९।

लेकर फुलझड़ी करोड़ों।
कितने हैं क्रीडा करते।
कितने अनन्त में अनुपम।
अंगारक-चय हैं भरते।१०।

बहुतों को हमने देखा।
नाना रंगों में ढलते।
ऐसे अनेक अवलोके।
जो थे मशाल-से जलते।११।

आलात-चक्र-से कितने।
पल-पल फिरते दिखलाये।
क्या चार चाँद कितनों में।
हैं आठ चाँद लग पाये।१२।

पारद-प्रवाह सम कितने।
हैं द्रवित प्रभा से भरते।
कितने प्रकाश-झरने बन।
हैं प्रतिपल झर-झर झरते।१३।

है बुद्धि बावली बनती।
बुध-जन कैसे बतलायें।
हैं ललित ललिततम से भी।
लीलामय की लीलायें।१४।३२।

शार्दूल-विक्रीडित

व्यापी है जिसमें विभा वलय-सी नीलाभ श्वेतप्रभा।
होते हैं सित मेघ-खंड जिसमें कार्पास के पुंज-से।
सर्पाकार नितान्त दिव्य जिसमें नीहारिकाएँ मिलीं।
फैला है यह क्या पयोधि-पय-सा सर्वत्र आकाश में।३३।
क्या संसार-प्रसू विभूति यह है? क्षीराब्धि क्या है यही?
क्या विस्तारित शेषनाग-तन है नीहारिका-रूप में?
क्या आभामय कान्ति श्याम वपु की है श्वेतता में लसी।
किम्वा है यह कौतुकी प्रकृति की कोई महा कल्पना।३४।

गीत

सब विबुध अबुध हो बैठे।
बन विवश बुद्धि है हारी।
हैं अविदित अगम अगोचर।
विभु की विभूतियाँ सारी।१।
क्या नहीं ज्ञान है विभु का?
यह ज्ञान किन्तु है कितना।

उतना ही हो बूँदों को।
वारिधि-विभूति का जितना।२।

विभु क्या? अनन्त वैभव का।
क्या अन्त कभी मिल पाया।
इन बहु विचित्र तारों का।
किसने विभेद बतलाया।३।

हैं अपरिमेय गतिवाले।
अनुपम आलोक सहारे।
हैं केन्द्र अलौकिकता के।
ये ज्योति-बिन्दु-से तारे।४।

है लाख-लाख कोसों का।
इनमें से कितनों का तन।
गति में है इन्हें न पाता।
वह प्रगतिमान मानव-मन।५।

इनमें हैं कितने ऐसे।
जो हैं सुरपुर से सुन्दर।
जिनमें निवास करते हैं।
सुर-वृन्द-समेत पुरन्दर।६।

नाना तेजस तनवाले।
रज-गात गात अधिकारी।

भू-सी है सुविभूति भूति सबमें या भिन्नता है भरी।
ये बातें बतला सके अवनि के विज्ञान-वेत्ता कहाँ।३७
नाना ग्रंथ रचे गये अवनि में विज्ञान-धारा बही।
चिन्ताशील हुए अनेक कितने विज्ञानवादी बने।
तो भी भेद मिला न भूत-पति का, सर्वज्ञता है कहाँ।
ज्ञाता-हीन बनी रही जगत में सर्वेश-सत्ता सदा।३८।
पाती है वर विज्ञता विफलता मर्म्मज्ञता मूकता।
सच्चिन्ता-लहरी महाविषमता दैवज्ञता अज्ञता।
सोचे सर्व विधान सर्व-गत का, ज्ञाता बने विश्व का।
होती है बहुकुंठिता विवुधता सर्वज्ञता वंचिता।३९।
सीखा ज्ञान, पढ़े पुराण श्रम से, वेदज्ञता लाभ की।
आँखें मूँद, लगा समाधि, समझा, की साधनाएँ सभी।
ज्ञाता की अनुभूत बात सुन ली, विज्ञानियों में बसे।
सौ-सौ यत्न किये, रहस्य न खुला संसार-सर्वस्व का।४०।
दिव्या भूति अचिन्तनीय कृति की ब्रह्माण्ड-मालामयी।
तन्मात्रा-जननी ममत्व-प्रतिमा माता महत्तत्त्व की।
सारी सिद्धिमयी विभूति-भरिता संसार-संचालिका।
सत्ता है विभु की नितान्त गहना नाना रहस्यात्मिका।४१।

तृतीय सर्ग

दृश्य जगत्

आकाश

[१]

शार्दूल-विक्रीडित

सातो ऊपर के बड़े भुवन हों या सप्त पाताल हों।
चाहे नीलम-से मनोज्ञ नभ के तारे महामंजु हों।
हो वैकुंठ अकुंठ ओक अथवा सर्वोच्च कैलास हो।
हैं लीलामय के ललाम तन से लीला-भरे लोक ए।१।

वंशस्थ

अनन्त में है उसको अनंतता।
विभा-विभा में असुशक्ति वायु में।
विभूति भू में रस में रसालता।
चराचरात्मा विभु विश्वरूप है।२।

[२]

गीत

है रूप उसी विभु का हो।
यह जगत रूप है किसका।

है कौन दूसरा कारण।
यह विश्व कार्य्य है जिसका।१।

है प्रकृति-नटी लीला तो।
है कौन सूत्रधर उसका।

अति दिव्य दृष्टि से देखो।
भव-नाटक प्रकृति पुरुष का।२।

है दृष्टि जहाँ तक जाती।
नीलाभ गगन दिखलाता।

क्या है यह शीश उसी का।
जो व्योमकेश कहलाता।३।

वह प्रभु अनन्त-लोचन है।
जो हैं भव ज्योति सहारे।

क्या हैं न विपुल तारक ये।
उन आँखों के ही तारे।४।

जितने मयंक नभ में हैं।
वे उसके मंजुल मुख हैं।

जो सरस हैं सुधामय हैं।
जगती-जीवन के सुख हैं।५।

चाँदनी का निखर खिलना।
दामिनी का दमक जाना।

उस अखिल लोक-रंजन का।
है मंद-मंद मुसकाना।६।

उसके गभीरतम रव का।
सूचक है घन का निस्वन।
कोलाहल प्रबल पवन का।
अथवा समुद्र का गर्जन।७।

अपने कमनीय करों से।
बहु रवि शशि हैं तम खोते।
क्या हैं न हाथ ये विभु के।
जो ज्योति-बीज हैं बोते।८।

भव-केन्द्र हृदय है उसका।
नव - जीवन - रस - संचारी।
है उदर दिगन्त, समाईं।
जिसमें विभूतियाँ सारी।९।

हैं विपुल अस्थिचय उसके।
गौरवित विश्व के गिरिवर।
हैं नसें सरस सरिताएँ।
तन-लोम-सदृश हैं तरुवर।१०।

जिसके अवलम्बन द्वारा।
है प्रगति विश्व में होती।

है वही अगति गति का पग।
जिसकी रति है अघ खोती।११।

है तेज-तेज उसका ही।
है श्वास समीर कहाता।
जीवन है जग का जीवन।
बहु सुधा - पयोधि - विधाता।१२।

रातें हैं हमें दिखातीं।
फिर वर वासर है आता।
यह है उसकी पलकों का।
उठना-गिरना कहलाता।१३।

जिनसे बहु ललित कलित हो।
बनता है विश्व मनोहर।
उन सकल कलाओं का है।
विभु अति कमनीय कलाधर।१४।

शार्दूल-विक्रीडित

[३]

कोई है कहता, अनन्त नभ में ये दिव्य तारे नहीं।
नाना हस्त-पद-प्रदीप्त नख हैं व्यापी विराटांग के।
कोई लोचन वन्दनीय विभु का है तीन को मानता।
राका-नायक को, दिवाधिपति को, विभ्राद्विभावह्नि को।१।

वंशस्थ

असंख्य हैं शीश, असंख्य नेत्र हैं।
असंख्य ही हैं उसके पदादि भी।
कहें न कैसे यह भूत मात्र में।
निवास क्या, है न, जगन्निवास का ।२।

[४]

गीत

सब काल कौन श्यामल तन।
है बहुविध वाद्य बजाता।
किसलिये सरस स्वर भर-भर।
है मधुमय गीत सुनाता ।१।
है कर-विहीन कहलाता।
है नहीं उँगलियोंवाला।
पर सुन उसकी वीणाएँ।
भव बनता है मतवाला ।२।
है वदन नहीं जब उसके।
तब अधर कहाँ से लाता।
पर बजा मुरलिका अपनी।
मन को है मत्त बनाता ।३।

यद्यपि अकंठ है तो भी।
वह कुंठित नहीं दिखाता।
अगणित रागों को गा-गा।
है रस का स्रोत बहाता।४।

ऐसी लाखों वीणाएँ।
पल-पल हैं बजती रहती।
या विपुल वेणु-स्वर-लहरी।
रसमय बन-बन है बहती।५।

क्या बात वेणु वीणा की।
ऐसे ही अगणित बाजे।
बजते रहते हैं प्रति पल।
ध्वनि वैभव मध्य विराजे।६।

अनवरत सुधा बरसा कर।
जो गीत गीत हैं होते।
वे निधि उन ध्वनियों के हैं।
निकले जिनसे रस-सोते।७।

भव कंठ रसीले सुन्दर।
बहु तरुवर मेरु गुहाएँ।
सब यंत्र अनेकों बाजे।
सागर सरवर सरिताएँ।८।

कैसे उसके साधन हैं।
वह कैसे क्या करता है।
कामना - हीन हो कैसे।
बहु स्वर इनमें भरता है।९।

बतला न सकें हम जिसको।
कैसे उसको बतलायें।
जो उलझन सुलझ न पाई।
किस तरह उसे सुलझायें।१०।

[५]

शार्दूल-विक्रीडित

कंठों का वन कंठ मूल कहला तानों लयों आदि का।
नादों में भर के निनाद स्वर के स्वारस्य का सूत्र हो।
दे नाना ध्वनि-पुंज को सरसता, आलाप को मुग्धता।
गाता है नित कौन गीत किसका बाजे करोड़ों बजा।

प्रभाकर

गीत

विहँसी प्राची दिशा प्रफुल्ल प्रभात दिखाया।
नभतल नव अनुराग-राग-रंजित बन पाया।
उदयाचल का खुला द्वार ललिताभा छाई।
लाल रंग में रँगी रँगीली ऊषा आई।१।

चल बहु मोहक चाल प्रकृति प्रिय-अंक-विकासी।
लोक-नयन-आलोक अलौकिक ओक-निवासी।
आया दिनमणि अरुण बिम्ब में भरे उजाला।
पहन कंठ में कनक-वर्ण किरणों की माला।२।
ज्योति-पुंज का जलधि जगमगा के लहराया।
मंजुल हीरक-जटित मुकुट हिमगिरि ने पाया।
मुक्ताओं से भरित हो गया उसका अंचल।
कनक-पत्र से लसित हुआ गिरि-प्रान्त धरातल।३।
हरे-भरे सब विपिन बन गये रविकर आकर।
पादप प्रभा-निकेत हुए कनकाभा पाकर।
स्वर्णतार के मिले सकल दल दिव्य दिखाये।
विलसित हुए प्रसून प्रभूत विकचता पाये।४।
पहन सुनहला वसन ललित लतिकाएँ विलसीं।
कुसुमावलि के व्याज बहु विनोदित हो विकसीं।
जरतारी साड़ियाँ पैन्ह तितली से खेली।
विहँस-विहँस कर वेलि बनीं बाला अलबेली।५।
लगे छलकने ज्योति-पुंज के बहु विधि प्याले।
मिले जलाशय-व्याज धरा को मुकुर निराले।
कर किरणों से केलि दिखा उनकी लीलाएँ।
लगीं नाचने लोल लहर मिस सित सरिताएँ।६।

ज्योति-जाल का स्तंभ विरच कल्लोलों द्वारा।
मिला-मिला नीलाभ सलिल में विलसित पारा।
बना-बना मणि-सौध मरीचि मनोहर कर से।
लगा थिरकने सिंधु गान कर मधुमय स्वर से।७।
नगर-नगर के कलस चारुतामय बन चमके।
दमक मिले वे स्वयं अन्य दिनमणि-से दमके।
आलोकित छत हुई विभा प्रांगण ने पाई।
सदन-सदन में ज्योति जगमगाती दिखलाई।८।
सकल दिव्यता-सदन दिवस का वदन दिखाया।
तम के कर से छिना विलोचन भव ने पाया।
दिशा समुज्ज्वल हुई मरीचिमयी बन पाई।
सकल कमल-कुल-कान्त वनों में कमला आई।९।
कल कलरव से लोक-लोक में बजी बधाई।
कुसुमावलि ने विकस विजय-माला पहनाई।
विहग-वृन्द ने उमग दिवापति-स्वागत गाया।
सकल जीव जग गये, जगत उत्फुल्ल दिखाया।१०।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

लेके मंजुल अंक में प्रथम दो धारें सदाभामयी।
पा के नूतन लालिमा फिर मिले प्यारी प्रभा भानु की।

ऐसा है वह कौन लोक जिसको है मोह लेती नहीं।
लीलाएँ कर मन्द-मन्द हँस के प्राची दिशा सुन्दरी।१।
है लालायित नेत्र प्रीति-जननी है लालिमा से लसी।
है लीला-सरि की ललाम लहरी प्रातः-प्रभारंजिनी।
है प्राची-कर-पालिता प्रिय सुता है मूर्त्ति माधुर्य्य की।
ऊषा है अनुराग-राग-वलिता आलोक-मालामयी।२।

गीत

विलसी हैं नभ-मंडल में।
आभामय दो धाराएँ।
गत होते तम में प्रगटीं।
या रवि-रथ-पथ-रेखाएँ।१।

अनुराग-रागमय प्राची।
कमनीय प्रकृति-कर पाली।
है राह देखती किसकी।
रख मंजुल मुख की लाली।

सिन्दूर माँग में भरकर।
पाकर लालिमा निराली।
क्यों लोहित-वसना आई।
ले जन-रंजनता वाली।३।

क्यों हुईं दिशाएँ उज्ज्वल।
क्यों कान्ति मनोरम पाई।
उनकी मनमोहक आभा।
क्यों मंद-मंद मुसकाई।४।

अति रुचिकर चमर हिलाता।
वन सुरभित सरस सवाया।
क्यों मन्द-मन्द पद रखता।
शीतल समीर है आया।५।

क्यों गूँज रहा है नभतल।
क्यों उसमें स्वर भर पाया।
बहु उमग-उमग विहगों ने।
क्यों राग मनोहर गाया।६।

क्यों हैं फूली न समाती।
उनकी निखरी हरियाली।
क्यों खड़े हुए हैं तरुवर।
लेकर फूलों की डाली।७।

विकसित होती हैं पल-पल।
किस लिये कलित कलिकाएँ।
धारण कर मुक्ता-माला।
क्यों ललित बनीं लतिकाएँ।८।

अलि किसका गुण गाते हैं।
रच-रचकर निज कविताएँ।
क्यों हैं कल-कल रव करती।
सितभूत सकल सरिताएँ।९।

जगती - जीवन - अवलम्बन।
वसुधातल - ताप - विमोचन।
उदयाचल पर आता है।
क्या सकल लोक का लोचन।१०।

[४]

शार्दूल-विक्रीडित

साधे से सब सौर-मंडल सधा, बाँधे बँधी शृंखला।
पाले से उसके पली वसुमती, टाले टली आपदा।
पाता है तृण-राजिका विटप का, त्राता लता-वेलि का।
धाता है रवि सर्व-भूत-हित का, है अन्नदाता पिता।१।

रत्नों की कमनीय कान्ति दिव को, वारीश को रम्यता।
आभा-सी सुविभूति भूत-दृग को, तेजस्विता दृष्टि को।
भू को वैभव, पुष्प को विकचता, सद्वर्णता वस्तु को।
देता है रवि ज्योति-पुंज विधु को, हेमाद्रि को हेमता।२।

विधु-विभव

[१]

गीत

जब मंद-मंद विधु हँसता।
नभ - मंडल में है आता।
तब कौन नयन है जिसमें।
वह सुधा नहीं बरसाता।१।

है वह वसुधा - अभिनन्दन।
कुमुदों का परम सहारा।
सर्वस्व सरस भावों का।
रजनी - नयनों का तारा।२।

क्यों कला कला दिखलाकर।
बहु ज्योति तिमिर में भरती।
कमनीय कौमुदी कैसे।
रजनी का रंजन करती।३।

क्यों चारु चाँदनी भू पर।
सित चादर सदा बिछाती।
कैसे विलसित कुसुमों पर।
छवि लोट-पोट हो जाती।४।

अलि किसका गुण गाते हैं।
रच-रचकर निज कविताएँ।
क्यों हैं कल-कल रव करती।
सितभूत सकल सरिताएँ।९।

जगती - जीवन - अवलम्बन।
वसुधातल - ताप - विमोचन।
उदयाचल पर आता है।
क्या सकल लोक का लोचन।१०।

[४]

शार्दूल-विक्रीडित

साधे से सब सौर-मंडल सधा, बाँधे बँधी शृंखला।
पाले से उसके पली वसुमती, टाले टली आपदा।
पाता है तृण-राजिका विटप का, त्राता लता-वेलि का।
धाता है रवि सर्व-भूत-हित का, है अन्नदाता पिता।१।

रत्नों की कमनीय कान्ति दिव को, वारीश को रम्यता।
आभा-सी सुविभूति भूत-दृग को, तेजस्विता दृष्टि को।
भू को वैभव, पुष्प को विकचता, सद्वर्णता वस्तु को।
देता है रवि ज्योति-पुंज विधु को, हेमाद्रि को हेमता।२।

विधु-विभव

[१]

गीत

जब मंद-मंद विधु हँसता।
नभ - मंडल में है आता।
तब कौन नयन है जिसमें।
वह सुधा नहीं बरसाता।१।

है वह वसुधा - अभिनन्दन।
कुमुदों का परम सहारा।
सर्वस्व सरस भावों का।
रजनी - नयनों का तारा।२।

क्यों कला कला दिखलाकर।
बहु ज्योति तिमिर में भरती।
कमनीय कौमुदी कैसे।
रजनी का रंजन करती।३।

क्यों चारु चाँदनी भू पर।
सित चादर सदा बिछाती।
कैसे विलसित कुसुमों पर।
छवि लोट-पोट हो जाती।४।

कैसे दिगन्त में बहता।
बहु दिव्य रसों का सोता।
क्यों निधि उमंग में आता।
जो नहीं कलानिधि होता।५।

जो नहीं निकलती होती।
विधु-कर से प्रिय रस-धारा।
तो बड़े चाव से कैसे।
खाता चकोर अंगारा।६।

पाकर मयंक-सा मोहक।
जो नहीं मधुर मुसकाती।
जगती - जन का अनुरंजन।
कैसे रजनी कर पाती।७।

हिमकर है सुधा - निकेतन।
वसुधा-हित जलधि-विलासी।
है इसीलिये विभु - मानस।
शिव - शंकर - शीश - निवासी।८।

दोनों के दोनों हित हैं।
है छिका अहित - पथ - नाका।
राकापति राका - पति है।
राकेश - रंजनी राका।९।

विधु कान्त प्रकृति-कर-शोभी।
है रजत-रचित रस-प्याला।
जो छलक-छलक करता है।
क्षितितल को बहु छवि वाला।१०।

वह है सुख सुन्दर मुखड़ा।
आनन्द - कल्पतरु - थाला।
है मुग्धकारिता - मंडन।
दिनकर कोमल कर पाला।११।

नवनी समान मृदु मंजुल।
अवनीतल - विरति - विभंजन !
है चन्द्र, लोक-पति-लोचन।
तम - मोचन रजनी - रंजन।१२।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

है राकापति, मंजुता-सदन है, माधुर्य-अंभोधि है।
है लावण्य-सुमेरु-शृंग, जिसको आलोक-माला मिली।
पाती हैं उपमा सदैव जिसको सत्कान्ति की कीर्त्तियाँ।
जो है शंकर-भाल-अंक उसको कैसे कलंकी कहें।१।
दे दे मंजु सुधा लता विटप को है सींचता सर्वदा।
नाना कंद समूह को सरस हो है सिक्त देता बना।

पुष्पों को खिलता विलोक हँसता स्नेहाम्बुधारा बहा।
न्यारा है वह चारु चन्द्र जिसकी है प्रेमिका चन्द्रिका ।२।
पाता है सुकुमारता-सदन का, है स्निग्धता का पिता।
धाता है रस का, महा सरस का सौन्दर्य का है सखा।
दाता है कमनीय कान्ति-निधि का, माधुर्य्य का है धुरा।
छाता है विधु एक छत्रपति का संदीप्त-रत्नच्छटा ।३।
है आभा कमनीय पुंज, महि का साथी, सिता का धनी।
नाना औषध-मूल-भूत, प्रतिभू पीयूष-पाथोधि का।
है धाता प्रतिभा प्रसूत, रवि का स्नेही, सुरों का सखा।
कान्तात्मा कवि के कला-निलय का आलोक राकेश है ।४।
शृंगों के हिम-पुंज की सुछवि का प्रासाद की दीप्तिका।
पुष्पों पल्लव आदि के विभव का आभामयी वीचिका।
भू की अन्य विभूति का, प्रकृति के संसिक्त सौन्दर्य का।
है आधार मयंक वारिनिधि के उन्मुक्त उल्लास का ।५।

तारकावली

[१]

गीत

हैं सौर - मंडलाधिप के।
अधिकार में अमित तारे।

जो हैं सुन्दर मन-मोहन।
वहु रंग रूप में न्यारे।१।
शिर के ऊपर रजनी में।
जो लाल रंग का तारा।
है जगमग-जगमग करता।
वह है मंगल महि-प्यारा।२।
भूतल की कुछ बातों से।
मिलती हैं उसकी बातें।
उसके दिन हैं चमकीले।
सुन्दर हैं उसकी रातें।३।
प्रातः या संध्या वेला।
यों ही या यंत्रों द्वारा।
है क्षितिज पर उगा मिलता।
छोटा-सा एक सितारा।४।
बुध उसको ही कहते हैं।
वह है हरिदाभ दिखाता।
क्षिति-तल पर अपनी किरणें।
है छटा साथ छिटकाता।५।
वहु काल मध्य नभतल में।
पीताभ एक उडु-पुंगव।

लोचन-गोचर होता है।
कर वहन बहु विभा-वैभव ।६।
द्विजराज आठ अनुगत बन।
उसके वश में रहते हैं।
अतएव सकल विज्ञानी।
सुर-गुरु उसको कहते हैं।७।
प्राची अथवा पश्चिम में।
जो श्वेत समुज्ज्वल तारा।
देखा जाता है प्रायः।
है शुक्र वही दृग-प्यारा।८।
रवि-विधु तजकर, आँखों से।
जितने उडु हैं दिखलाते।
उन सब में बड़ा यही है।
बहु दिव्य इसी को पाते।९।
जो वलयवान तारक है।
जो मंद-मंद चलता है।
जो नील गगन-मंडल के।
नीलापन में ढलता है।१०।
शनि वही कहा जाता है।
कुछ-कुछ है वह मटमैला।

वह नीलम - जैसा है तो।
है वलय - रजत का थैला।११।

इस मंडल में इन-से ही।
दो ग्रह हैं और दिखाते।
है एक और मिल पाया।
अब यह भी हैं सुन पाते।१२।

मंगल एवं सुर-गुरु की।
कक्षाओं का मध्यस्थल।
यों उडु-पूरित है जैसे।
मालाओं में मुक्ता-फल।१३।

इसमें हैं पुच्छल तारे।
जिनकी गति नहीं जनाती।
झड़ बाँध-बाँध उल्काएँ।
हैं अद्भुत दृश्य दिखाती।१४।

इस एक सौर - मंडल की।
इतनी विचित्र हैं बातें।
कर सकीं नहीं हल जिनको।
लाखों वर्षों की रातें।१५।

तब अमित सौर-मंडल की।
गाथाएँ क्यों बतलायें।

बुध-जन हैं बूँदों-जैसे ।
क्यों पता जलधि का पायें ।१६।

शार्दूल-विक्रीडित

होता ज्ञात नहीं रहस्य इनका, ये हैं अविज्ञात से ।
कोई पा न सका पता प्रगति का विस्तार निस्तार का ।
कैसे देख इन्हें न चित्त दहले, कैसे न उत्कंठ हो ।
हैं ये केतु विचित्र, पुच्छ जिनके हैं कोटिशः कोस के ।१।
क्रीडाएँ अवलोक लीं अनल की, देखी कला की कला ।
ज्योतिर्भूति विलोक ली, पर कहाँ ऐसी छटाएँ मिलीं ।
ऐसे लोचन कौन हैं वह जिन्हें देती नहीं मुग्धता ।
उल्का की कलकेलि व्योम-तल की है दिव्य दृश्यावली ।२।

प्रभात

[१]

गीत

प्रकृति-वधू ने असित वसन बदला सित पहना ।
तन से दिया उतार तारकावलि का गहना ।
उसका नव अनुराग नील नभतल पर छाया ।
हुई रागमय दिशा, निशा ने वदन छिपाया ।१।

आरंजित हो उषा-सुन्दरी ने सुख माना।
लोहित आभा-वलित वितान अधर में ताना।
नियति-करों से छिनी छपाकर की छवि सारी।
उठी धरा पर पड़ी सिता सित चादर न्यारी।२।

ओस-बिन्दु ने द्रवित हृदय को सरस बनाया।
अवनी-तल पर विलस-विलस मोती बरसाया।
खुले कंठ कमनीय गिरा ने बीन बजाई।
विहग-वृन्द ने उमग मधुर रागिनी सुनाई।३।

शीतल बहा समीर, हुईं विकसित कलिकाएँ।
तरुदल विलसे, बनीं ललिततम सब लतिकाएँ।
सर में खिले सरोज, हो गईं सित सरिताएँ।
सुरभित हुआ दिगन्त, चल पड़ीं अलि-मालाएँ।४।

हुआ बाल-रवि उदय, कनक-निभ किरणें फूटीं!
भरित तिमिर पर परम प्रभामय बनकर टूटीं।
जगत जगमगा उठा, विभा वसुधा में फैली।
खुली अलौकिक ज्योति-पुंज की मंजुल थैली।५।

बने दिव्य गिरि-शिखर मुकुट मणि-मंडित पाये।
कनकाभा पा गये कलित झरने दिखलाये।
मिले सुनहली कान्ति लसी सुमनावलि सारी।
दमक उठीं बेलियाँ लाभ कर द्युति अति प्यारी।६।

स्वर्णतार से रचे चारुतम चादर द्वारा।
सकल जलाशय लसे बनी उज्ज्वल जल-धारा।
दिखा-दिखाकर तरल उरों की दिव्य उमंगें।
ले-लेकर रवि-विम्ब खेलने लगीं तरंगें।७।
हीरक-कण हरिदाभ तृणों पर गया उछाला।
बनी दूब रमणीय पहनकर मुक्ता-माला।
मिले कान्तिमय किरण लसे वालू के टीले।
सारे रज-कण बने रजत-कण-से चमकीले।८।
जिस जगती को असित कर सकी थी तम-छाया।
रवि-विकास ने विलस उसे बहुरंग बनाया।
कहीं हुई हरिदाभ, कहीं आरक्त दिखाई।
कहीं पीत छवि कान्त श्वेत किरणें बन पाई।९।
हुआ जागरित लोक, रात्रिगत जड़ता भागी।
बहा कर्म्म का स्रोत, प्रकृति ने निद्रा त्यागी।
विजित तमोगुण हुआ, सतोगुण सितता छाई।
कला अलौकिक कला-निकेतन को दिखलाई।१०।
पहने कंचन-कलित कीट मुक्तावलि-माला।
विकच कुसुम का हार विभाकर-कर का पाला।
प्राची के कमनीय अंक में लसित दिखाया।
लिये करों में कमल प्रभात विहँसता आया।११।

[२]

वंशस्थ

अनन्त में भूतल में दिगन्त में।
नितान्त थी कान्त वनान्त भाग में।
प्रभाकराभा - गरिमा - प्रभाव से।
प्रभाविता दिव्य प्रभा प्रभात की।

[३]

शार्दूल-विक्रीडित

हैं मुक्तामय-कारिणी अवनि की, हैं स्वर्ण - आभामयी।
हैं कान्ता कुसुमालि की प्रिय सखी, है वीचियों की विभा।
शोभा हैं अनुरंजिनी प्रकृति की क्रीडामयी कान्ति की।
दूती हैं दिव की प्रभात-किरणें, हैं दिव्य देवांगना।

घन-पटल

[१]

गीत

घिर-घिरकर नभ - मंडल में।
हैं घूम-घूम घन आते।
दिखला श्यामलता अपनी।
हैं विपुल विमुग्ध बनाते।१।

ये द्रवणशील बन-बनकर।
हैं दिव्य वारि बरसाते।
पाकर इनको सब प्यासे।
हैं अपनी प्यास बुझाते।२।

इनमें जैसी करुणा है।
किसमें वैसी दिखलाई।
किसकी आँखों ने ऐसी।
आँसू की झड़ी लगाई।३।

देखे पसीजनेवाले।
पर ऐसा कौन पसीजा।
है कौन धूल में मिलता।
औरों के लिये कहाँ जा।४।

ऐसा सहृदय जगती में।
है अन्य नहीं दिखलाया।
घन ही पानी रखने को।
पानी-पानी हो पाया।५।

सब काल पिघलते रहना।
जो जलद को नहीं भाता।
तब कौन सुधा बरसाकर।
वसुधा को सरस बनाता।६।

बहता न पयोद हृदय में।
जो दया-वारि का सोता।
तो कैसे मरु-महि सिंचती।
क्यों ऊसर रसमय होता।७।

जो नहीं नील नीरद में।
सच्ची शीतलता होती।
किस तरह ताप निज तन का।
तपती वसुंधरा खोती।८।

जो जीवन-दान न करता।
क्यों नाम सुधाधर पाता।
यदि परहित-निरत न होता।
कैसे परजन्य कहाता।९।

वह सरस है सरस से भी।
वह है रस का निर्माता।
वह है जीवन का जीवन।
घन है जग-जीवन-दाता।१०।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

केले के दल को प्रदान करके बूँदें विभा-वाहिनी।
सीपी का कमनीय अंक भरके, दे सिंधु को सिंधुता।

शोभा-धाम बना लता-विटप को सद्वारि के बिन्दु से।
आते हैं वन मुक्त व्योम-पथ में मुक्ता-भरे मेघ ये ।१।
श्रृंगों से मिल मेरु में विचरते प्राय: झड़ी बाँधते।
बागों में वन में विहार करते नाना दिखाते छटा।
मोरों का मन मोहते, विलसते शोभामयी कुंज में।
आते हैं घन घूमते घहरते पाथोधि को घेरते ।२।
कैसे तो सर अंक में विलसते, क्यों प्राप्त होती सरी।
कैसे पादप-पुंज लाभ करती हो शस्य से श्यामला।
कैसे तो मिलते प्रसून, लसती कैसे लता-बेलि से।
जो पाती न धरा अधीर भव में धाराधरी-धीरता। ३।
कैसे तो लसती प्रशान्त रहती, क्यों दूर होती तृषा।
कैसे पाकर जीव-जन्तु बनती श्यामायमाना मही।
होते जो न पयोद, जो न उनमें होती महाआर्द्रता।
रक्षा हो सकती न अन्य कर से तो चातकी वृत्ति की ।४।
गाती है गुण, साथ सर्व सरि के सानंद सारी धरा।
प्रेमी हैं जग-जीवमात्र उसके, है चातकों से व्रती।
क्यों पाता न पयोद मान भव में, होता यशस्वी न क्यों।
है स्नेही उसका समीर, उसकी है दामिनी कामिनी ।५।
मीठा है करता पयोद विधि से वारीश के वारि को।
देता है रस-सी सुवस्तु सबको, है सींचता सृष्टि को।

नेत्रों का, असिताम्बरा अवनि का, काली कुहू रात्रि का।
खोता है तम दामिनी-दमक को दे दिव्य दीपावली।६।

नीले, लाल, अश्वेत, पीत, उजले, ऊदे, हरे, बैंगनी।
रंगों से रँग, सांध्य भानु-कर की सत्कान्ति से कान्त हो।
नाना रूप धरे विहार करते हैं घूमते-झूमते।
होगा कौन न मुग्ध देख नभ में ऐसे घनों की छटा।७।

हैं ऊँचे उठते, सुधा बरसते, हैं घेरते घूमते।
बूँदों से भरते, फुहार बनते या हैं हवा बाँधते।
दौरा हैं करते घिरे घहरते हैं रंग लाते नये।
क्या-क्या हैं करते नहीं गगन में ये मेघ छाये हुए।८।

कैसे तो पुरहूत-चाप मिलता, क्यों दामिनी नाचती।
क्यों खद्योत-समूह-से विलसती काली बनी यामिनी।
होते जो न पयोद, गोद भरती कैसे हरी भूमि की।
आभा-मंडित साड़ियाँ सतरँगी क्यों पैन्हतीं दिग्वधू।९।

मेघों को करते प्रसन्न खग हैं मीठा स्वगाना सुना।
हैं नाना तरु-वृन्द प्रीति करते उत्फुल्लताएँ दिखा।
आशा है अनुरागिनी जलद की, है प्रेमिका शर्वरी।
सारी वीर-बहूटियाँ अवनि की रागात्मिका मूर्त्ति हैं।१०।

हैं चकित बनाती भव की।
गुण-दोषमयी लीलाएँ।१०।

[४]

शार्दूल-विक्रीडित

क्या सातों किरणें दिवाधिपति की हैं दृश्यमाना हुईं।
किम्वा वन्दनवार द्वार पर हैं बाँधी गई स्वर्ग के।
या हैं सुन्दर साड़ियाँ प्रकृति की आकाश में सूखती।
किम्वा वारिद-अंक में विलसता है चाप स्वर्गेश का।

सरस समीर

[१]

गीत

विकसित करता अरविन्द-वृन्द।
वहता है ले मंजुल मरन्द।
मानस को करता मोद-धाम।
आता समीर है मन्द-मन्द।१।

है कभी बजाता मंजु वेणु।
कीचक-छिद्रों में कर प्रवेश।
है कभी सुनाता सरस गान।
दे खग-कुल-कंठों को निदेश।२।

है कभी कँपाता जा समीप।
विकसित लतिका का मृदुल गात।
ले कभी कुसुम-कुल की सुगंध।
वह बन जाता है मलय-वात।३।

ले-लेकर उज्ज्वल ओस-बिन्दु।
जब वह करता है वर विहार।
तब बरसाता है हो विमुग्ध।
तरुदल-गत मुक्ता-मणि अपार।४।

वह करता है कमनीय केलि।
आ-आकर सुमन-समूह पास।
बहु घूम-घूम मुख चूम-चूम।
कलियों को वितरण कर विकास।५।

वहु लोभनीय लीला-निकेत।
सरि-लहरों को कर अधिक लोल।
भरता है उनमें लय ललाम।
कर-कर कल कलरव से कलोल।६।

पाकर विस्तृत तृण-राजि ओक।
वह जब जाता है पंथ भूल।
तब उड़ता है बन परम कान्त।
वन-भूमि-बधूटी का दुकूल।७।

मिल अलिमाला से प्रेम-साथ ।
तितली से करता है विनोद ।
बनती है उससे सुमनवान ।
छाया की वह छविमयी गोद ।८।

करके कितने आवरण दूर ।
निज मंजुल गति का बढ़ा मोल ।
दिखलाता है वह दिव्य दृश्य ।
वह हटा प्रकृति-मुख का निचोल ।९।

वह फिरता है बन सुधा-सिक्त ।
सब ओर सरस सौरभ पसार ।
वनदेवी को दे परम दिव्य ।
विकसित कुसुमों का कण्ठहार ।१०।

[२]

वशस्थ

विभूति - आवास अनन्त - अंक का ।
विकास है व्यापक तेज - पुंज का ।
वितान है जीवन - भूत वारि का ।
समीर है प्राण धरा - शरीर का ।१।

सदा रही चित्त विराम - दायिनी ।
विनोदिनी सर्व वसुंधरांक की ।

सुगंधिता है करती दिगन्त को।
विमोहिनी धीर समीर धीरता।२।

रजनी सुन्दरी

[१]

गीत

घूँघट से वदन छिपाये।
काले कपड़ों को पहने।
आती है रजनी तन पर।
धारण कर उडुगण गहने।१।

पाकर मयंक-सा प्रियतम।
सहचरी चाँदनी ऐसी।
वह कभी विलस पाती है।
सुरलोक सुन्दरी जैसी।२।

पर कभी पड़ा मिलता है।
उस पर वह परदा काला।
जिसको माना जाता है।
भव अंध-भूत अँधियाला।३।

नव राग-रंजिता सन्ध्या।
तारक-चय-मण्डित नभ-तल।

वहु लोक विपुल आलोकित।
हैं रजनी-सुख के सम्बल।४।

कमनीय अंक में उसके।
जन-कोलाहल सोता है।
भवं कार्य वहुलता का श्रम।
उसका विराम खोता है।५।

जो शान्ति-दायिनी निद्रा।
जन श्रान्ति क्लान्ति हरती है।
तो शिथिल रगों में बिजली।
रजनी-बल से भरती है।६।

जिससे जगती तन ढक कर।
सुख अनुभव है कर पाती।९।

रजनी-उर हित की लहरें।
जब हैं रस-वाष्प उठाती।
तब ओस-बूँद बन-बनकर।
मोती-सा हैं बरसाती।१०।

यामिनी मिले सन्नाटा।
जब साँय-साँय करती है।
उस काल वसुमती सुख के।
साधन का दम भरती है।११।

वह प्रति दिन उन पापों पर।
परदे डाला करती है।
अवलोक विकटता जिनकी।
कम्पित होती धरती है।१२।

खंभों पर विलसित बिजली।
क्यों तारक-चय मद खोती।
क्यों अगणित दीपक बलते।
जो नहीं यामिनी होती।१३।

तम-भरित सकल ओकों में।
अनुभूत ज्योति भरती है।

वहु लोक विपुल आलोकित।
हैं रजनी-सुख के सम्वल।४।

कमनीय अंक में उसके।
जन-कोलाहल सोता है।
भव कार्य वहुलता का श्रम।
उसका विराम सोता है।५।

जो शान्ति-दायिनी निद्रा।
जन श्रान्ति क्लान्ति हरती है।
तो शिथिल रगों में बिजली।
रजनी-वल से भरती है।६।

पा अर्द्धरात्रि - नीरवता।
जब त्याग सचलता सारी।
सब जगत पड़ा सोता है।
अवलोक प्रकृति-गति न्यारी।७।

चल दबे पाँव से मारुत।
जब है ऊँघता दिखाता।
जब पादप का पत्ता भी।
हिल-डोल नहीं है पाता।८।

उस काल निबिड़ता तम की।
यह चादर है घन तानी।

जिससे जगती तन ढक कर।
सुख अनुभव है कर पाती।९।

रजनी-उर हित की लहरें।
जब हैं रस-वाष्प उठाती।
तब ओस-बूँद बन-बनकर।
मोती-सा हैं बरसाती।१०।

यामिनो मिले सन्नाटा।
जब साँय-साँय करती है।
उस काल वसुमती सुख के।
साधन का दम भरती है।११।

वह प्रति दिन उन पापों पर।
परदे डाला करती है।
अवलोक विकटता जिनकी।
कम्पित होती धरती है।१२।

खंभों पर विलसित बिजली।
क्यों तारक-चय मद खोती।
क्यों अगणित दीपक बलते।
जो नहीं यामिनी होती।१३।

तम-भरित सकल ओकों में।
अनुभूत ज्योति भरती है।

श्रम-भंजन कर जन-जन का।
रजनी रंजन करती है।१४।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

है लीला करती, ललाम बनती, है मुग्ध होती महा।
है उल्लास-विलास से विलसती, पीती सुधा सर्वदा।
होके हासमयी विकास भरती, है मोहती विश्व को।
पा राकेश-समान कान्त मुदिता राका निशा सुन्दरी।

वंशस्थ

असंख्य में से उडु एक भी जिसे।
कभी नहीं कान्तिमती बना सका।
अभागिनी भीति-भरी तमोमयी।
कहाँ मिली अन्यतमा अमा समा।

[३]

गीत

हैं मरम ओस की बूँदें।
या हैं ये मंजुल मोती।
या ढाल-ढालकर आँसू।
प्रति दिन रजनी है रोती।१।

क्यों ओस कलेजा पिघला।
वह क्यों बूँदें बन पाई।
किस लिये दया-परवश हो।
वह द्रवीभूत दिखलाई।२।

अवलोक अँधेरा जग में।
क्या रवि - वियोगिनी - छाया।
है घूम - घूमकर रोती।
इतना जी है भर आया।३।

हो विकल कालिमाओं से।
रजनी है अश्रु बहाती।
या विविध तामसिक बातें।
उसको हैं अधिक रुलाती।४।

अथवा विधु-से वल्लभ को।
क्षय - रुज - कवलित अवलोके।
है रुदन - रता वह अवतक।
आँसू रुक सके न रोके।५।

अथवा अतीत गौरव की।
कर याद व्यथा रोती है।
अपनी अन्तर - ज्वालाएँ।
दृग-जल-बल से खोती है।६।

या प्रकृति-स्नेह की धार;
जल की बूँदें बन-बनकर।
तरु-दल को सींच रही है।
कर लता-वेलियों को तर।७।

या तारे तरल-हृदय बन।
हो दया से द्रवित भू पर।
बरसाते हैं नित मोती।
कमनीय करों में भरकर।८।

अवलोक तपन को आते।
सहृदयता दिखलाती है।
या सरस ओस अवनी पर।
सित सुधा छिड़क जाती है।९।

या रवि कोमल किरणों को।
अवलोक धरा पर आती।
तरु-दल-थालों में भर-भर।
मोती है ओस लुटाती।१०।

[४]

शार्दूल-विक्रीड़ित

हो नाना नग-पुंज-नाद-मुखरा प्रातःप्रभा-पूरिता।
हो पै पुन्य निकाय में विकसिता सद्गंध से वासिता।

ऊषा से बन रंजिता विलसिता हो शोभिता अंशु से।
होती है महि कान्त ओस-कर से पा मंजु मुक्तावली।१।
है प्राची प्रिय लालिमा सहचरी सिन्दूर-आरंजिता।
सोने-सी कमनीय कान्ति-जननी है दिव्यता भानु की।
है आलोक-प्रसू प्रभात-सुषमा है मण्डिता दिग्वधू।
ऊषा है अनुराग-राग-निरता, है ओस मुक्तामयी।२।

कल अंक मध्य उसके।
छवि रत्न - राजि की है।
रेखा बनी रजत की।
सरिता विराजती है।१९।

ऐसा त्रिलोक - सुन्दर।
किस आँख में समाया।
महि ने न दूसरा गिरि।
हिमगिरि - समान पाया।२०।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

चोटी है लसती मिले कलस-सी ज्योतिर्मयी मंजुता।
होती है उसमें कला-प्रचुरता स्वाभाविकी स्वच्छता।
नाना साधन, हेतु-भूत बन के हैं सिद्धि देते उसे।
है देवालय के समान गिरि के सर्वाङ्ग में दिव्यता।१।
शिक्षा का शुचि केन्द्र, शान्त मठ है संसार की शान्ति का।
पूजा का प्रिय पीठ, कान्त थल है विज्ञप्ति के पाठ का।
है ज्ञानार्जन-धाम ओक भव के विज्ञान-विस्तार का।
पाता है गिरि भू-विभूति-चय का, धाता विभा-कीर्त्ति का।

होता है अभिषेक वारिधर के पीयूष से वारि से।
नाना पादप हैं प्रसून-चय से प्रातः उसे पूजते।
सारी ही नदियाँ सभक्ति वन के होती द्रवीभूत हैं।
गाते हैं गुण सर्व उत्स गिरि का स्नेहाम्बु से सिक्त हो।३।

ऐसा है हरिताभ वस्त्र किसका पुष्पावली से सजा।
नाना कान्ति-निकेत रत्न किसके सर्वाङ्ग में हैं लसे।
आभावान असंख्य हीरक जड़ा आलोक के पुंज-सा।
पाया है हिम का किरीट किसने हेमाद्रि-जैसा कहाँ।४।

पक्षी रंग-बिरंग के विहरते या मंजु हैं बोलते।
क्रीड़ा हैं करते कुरंग कितने, गोवत्स हैं कूदते।
नाना वानर हैं विनोद करते, हैं गर्जते केशरी।
मातंगी - दल के समेत गिरि में मातंग हैं घूमते।५।

ऊषा-रागमयी दिशा विहँसती लोकोत्तरा लालिमा।
कान्ता चन्द्रकला कलिन्द किरणें रम्यांक राका निशा।
नाना तारक-मालिका छविमयी कादम्बिनी दामिनी।
देती हैं दिवि की विभूति गिरि को दिव्यांग देवांगना।६।

गा-गा गीत विहंग-वृन्द दिखला केकी कला नृत्य की।
नाना कीट, पतंग, भृंग करके क्रीडा मनोहारिणी।
देते हैं अभिराम-भूत गिरि की सौन्दर्य-मात्रा बढ़ा।
सीधे सुन्दर मंजु पुच्छ मृग के सर्वाङ्ग शोभा-भरे।७।

है कैलाश कहाँ, किसे मिल सका काश्मीर-भू स्वर्ग-सा।
पाया है कब स्वर्ण-मेरु किसने, देवापगा-सी सरी।
मुक्ता-हंस-निकेत मानस किसे है कान्त देता बना।
कैसे हो न हिमाद्रि उच्च सबसे, क्यों देवतात्मा न हो।८।

दे पुष्पादि 'उदार वृत्ति' तरु की शाखा बताती मिली।
सारे निर्झर हैं अजस्र कहते स्नेहार्द्रता मेरु की।
ऊँचे शृंग उठा स्वशीश करते हैं कीर्त्ति की घोषणा।
गाती है गुण सर्वदा गिरि-गुहा शब्दायमाना बनी।९।

गाते हैं गंधर्व किन्नर कहीं, हैं नाचती अप्सरा।
वीणा है बजती, मृदंग-रव है होता कहीं प्रायशः।
दे-दे दिव्य विभूति व्योम-पथ में हैं देवते घूमते।
ऐसा है गिरि कौन स्वर्ग-सुषमा है प्राप्त होती जिसे।१०।

[३]

गीत

जो था मनु वंश-विटप का।
वसुधातल में आदिम फल।
उनके लालन-पालन का।
पलना है अचल हिमाचल।१।

हो सका वह सरस जिससे।
भव अनुभव भूतल सारा।

वह सकी प्रथम हिमगिरि में।
वह मानवता - रस - धारा ।२।

जिसके मधु पर हैं मोहित।
महि विबुध-वृन्द मंजुल अलि।
विकसी हिमाद्रि में ही वह।
वैदिक संस्कृति-कुसुमावलि ।३।

जिसकी कामदता देखे।
सुर - वृन्द सदैव लुभाया।
मिल सकी हिमालय में ही।
वह सुख-सुरतरु की छाया ।४।

है कहाँ कान्त कनकाचल।
बहु दिव विभूति विलसित घन।
मुक्तामय मान - सरोवर।
नन्दन-वन जैसा उपवन ।५।

कमनीय कंठ में पहने।
मंदार मजुतम माला।
हैं कहाँ विहरती फिरती।
अलका - विलासिनी बाला ।६।

जिनकी अद्भुत तानों से।
रस की धारा - सी फूटी।

जात
हैं कहाँ सुधा बरसाती
गा - गाकर विबुध - बधूटी ।७।

कैलास कहाँ है जिसपर ।
है वह विभूति तनवाला ।
बन गई मौलि की जिसके ।
सुरसरी मालती - माला ।८।

है पत्नी अंक में किसके ।
वह सिंह - वाहना बाला ।
जिसने दानवी दलों को ।
मशकों समान मल डाला ।९।

है कहाँ शान्ति का मन्दिर ।
भव - जन - विश्राम - निकेतन ।
उड़ सका शिखर पर किसके ।
वसुधा - विमुक्ति का केतन ।१०।

जी सकीं देख मुख जिसका ।
शुचिता की आँखें प्यासी ।
वे सिद्ध कहाँ थे जिनकी ।
थीं सकल सिद्धियाँ दासी ।

भर विभु - विभुता - वैभव से ।
है कहाँ कुसुम - कुल हँसता ।

वहु काल ललित-तम वन के।
है कहाँ वसन्त विलसता।१२।

वे वन - विभूतियाँ जिनमें।
हैं कलित कलाएँ खिलतीं।
वे दृश्य अलौकिक जिनमें।
है प्रकृति - दिव्यता मिलती।१३।

किसने है ऐसी पाई।
है कौन मंजुतम इतना।
अब तक भव समझ न पाया।
उसमें रहस्य है कितना।१४।

विधि लोकोत्तर कर-लालित।
लौकिक ललामता - सम्बल।
सिर - मौर मेरुओं का है।
अचला मणि-मुकुट हिमाचल।१५।

विपिन

[१]

शार्दूल-विक्रीड़ित

शोभाधाम ललाम मंजुरुत की नाना विहंगावली।
लीला - लोल लता - समूह वहुशः सत्पुष्प सुश्री बड़े।
पाये हैं किसने असंख्य विटपी स्वर्लोक-संभूत-से।
रम्योपान्त नितान्त कान्त महि में है कौन कान्तार-सा।१।

नाना मंजुल कुंज से विलसिता भृंगावली-भूषिता।
छायावान लता - वितान - वलिता पाथोज-पुंजावृता।
गुंजा - माल - अलंकृता तृणगता मुक्तावली-मंडिता।
है दूर्वादल - संकुला विपिन की श्यामायमाना मही।२।

वंशस्थ

तृणावली तारक - राजि व्योम है।
पतंग है दीधित पुष्पराशि का।
प्रशस्त कान्तार विशाल सिंधु है।
तरंग - माला तरु - पुंज - पंक्ति का।

शार्दूलविक्रीड़ित

पेड़ों में वन की बड़ी विविधता उत्फुल्लता उच्चता।
पत्तों में फल में महा सरसता आमोदिनी मंजुता।
नाना पुष्प-समूह में विकचता सच्ची मनोहारिता।
पाते हैं कमनीयता मृदुलता कान्ता लता - पुंज में।१।
व्यापी मंजु हरीतिमा विटप की कादम्बिनी-सी लसी।
शाखा पल्लव-पूरिता विकसिता पुष्पावली-सज्जिता।
लेती है कर मुग्ध वारि-निधि-सी हो ऊर्मिमालामयी।
नाना गुल्म-लतावती विपिन को नीलाम्बरा मेदिनी।२।
की है कानन मध्य सिद्धि जन ने प्यारी तपःसाधना।
पूता है वन की महा गहनता स्वर्गीय सम्पत्ति से।

व्यापी निर्जनता विराग-निरता एकान्त आधारिता ।
होती है महनीय शान्ति-भरिता कान्तार-गंभीरता ।३।
उल्लू का विकराल नाद बहुधा, शार्दूल की गर्जना ।
देता है न किसे प्रकंपित बना चीत्कार मातंग का ।
देखे हिंसक भीमकाय पशु की आतंककारी क्रिया ।
सन्नाटा वन का विलोक किसको हृत्कंप होता नहीं ।४।
नाना व्याल-विभीपिका विकटता भू कंटकाकीर्ण की ।
हिंसा पाशव वृत्ति हिंस्र पशु की चीत्कारमग्ना दिशा ।
ज्वाला-माल-निपीड़िता तरु-लता धूमांधकारावृता ।
होती है भयपूरिता विपिन की कृत्या समा प्रक्रिया ।५।
पा के दानव के समान वपुता एवं कदाकारता ।
हो के चालित चंड वायु-गति से आतंक-मात्रा बढ़ा ।
नाना काक उलूक आदि रव से हो प्रायशः पूरिता ।
देती है वन को भयावह बना दुर्वीक्ष्य वृक्षावली ।६।

वंशस्थ

बनी हुई मूर्त्तिमती विभीषिका ।
वृकोदरा श्वापद - वृन्द - शासिता ।
किसे नहीं है करती प्रकंपिता ।
करालकाया वन की वसुंधरा ।

शार्दूल-विक्रीड़ित

जो है हिंसकता-निकेत जिसमें है भीति-सत्ता भरी।
जो है भूरि विभीषिका-विचलिता उत्पात-आलोड़िता।
जो है कंटकिता नितान्त गहना आतंक-आपूरिता।
तो कैसे वन-मेदिनी, विकटता-आक्रान्त होगी नहीं।१।

गीत

[२]

है कौन विलसता सब दिन।
परिधान हरित - तम पहने।
हैं सबसे सुन्दर किसके।
कमनीय कुसुम के गहने।१।

हरिताभ मंजुतम अनुपम।
है किसका अंक निराला।
है पड़ी कंठ में किसके।
मरकत - मणि - मंजुल माला।२।

इतना अनुरंजित ऊषा।
कब किसको है कर पाती।
इतनी मुक्ता - मालाएँ।
रजनी है किसे पिन्हाती।३।

वह प्रभावान प्रति वासर।
है किसे प्रभात बनाता।
किसको दिन-मणि निज कर से।
है स्वर्ण - मुकुट पहनाता।४।

हैं किसे ललिततम करती।
हिल - हिल अनंत लतिकाएँ।
किसमें विलसित रहती हैं।
खिल-खिल अगणित कलिकाएँ।५।

लेकर विहंगमों का दल।
है गीत मनोहर गाता।
निज कोटि - कोटि कंठों से।
है कलरव कौन सुनाता।६।

वारिधि - समान संचालित।
किसको समीर है करता।
किसके सौरभ को ले - ले।
वह है दिगन्त में भरता।७।

कर लाभ सुमनता किसकी।
हैं सरस सुमन से भरते।
लेकर असंख्य तरु-फल-दल।
किसका पूजन हैं करते।८।

नित प्रकृति को छटा किसमें।
नर्त्तन करती मिलती है।
मधु की मधुता किसको पा।
छगुनी छवि से खिलती है।९।

नयनाभिराम बहु मोहक।
आमोदक परम मनोरम।
वसुधा में कौन दिखाया।
बन के समान मंजुलतम।१०।

गीत

[३]

कहाँ हरित पट प्रकृति-गात का है बहु कान्त दिखाता।
कहाँ थिरकती हरियाली का घूँघट है खुल पाता।
कहाँ उठा शिर विटपावलि हैं नभ से बातें करती।
कहाँ माँग अपनी लतिकाएँ मोती से हैं भरती।१।
कोटि-कोटि कीचक हैं अपनी मुरली कहाँ बजाते।
कहाँ विविध गायक तरु गा-गा हैं बहु गीत सुनाते।
ले बहु सूखे फल समीर है कहाँ सुवाद्य बजाता।
मोरों का दल कहाँ मंजुतम नर्त्तन है कर पाता
ऐसी कुंजें कहाँ जहाँ दृग कुंठित हैं हो जाते
जिसकी छाया को सहस्र-कर कभी नहीं छू पा

कहाँ विलसती हरियाली में कुसुमावलि है वैसी।
नभ-नीलिमा तारकावलि में छवि मिलती है जैसी।३।
कहाँ उठे हैं विपुल महातरु श्यामल महि में ऐसे।
उठती हैं उत्ताल तरंगें तोयधि-तन में जैसे।
धानी साड़ी धरा-सुन्दरी को है कौन पिन्हाती।
कोसों तक तृणराजि कहाँ पर है राजती दिखाती।४।
विपुल कुसुम-कुल के गुच्छों से जो मंजुल हैं बनते।
कहाँ वेलियों के विभवों से हैं वितान बहु तनते।
कहाँ वनश्री की लेती हैं पुलकित बनी बलाएँ।
नीली लाल हरित दलवाली लाखों ललित लताएँ।५।
रंजित बनती हैं रजनी की जिनसे तामस घड़ियाँ।
दीपक-जैसी कहाँ जगमगाती मिलती हैं जड़ियाँ।
लता-वेलि-तरु-चय पत्तों में हैं प्रसून-से खिलते।
पावस में अनंत जुगनू हैं कहाँ चमकते मिलते।६।
श्याम रंग में रँगे झूमते बहु क्रीड़ाएँ करते।
कहाँ करोड़ों भौंरे हैं सब ओर भाँवरें भरते।
रंग-विरंगी बड़ी छबीली कुसुम-मंजुरस-माती।
कहाँ असंख्य तितलियाँ फिरती हैं रंगतें दिखाती।७।
चित्र - विचित्र परों से अपने विचित्रता फैलाते।
कभी मेदिनी, कभी डालियों पर बैठे दिखलाते।

हो कलोल-रत कलित कंठ से गीत मनोहर गाते।
झुंड बाँधकर कहाँ करोड़ों खग हैं आते-जाते।८।
कभी अति चपल मृदुल-काय शावक-समूह से घिरते।
कभी चौंकते, कभी उछलते, कभी कूदते फिरते।
भोले-भाले भाव दृगों में भर कोमल तृण चरते।
कहाँ यूथ-के-यूथ मृग मिले भूरि छलाँगें भरते।९।
उठती हैं मानव-मानस में विविध विनोद-तरंगें।
तृप्ति - लाभ करती हैं कितनी उर में उठी उमंगें।
दृष्टि मिले का फल पाते हैं बहु विमुग्ध दृग हो के।
बनती है अनुभूति सहचरी विपिन-विभूति विलोके।१०।

उद्यान

[१]

गीत

हरित तृणराजि-विराजित भूमि।
बनी रहती है बहु छवि-धाम।
विहँस जिसपर प्रति दिवस प्रभात।
बरस जाता है मुक्ता - दाम।१।
पहन कमनीय कुसुम का हार।
पवन से करती है कल केलि।

उड़े मंजुल दल - पुंज - दुकूल ।
विलसती है अलबेली वेलि ।२।

क्यारियों का पाकर प्रिय अंक ।
आप ही अपनी छवि पर भूल ।
लुटाकर सौरभ का संभार ।
खिले हैं सुन्दर-सुन्दर फूल ।३।

छँटी मेंहदी के छोटे पेड़ ।
लगे रविशों के दोनों ओर ।
मिले घन-जैसा श्याम शरीर ।
नचाते हैं जन-मानस-मोर ।४।

खोल मुँह हँसता उनको देख ।
विलोके उनका तन सुकुमार ।
प्यार करता है हो बहु मुग्ध ।
दिवाकर कर कमनीय पसार ।५।

खड़े हैं पंक्ति बाँध तरु-वृन्द ।
ललित दल से बन बहु अभिराम ।
लोचनों को लेते हैं मोल ।
डालियों के फल-फूल ललाम ।६।

प्रकृति-कर से बन कोमल-कान्त ।
लताओं का अति ललित वितान ।

बुलाता है सब काल समीप।
कलित कुंजों का छाया-दान।७।

लाल दलवाले लघुतम पेड़।
लालिमा से बन मंजु महान।
दृगों को कर देते हैं मत्त।
छलकते छबि-प्याले कर पान।८।

बहुत बल खाती कर कल नाद।
नालियाँ बहती हैं जिस काल।
रसिक मानव-मानस के मध्य।
सरस बन रस देती हैं ढाल।९।

कहीं मधु पीकर हो मदमत्त।
अलि-अवलि करती है गुंजार।
कहीं पर दिखलाती है नृत्य।
रँगीली तितली कर शृङ्गार।१०।

पढ़ाता है प्रिय रुचि का पाठ।
कहीं पर पारावत हो प्रीत।
कहीं पर गाता है कलकंठ।
प्रकृति-छवि का उन्मादक गीत।११।

सुने पुलकित बनता है चित्त।
पपीहा की उन्मत्त पुकार।

कहीं पर स्वर भरता है मोर।
छेड़कर उर-तंत्री के तार।१२।
कहीं क्षिति बनती है छविमान।
लाभ कर विलसे थल-अरविन्द।
कहीं दिखलाते हैं दे मोद।
तरु-निचय पर बैठे शुक-वृन्द।१३।
मंजु गति से आ मंद समीर।
क्यारियों में कुंजों में घूम।
छबीली लतिकाओं को छेड़।
कुसुम-कुल को लेता है चूम।१४।
करेगा किसको नहीं विमुग्ध।
सरसता-वलित ललिततम ओक।
न होगा विकसित मानस कौन।
लसित कुसुमित उद्यान विलोक।१५।

[२]

शार्दूल-विक्रीडित

माली के उर की अपार ममता उन्मत्तता भृंग की।
पेड़ों की छवि-पुंजता रुचिरता छायामयी कुंज की।
पुष्पों की कमनीयता विकचता उत्फुल्लता वेलि की।
देती है खग-वृन्द की मुखरता उद्यान को मंजुता।१।

कान्ता कंज-दृगी सरोज-वदना भृंगावली-कुंतला।
सुश्री कोकिल-कंठिनी भुज-लता-लालित्य-आंदोलिता।
पुष्पाभूषण-भूषिता सुरभिता आरक्त बिम्बाधरा।
दूर्वा श्यामल साटिका विलसिता है वाटिका सुन्दरी।२।

द्रुतविलम्बित

सहज सुन्दर भूति-निकेत क्यों।
बन सके नर-निर्मित वाटिका।
विपिन में दृग हैं अवलोकते।
प्रकृति की कृति की कमनीयता।३।

शर्दूल-विक्रीडित

कोई पा बहुरंग की विविधता आधार पुष्पावली।
कोई है ले लाल फूल लसिता शृङ्गारिता रंजिता।
क्या हैं सुन्दर नारियाँ विलसती पैन्हे रँगी साड़ियाँ।
या हैं कान्त प्रसून-पुंज-कलिता उद्यान की क्यारियाँ।४।
पा आभा दिन में दिनेश-कर से हो-हो सिता से सिता।
ले-ले कान्ति सुधांशु-कान्त-कर से हो दिव्य आभामयी।
पा के वारिद-वृन्द से सरसता वृन्दारकों से छटा।
होती है रस-सिंचिता विलसिता उल्लासिता वाटिका।५।
हो आभामय मंद-मंद हँस के फूली लता-व्याज से।
मुक्ता से लसिता तृणावलि मिले हो दिव्य नीलाम्बरा।

आँखों को अनुराग-सिक्त, मन को है मुग्ध देती बना ।
पैन्हे मंजुल मालिका सुमन को उद्यान की मेदिनी ।६।

सरिता

[१]

गीत

ताटक

किसे खोजने निकल पड़ी हो ।
जाती हो तुम कहाँ चली ।
ढली रंगतों में हो किसकी ।
तुम्हें छल गया कौन छली ।१।

क्यों दिन-रात अधीर बनी-सी ।
पड़ी धरा पर रहती हो ।
दुःसह आतप शीत-वात सब
दिनों किस लिये सहती हो ।२।

कभी फैलने लगती हो क्यों ।
कृश तन कभी दिखाती हो ।
अंग - भंग कर-कर क्यों आपे
से बाहर हो जाती हो ।३।

कौन भीतरी पीड़ाएँ।
लहरें बन ऊपर आती हैं।
क्यों टकराती ही फिरती हैं।
क्यों काँपती दिखाती हैं।४।

बहुत दूर जाना है तुमको।
पड़े राह में रोड़े हैं।
हैं सामने खाइयाँ गहरी।
नहीं बखेड़े थोड़े हैं।५।

पर तुमको अपनी ही धुन है।
नहीं किसी की सुनती हो।
काँटों में भी सदा फूल तुम।
अपने मन के चुनती हो।६।

ऊषा का अवलोक वदन।
किस लिये लाल हो जाती हो।
क्यों टुकड़े-टुकड़े दिनकर की।
किरणों को कर पाती हो।७।

क्यों प्रभात की प्रभा देखकर।
उर में उठती है ज्वाला।
क्यों समीर के लगे तुम्हारे
तन पर पड़ता है छाला।८।

क्या यह दिखलाती रहती हो।
भव के सुख - वैभव सारे।
दुखिया को दुख ही देते हैं।
उसे नहीं लगते प्यारे।९।

सदा तुम्हारी धारा में क्यों।
पड़ती भँवर दिखाती है।
क्या वह जी में पड़ी गाँठ का।
भेद हमें बतलाती है।१०।

क्यों नीचे - ऊपर होती हो।
गिरती - पड़ती आती हो।
पानी - पानी होकर भी क्यों।
पानी नहीं बचाती हो।११।

जीवनमय होने पर भी क्यों।
जीवन - हीन दिखाती हो।
कल - विरहित होकर के कैसे।
कल - कल नाद सुनाती हो।१२।

उस नीरव निशीथिनी में जब।
सकल धरातल सोता है।
पवनसहित जब सारा नभ-तल।
शब्दहीन - सा होता है।१३।

तब भी क्रन्दन की ध्वनि क्यों।
कानों में पड़ती रहती है।
कौन व्यथा की कथा तरल-हृदये।
वह किससे कहती है।१४।

होती हैं साँसतें पंथ में।
जल बन जाता है खारा।
सरिते, इतना अधिक तुम्हें क्यों।
अंक उदधि का है प्यारा।१५।

किन्तु देखता हूँ भव में है।
प्रेम - पंथ ऐसा न्यारा।
जिसमें पवि प्रसून होता है।
विधि बनती है असिधारा।१६।

[२]

पाकर किस प्रिय तनया को।
गिरिवर गौरवित कहाया।
किसने पवि-गठित हृदय में।
रस अनुपम स्रोत बहाया।१।

हर अकलित सब करतूतें।
कर दूर अपर अपभय को।

वन सकी कौन रस - धारा।
कर द्रवीभूत हिम - चय को।२।

प्रस्तर - खंडों पेड़ों में।
सब काल कौन अलबेली।
कमनीय छलाँगें भर - भर।
कर - कर अठखेली खेली।३।

करके अपार कोलाहल।
है बड़े वेग से बहता।
किसका प्रवाह पत्थर से।
है टक्कर लेता रहता।४।

सह बड़ी - बड़ी बाधाएँ।
चट्टानों से टकराती।
अन्तर को कौन द्रवित कर।
प्रान्तर में है आ जाती।५।

लहराती हरित धरा में।
कानन की छटा बढ़ाती।
वन कौन मंदगति महिला।
रस से है भरी दिखाती।६।

उछली - कूदी बहु छलकी।
लीं शिर पर बड़ी बलाएँ।

गिरि - कान्त - अंक में किसने।
कीं कितनी कलित कलाएँ।७।

मोती उछालती फिरती।
दरियों में कौन दिखाई।
किसने रख हरित तृणों को।
पत्थर पर दूब जमाई।८।

कल-कल छल-छल पल-पलकर।
है कौन मचलती रहती।
जल बने कौन ढल - ढल के।
बल खा - खाकर है बहती।९।

चंचला बालिकाओं - सी।
है थिरक-थिरक छवि पाती।
करि केलि किलक उठती हैं।
किसकी लहरें लहराती।१०।

हैं हवा बाँधते अपनी।
कैसे जाते हैं खिल - से।
किसके जल में दिखलाये।
बुल्ले प्रसून - से बिलसे।११।

किसके यत्र से रहती है।
हरियाली - मुँह की लाली।

किसके जल ने अवनी की।
श्यामलता है प्रतिपाली।१२।
रस किसमें मिला छलकता।
है कौन सदा रस-भरिता।
किसमें है रस की धारा।
सरिता-समान है सरिता।१३।

[११]

दृग कौन विमुग्ध न होगा।
अवलोकनीय छवि-द्वारा।
है सदा लुभाती रहती।
सरिता की सुन्दर धारा।१।
ऊषा की जब आती है।
रंजित करने की बारी।
किसके तन पर लसती है।
तब लाल रंग की सारी।२।
है मिला किसे रवि-कर से।
सुरपुर का ओप निराला।
किरणें किसको देती हैं।
मंजुल रत्नों की माला।३।
संगी प्रभात के किसको।
हैं प्रभा-रंग में रँगते।

किसकी रंजित सारी में।
हैं तार सुनहले लगते।४।

भरकर प्रकाश किसको है।
दर्पण-सा दिव्य बनाता।
दिन किसकी लहर-लहर में।
दिनमणि को है दमकाता।५।

चाँदनी चाहकर किसको।
है रजत-मयी कर पाती।
किसपर मयंक की ममता।
है मंजु सुधा बरसाती।६।

जगमग-जगमग करती है।
किसमें ज्योतिर्मय काया।
है किसे बनाती छविमय।
तारक-समेत नभ-छाया।७।

जब जलद-विलम्बित नभ में।
पुरहूत-चाप छवि पाता।
तब रंग-बिरंगे कपड़े।
पावस है किसे पिन्हाता।८।

पावस में श्यामल बादल।
जब नभ में हैं घिर आते।

तव रुचिर अंक में किसके।
घन रुचितन हैं मिल जाते।९।
हैं किसे कान्त कर देते।
घन-वन अन्तस्तल-मंडन।
रवि अंतिम कर से शोभित।
सित पीत लाल श्यामल घन।१०।
जब मंजुलतम किरणों से।
घन विलसित है बन जाता।
तब किसे वसन बहु सुन्दर।
है सांध्य गगन पहनाता।११।
जब रीझ-रीझ सितता की।
है सिता बलाएँ लेती।
तब किसे रंजिनी आभा।
राका रजनी है देती।१२।

[१२]

शार्दूल-विक्रीडित

पाता है रस जीव-मात्र किससे सर्वत्र सद्भाव से।
धारा है रस की अबाध किसके सर्वाङ्ग में व्यापिता।
हो-हो के सब काल सिक्त किससे होती रसा है रसा।
पृथ्वी में सरि-सी रसाल-हृदया है कौन-सी सुन्दरी।१।

पाता है कमनीय अंक उसका राकेन्दु-सी मंजुता।
देती है अति दिव्य कान्ति उसको दीपावली व्योम की।
हो कैसे न विभूतिमान् सरिता, हो क्यों न आलोकिता।
होती हैं रवि-बिम्ब-कान्त उसकी क्रीड़ामयी वीचियाँ।२।

आभापूत प्रभूत मंजु रस से हो सर्वदा सिंचिता।
नाना कूल-द्रुमावली कुसुम से हो शोभिता सज्जिता।
लीला-आकलिता नितान्त कलिता उल्लासिता रंजिता।
भू में कौन सरी समान लसिता है दूसरी सुन्दरी।३।

कैसे तो कितनी अनुर्वर धरा होती महा उर्वरा।
पाती क्यों फल-फूल ऊसर मही हो शस्य से श्यामला।
क्यों हो प्रान्तर कान्त लाभ करते उद्यान-सी मंजुता।
होती जो सरला सरी न सिकता सिक्ता कहाती न तो।४।

है कान्ता रवि कान्त भूत कर से है ऊर्मि अंगच्छटा।
हैं शैवाल मनोज्ञ केश उसके जो पुष्प-से हैं लसे।
पा के मंजु मयंक-बिम्ब बनती है चारु-चन्द्रानना।
तो है क्यों बहु-लोचना न सफरी से है भरी जो सरी।५।

वंशस्थ

उठा-उठा के लहरें विनोद की।
किसे नहीं है करती विनोदिता।

उमंगिता मंजुलता - विमोहिता।
तरंग - माला - लसिता तरंगिणी।६।
कभी नचा के रवि को मयंक को।
कभी खेला के उनको स्व-अंक में।
न मोह ले क्यों निज रंगतें दिखा।
तरंगिणी क्या बहुरंगिणी नहीं।७।
बना - बना स्पंदित मन्दिरादि की।
द्रुमावली की प्रतिबिम्ब-पंक्ति को।
समीर से खेल नचा मयंक को।
तरंगिणी है बनती तरंगिणी।८।

[१३]

सरोवर

गीत

आँसू बहा - बहा यों छविमान कौन छीजा।
किसका करुण हृदय है इतना अधिक पसीजा।
हैं बार - बार करती किसको व्यथित व्यथाएँ।
बनती सलिलमयी हैं किसकी कसक-कथाएँ।१।
पावस मिले उमड़कर तन में न जो समाया।
क्यों क्षीण हो चली यों उसकी पुनीत काया।

प्रिय बंधु का विरह क्या अब है उसे सताता।
क्या प्रेम वारिधर का वह है न भूल पाता।२।
जो कर प्रभात-रवि का कमनीयता-निकेतन।
उसपर वितान देता दिव दिव्य कान्ति का तन।
जो मंजु वीचियों को मणि-माल था पिन्हाता।
सर ज्योति-जाल जिसका अवलोक जगमगाता।३।
पावक उपेत बन जब तप में वही तपाता।
तब था पयोद बनता उसका प्रमोद-दाता।
वह घेर रवि-करों का था पंथ रोक लेता।
बनकर फुहार उसको था वह विनोद देता।४।
मंजुल मृदंग की-सी मृदु मंद ध्वनि सुनाता।
वह दामिनी-दमक-मिस हँस-हँस उसे रिझाता।
आतप हुए प्रखर जब उत्ताप था बढ़ाता।
छाया-प्रदान कर तब उसको सुखित बनाता।५।
जब अंशु-जाल फैला तनता दिनेश ताना।
तब सांध्य व्योम-तल में धरकर स्वरूप नाना।
वह था तरंग-संकुल जलराशि को लसाता।
उसको सुलैस विलसित बहु वस्त्र था पिन्हाता।६।
प्रतिदिन विलोक तन को जीवन-विहीन होते।
आश्रित उदक घरों को सुखमय विभूति खोते।

जिस काल सर बहुत ही कृशगात था दिखाता।
संजीवनी सुधा तब घन था उसे पिलाता।७।
जिसके समान जीवन-दाता न अन्य पाया।
हो-हो दयालु द्रवता जो सब दिनों दिखाया।
हो याद क्यों न उसकी जो रस-भरित कहाया।
जिसने बरस-बरस रस सर को सरस बनाया।८।

[१४]

गीत

लोचनों को ललचाते हो।
बहुत हृदयों में बसते हो।
चुरा लेते हो जन - मानस।
खिले कमलों से लसते हो।१।

कमल-मिस खोल विपुल आँखें।
भव-विभव को विलोकते हो।
या कलित कोमल कर फैला।
ललित-तम भूति लोकते हो।२।

छटा - कामिनी कान्त - शिर के।
छलकते रस के कलसे हैं।
या कमल-पग कमलापति के।
सरस-तम उर में विलसे हैं।३।

तुम्हारे तरल अंक में लस।
केलिरत हो छवि पाती हैं।
लोकहित से लालायित हो।
ललित लहरें लहराती हैं।४।

क्यों न कर अंगारे उगलें।
क्यों न जाये रवि आग बरस।
एकरस रह रस रखते हो।
कभी तुम बने नहीं असरस।५।

सुगंधित हो-हो धीरे चल।
समीरण तुम्हें परसता है।
चाँदनी रातों में तुमपर।
सुधाकर सुधा बरसता है।६।

तुम्हें क्या परवा, घन जल दे।
या गरज ओले बरसाये।
धूल डाले आकर आँधी।
या पवन पंखा झल जाये।७।

बोलते नहीं किसी से तुम।
लोग खीजें या यश गावें।
ललक लड़के छिछली खेलें।
या तमक ढेले बरसावें।८।

बिके हो सबके हाथों तुम।
मोल कब किससे लेते हो।
प्यास हरते हो प्यासों की।
सदा रस सबको देते हो।९।

बुरा तुमने किससे माना।
बला ले या कि बला ला दे।
तपाये चाहे आतप आ।
चाँदनी चाहे चमका दे।१०।

बहुत ही प्यारे लगते हो।
दिखाते हो सुन्दर कितने।
बता दो हमें सरोवर यह।
किस लिये हो रसमय इतने।११।

[१५]

वंशस्थ

न चित्त होगा सुप्रफुल्ल कौन-सा।
न प्राप्त होगी किसको मिलिन्दता।
वसुंधरा के सरसी - समूह में।
विलोक शोभा अरविन्द - वृन्द की।१।
लगे हुए दर्पण हैं जहाँ - तहाँ।
विलोकने को दिव - लोक - दिव्यता।

जमा हुआ सञ्चित नेत्र - वारि या।
वसुंधरा में सर हैं विराजते।२।

द्रुतविलम्बित

भरत - भूमि - समान न भूमि है।
अचल हैं न हिमाचल - से बड़े।
सुरसरी - सम है न कहीं सरी।
सर न मान - सरोवर - सा मिला।३।

शार्दूल-विक्रीडित

मोती पा न सके मराल उसमें हैं कंज वैसे कहाँ।
है वैसी कमनीयता सरसता औ दिव्यता भी नहीं।
वैसा निर्मल काँच-तुल्य जल भी है प्राप्त होता नहीं।
कैसे तो सर अन्य, मानसर-सा, पाता महत्ता कभी।४।
है तेरा उर सिक्त, तू तरल है, क्यों मान लूँ मैं इसे।
तू है धीर, गँभीर है, सरस है, ऐसा तुझे क्यों कहूँ।
रोते या करते विलाप उनकी है यामिनी बीतती।
कोकी-कोक-मिलाप रोक सर तू क्यों शोक-धाता बना।५।
दूर्वा-श्यामल भूमि-मध्य सरसी है आरसी-सी लसी।
पाते हैं उसके सुसिक्त तन में एकान्तता वारि की।
शोभा है जलराशि में विलसते उत्फुल्ल अंभोज की।
होती है प्रिय सद्म पद्मचय में पद्मासना की प्रभा।६।

वंशस्थ

मराल - माला यदि है सदाशया।
कुकर्म में तो रत है वकावली।
सपूत भी है कुल में कपूत भी।
सरोज भी है सर में सेवार भी।७।

शार्दूल-विक्रीडित

है प्रायः पर खोल - खोल उड़ती या तोय में तैरती।
या बैठी सर-कान्त-कूल पर है शृंगारती गात को।
है पीती जल या कलोल करती है लोल हो डोलती।
बोली बोल अमोल केलि-रत हो नाना विहंगावली।८।

वंशस्थ

विनोदिता है सरसी विभूति से।
अतीव उत्फुल्ल सरोज - पुंज है।
विकासिका है सरसी सरोज की।
सरोज से है सरसी सुशोभिता।९।

द्रुतविलम्बित

छलक हैं भरती छवि वारि में।
सर मनोहरता अलबेलियाँ।
उछलती छिछिली खुल खेलती।
मछलियाँ करतीं अठखेलियाँ।१०।

जलद है, पर वारिद है नहीं।
सरस हो बनता रस - हीन है।
सर - प्रसंग विचित्र प्रसंग है।
रह सजीवन जीवन - शून्य है।११।

शार्दूल-विक्रीडित

पैन्हे वस्त्र हरे खड़े विटप हैं दृश्यावली देखते।
धीरे है घन का मृदंग बजता, है ताल देती दिशा।
यंत्रों-सा सर को निनादित बना हैं बूँदियाँ छूटती।
गाते भृंग विहंग हैं, कर उठा हैं नाचती वीचियाँ।१२।
कान्ता-केश-कलाप-से विलसते शैवाल की मंजुता।
मीनों का बहु लोल भाव सर की लीलामयी व्यंजना।
होगा कौन नहीं विमुग्ध किसमें होगी न उत्फुल्लता।
देखे रंग-बिरंग कंज - कलिता न्यारी तरंगावली।१३।
है आती तितली दिखाती छटा, गाती विहंगावली।
है माती फिरती मिलिंद-अवली पा कंज से मत्तता।
आ के है बहुधा हवा सुरभिता अंभोज से खेलती।
हैं न्हाती मिलती समोद सर में दिव्यांगनाएँ कहीं।१४।

द्रुतविलम्बित

विकसिता लसिता अनुरंजिता।
रसमयी कब थी न सरोजिनी।

मधुरता रसिका कब थी नहीं।
मधु-रता, मधु की मधुपावली।१५।

[१६]

प्रपात

गीत

१

निम्न गति खलती रहती है।
या पतन बहु कलपाता है।
या किसी प्रियतम का चिंतन।
दृग - सलिल बन दिखलाता है।

बहु विपुल वाष्प गिरि-हृदय में।
सर्वदा भरता रहता है।
वही क्या तरल तोय हो - हो।
उत्स बन - बनकर बहता है।२।

गिरि-शिखर पर बहुधा वारिद।
विहरता पाया जाता है।
स्वेद क्या उसके अंगों का।
सिमिट प्रस्रवण कहाता है।३।

पर कटे कटे किन्तु अब भी।
पड़ा करता है पवि शिर पर।

इसीसे सदा उत्स मिस क्या।
गिराता है आँसू गिरिवर।४।

उत्स है उत्स या तपन के।
तापमय कर अवलोकन कर।
कलेजा गिरि का द्रवता है।
पसीजा करता है पत्थर।५।

रुदन-रत किसी व्यथित चित का।
निज व्यथा जो यों हरता है।
गिरे हैं झर-झर आँसू या।
नीर निर्झर का झरता है।६।

दलित दूबों का मुक्ता-फल।
छीनते हैं सहस्रकर-कर।
देख यह दशा मेरु रो-रो।
क्या बनाते हैं बहु निर्झर।७।

परम शीतल शिर-मंडन हिम।
ताप से तप जाता है गल।
प्रकट करता है क्या यह दुख।
उत्स मिस मेरु बहा दृग-जल।८।

नित्य होती पशु-हिंसा से।
क्या मथित हृदय कलपता है।

देख बहु करुण दृश्य क्या गिरि ।
उत्स के व्याज बिलपता है ।९।

कौन - सी पीड़ा होती है ।
किन दुखों से वे भरते हैं ।
सदा झरनों के नयनों से ।
किसलिये आँसू झरते हैं ।१०

[१७]

२

किस वियोगिनी के आँसू हो ।
किस दुखिया के हो दृग - जल ।
किस वेदनामयी बाला की ।
मर्म - वेदना के हो फल ।१।

निकले हो किस व्यथित हृदय से ।
हो किस द्रव मानस के रस ।
क्या वियोग की घटा गई है ।
आकुलतामय वारि बरस ।२।

किस धुन में यों निकल पड़े हो ।
जाते हो तुम कहाँ चले ।
गिरिवर है पवि-हृदय, किस तरह ।
उसमें तुम, हो सरस, पले ।३।

क्यों पछाड़ खाते रहते हो।
क्यों सिर पटका करते हो।
क्या इस भाँति किसी वहुदग्धा।
व्यथिता का दम भरते हो।४।

या यह दिखलाते रहते हो।
पड़े प्रबल दुख से पाला।
बार - बार व्याकुल हो-हो क्या।
करती है व्यथिता बाला।५।

उठे हुए उद्गार - वाष्प जो।
अन्तस्तल में भरते हैं।
धूम-पुंज-सम हृदय-गगन में।
वे जिस भाँति विचरते हैं।६।

उड़ा - उड़ा छींटे बल खा - खा।
क्या वह दृश्य दिखाते हो।
मचल-मचल गिर-गिर उठ-उठ।
क्या उनकी गति बतलाते हो।७।

कल-विहीन हो कल-कल करते।
किन ढंगों में ढलते हो।
दृग-जल के समान छल-छल कर।
उछल-उछल क्यों चलते हो।८।

क्या वियोग के कितने भावों का ।
यों अनुभव करते हो ।
अथवा संगति के प्रभाव से ।
भावुकता से भरते हो ।९।

बहुत मचाते हो कोलाहल ।
पर यह नहीं बताते हो ।
किस वियोगिनी या व्यथिता ।
बंधन में बँधे दिखाते हो ।१०।

ऐसी विश्व - व्यापिनी किसकी ।
पीड़ा और व्यथाएँ हैं ।
अकथनीय किस दृग आँसू की ।
दुख से भरी कथाएँ हैं ।११।

है वह कौन कामिनी जिसका ।
गया सकल सुख यों कीला ।
अथवा प्रकृति - वधूटी की है ।
यह रहस्य - पूरित लीला ।१२।

[१८]

३

शार्दूल-विक्रीडित

तो जाता पटका नहीं न पिटता, भाती न जो नीचता ।
जो ऊँचे चढ़के न उत्स गिरता तो चोट खाता नहीं ।

तो होगा उसका नहीं पतन क्यों जो निम्नगामी बना।
तो चाँटे लगते नहीं मरुत के, छींटे उड़ाता न जो।१।

क्यों धोते मल अंक का न मिलते सोते सहस्रों उन्हें।
क्यों बोते रस-बीज केलि-थल में, पाते निकुंजें कहाँ।
कैसे पादप-पुंज से विलसते हो के फलीभूत वे।
तो खोते गिरि-गात की सरसता, जो उत्स होते नहीं।२।

कैसे तो मिलते विचित्र विटपी लोकाभिरामा लता।
कैसे तो कुसुमालि लाभ करती हो शस्य से श्यामला।
क्यों पाती बहुरंजिता विलसिता आलोकिता बूटियाँ।
पाके उत्स-समूह जो न रहती उत्साहिता अद्रिभू।३।

आता है सुरलोक से सलिल या धारा सुधा की बही।
होता है रव वारि के पतन का या केलि-कल्लोल है।
है उद्वेलित उत्स या प्रकृति का आनन्द-उल्लास है।
छींटे हैं उड़ते कि हैं बिखरते मोती उछाले हुए।४।

हो-हो वारि वियोग से व्यथित क्या है सिक्त स्नेहाम्बु से।
या प्यासा अवलोक प्राणिचय को होता द्रवीभूत है।
या है भूरि पसीजता विकलता देखे दयापात्र की।
रोता है जड़ता विलोक गिरि की या उत्स आँसू बहा।५।

होता है जल-पात-नाद अथवा है शब्द उन्माद का।
या हो आकुल है सदैव कहती कोई कथा दिग्वधू।

या दैवी सरिता-प्रवाह-रव है आकाश से आ रहा।
या गाता गुण उत्स है प्रकृति का स्नेहाम्बु से सिक्त हो। ६।
चिल्लाते रहते, नहीं सँभलते, बातें नहीं मानते।
हो सीधे चलते नहीं, विचलते पाये गये प्रायशः।
क्या कोई तुमसे कहे, बहकना है उत्स होता बुरा।
पानी क्या रखते सदैव तुम तो पानी गँवाते मिले। ७।
प्यासे की धन-प्यास है न बुझती कोई पिसे तो पिसे।
लोभी-लोक विभूति-लाभ कर भी लोभी बना ही रहा।
बेचारा हिम बार-बार गल के पानी-प्रदाता रहा।
दे-दे वारि विलीन वारिद हुए, क्या उत्स तो भी भरा। ८।
नाना कीट-पतंग पी जल जिये, पत्ती करोड़ों पले।
हो-हो सिक्त हुई प्रसन्न जनता तो क्या उसे दे सकी।
होती है उपकार-वृत्ति सहजा लोभोपनीता नहीं।
लाखों पेड़ सिँचे, परन्तु किससे क्या उत्स पाता रहा। ९।
सिक्ता शीतलतामयी तरलता आधारिता शब्दिता।
नाना केलि-निकेतना सरसता-सम्पत्ति-उल्लासिता।
शोभा-आकलिता अतीव ललिता लीलांक में लालिता।
उत्कंठा वर व्यंजना विलसिता है उत्स की उत्सता।१०।
है सींचा करता असंख्य तरुओं नाना तृणों को सदा।
देता है जल बार-बार बहुशः भृंगों मृगों आदि को।

स्रोतों का सरितादि का जनक है भू-जीवनाधार है।
तो हो वर्द्धित क्यों न उत्स वह तो उत्साह की मूर्त्ति है।११।
ऊषा क्यों न उसे प्रदान करती आभा मनोरंजिनी।
क्यों देता न दिनेश दिव्य कर से संदीपिनी दिव्यता।
कैसे तो उससे गले न मिलती राका-निशा-सुन्दरी।
होता है गतिशील उत्स फिर क्यों उत्कर्ष पाता नहीं।१२।
क्यों लेते गिरि गोद में न उसको देते नहीं मान क्यों।
कैसे आकर वायु पास उसके पंखा हिलाती नहीं।
क्यों पाता न विकास भानु-कर से राकेन्दु से मंजुता।
जो है जीवनवान उत्स उसका उत्थान होता न क्यों।१३।
ये हैं रोग वियोग सोग फल या संताप में हैं पगे।
या हैं भावुकता-विभूति अथवा सद्भाव में हैं सने।
या हैं आकुलता-प्रसूत भय या उन्माद के हैं सगे।
या हैं नीर गिरे भरे नयन से या निर्झरों से झरे।१४।

पंचम सर्ग

दृश्य जगत्

समुद्र

रोला

[१]

वर विभूतिमय बनी विलसते विभव दिखाये।
रसा नाम पा सकी रसा किसका रस पाये।
अंगारक-सा तप्तभूत शीतल कहलाया।
किसके बल से सकल धरातल बहु सरसाया। १।

शस्यश्यामला बनी हरितवसना दिखलाई।
ललित लता-तृण मिले परम अनुपम छवि पाई।
विकसित-वदना रही पहन कुसुमावलि-माला।
किसको पाकर धरा हो सकी दिव की बाला। २।

हरे-भरे फल-भार नये नव दल से विलसे।
खड़े विविध तरु-निचय खेलते मृदुल अनिल से।
मिले सरसता-हीन अवनि को किसके द्वारा।
मरु को किसने सदय-हृदय बन दी जल-धारा। ३।

बीज दाघ का जब निदाघ भव में बोता है।
तपन-ताप से तप्त धरातल जब होता है।
दुःख-वाष्प तब किसके उर में भर जाता है।
ऊपर उठकर नील नीरधर बन पाता है। ४।
कौन नीर-धर ? वह, जो है जग-जीवन-दाता।
एक-एक रजकण को जो है सिक्त बनाता।
जिससे गिरि, तर, परम सरस तरुवर बनता है।
अति कमनीय वितान गगन में जो तनता है। ५।
जब सुरेन्द्र ने परम कुपित हो वज्र उठाया।
काट-काटकर पक्ष पर्वतों को कलपाया।
परम द्रवित उस काल हृदय किसका हो पाया।
किसने बहुतों को स्वअंक में छिपा बचाया। ६।
किसने अपनी सुता को बना हरि की दारा।
अयुत-वदन अहि-विष से महि को सदा उबारा।
निम्न-गामिनी नदियों को किसने अपनाया।
सुर-समूह ने सुधा सुधाकर किससे पाया। ७।
गरल-कंठ बन सके गरल के यदि अनुरागी।
तो हो दग्ध नहीं दयालुता निधि ने त्यागी।
जलते बड़वानल ने किससे जीवन पाया।
कौन सुधानिधि-सा वसुधा में सरस दिखाया। ८।

समुद्र की सामयिक मूर्त्ति

[२]

जलनिधि प्रभात होतें ही ।
है बहुत दिव्य दिखलाता ।
अवलोक दिवस को आता ।
है फूला नहीं समाता । १ ।

स्वागत-निमित्त दिन-पति के ।
है पट पाँवड़े बिछाता ।
या रागमयी ऊषा की ।
रंगत में है रँग जाता । २ ।

या प्रकृति-सुन्दरी हँसती ।
सिन्दूर-भरी है आती ।
अपना अनुराग उदधि के ।
अंतर में है भर जाती । ३ ।

या रमा समा अभिरामा ।
रमणी है रंग दिखाती ।
जग निज ललामता-लाली ।
आलय में है फैलाती । ४ ।

कुछ काल बाद वारिधि में ।
है कनक-कान्ति भर जाती ।

उर मध्य लालिमा लसती।
है विभामयी वन पाती। ५।

दिनमणि सहस्र कर से क्या।
निधि को है कान्त बनाता।
अनुराग-रँगा अन्तर या।
है दिव्य ज्योति पा जाता। ६।

इस काल कूल का तरुवर।
है प्रभा-पुंज से भरता।
रवि-किरणों पर मुक्तावलि।
है निखर निछावर करता। ७।

वालुका विलसकर हँसकर।
है बहुत जगमगा जाती।
मिल किरणावलि से लहरें।
हैं मंद-मंद मुसकाती। ८।

चट्टानें चमक - चमककर।
चमकीली हैं दिखलाती।
अवलोक वदन दिनमणि का।
हैं अन्तर-ज्योति जगाती। ९।

इतने में दूर कहीं पर।
कुहरा उठता दिखलाता।

फिर नीले नभ में फिरता।
सित जलद-खंड आ जाता।१०।

थी जगी अयुत-मुख अहि की।
प्रश्वास - प्रक्रिया सोई।
या किसी जलधि के रिस का।
यह पूर्व रूप था कोई।११।

फिर नील - कलेवर होकर
उसने नीलाम्बर पहना।
बन गया वारिनिधि-तन का।
दिव-ज्योति-पुंज वर गहना।१२।

इस काल मध्य नभ में आ।
रवि था चौगुना चमकता।
उठती तरंग - माला में।
था बन बहु दिव्य दमकता।१३।

दिन ढले अचानक नभ में।
है घन-समूह घिर आता।
है वायुवेग से बहती।
भय भू में है भर जाता।१४।

हैं विटप विधूनित होते।
है छिपता पुलिन दिखाता।

पत्तों पर बूँद पतन का।
है टपटप नाद सुनाता।१५।

इस समय कँपाता उर है।
गंभीर सिंधु का गर्जन।
अमितावदात अंतस्तल!
उत्ताल-तरंगाकुल तन।१६।

विकराल रूप धारण कर।
उत्पातों से लड़ता है।
या प्रबल प्रभंजन पर वह।
बन प्रबल टूट पड़ता है।१७।

दिवसान्त देखकर फिर वह।
बनता है कान्त कलेवर।
कर लाभ नीलिमा नभ-सी।
बन रवि-कर से बहु सुन्दर।१८।

शारद सुनील नभतल ज्यों।
पा ज्योति जगमगाता है।
दामिनी - दमक से जैसे
श्यामल घन छवि पाता है।१९।

कमनीय कान्ति से त्यों ही।
कुछ काल अलंकृत होकर।

निधि धूमिल है बन जाता।
वहु धूम-पुंज से भर-भर ।२०।

दिव-मण्डन दिनमणि को खो।
क्या वह आहें भरता है।
कर वाष्प - समूह - विसर्जन
या हृदय-व्यथा हरता है ।२१।

दुख-सुख हैं मिले दिखाते।
महि परिवर्त्तन - शीला है।
है कौन द्वंद से छूटा।
भव की विचित्र लीला है ।२२।

रवि छिपे निशामुख-कर ने।
भव-ग्रंथ-पृष्ठ को उलटा।
संकेत समय का पाकर।
पट प्रकृति-नटी ने पलटा ।२३।

रत्नाकर की रत्नाकरता

[३]

वह कमल कहाँ पर मिलता।
जो धाता का है धाता।
पाता वह वास कहाँ पर।
जो सब जग का है पाता। १।

सुर-असुर-निकर को कैसे।
मोहनी मूर्त्ति दिखलाती।
सब अमर-वृन्द को किससे।
अभिलषित सुधा मिल पाती।१२।

होता निदान रोगों का।
क्यों भोगों के मुख खिलते।
किसके सुअंक से भव को।
धन्वन्तरि-से सुत मिलते।१३।

क्यों मही का पानी रहता।
कैसे बहता रस-सोता।
तो जीवन जीव न पाते।
जो जग में जलधि न होता।१४।

समुद्र का संताप

[४]

क्यों धरती पर पड़े हुए तुम।
सदा तड़पते रहते हो।
क्यों रह-रहकर चिल्लाते हो।
क्यों आकुल बन बहते हो।१।

बतला दो क्यों चल दलदल-सा।
हृदय तुम्हारा हिलता है।

बार-बार कँपने से क्यों।
छुटकारा तुम्हें न मिलता है। २।

डूब-डूब करके आँसू में।
क्यों तुम कलपा करते हो।
वाष्प - समूह - विमोचन कर
क्यों प्रति दिन आहें भरते हो। ३।

कौन-सी जलन है वह जिससे।
जलते सदा दिखाते हो।
बहुत क्षुभित होते हो तुम।
क्यों परम कुपित बन पाते हो। ४।

छिने चतुर्दश रत्न इसी से।
विपुल व्यथा क्या होती है।
उसकी सुधि वेदनामयी बन।
बिलख-बिलख क्या रोती है। ५।

हो मर्यादाशील; किन्तु है।
प्रलयंकरी प्रबल धारा।
कलित ललित लीलामय हो; पर
सलिल तुम्हारा है खारा। ६।

कला-कान्त है परम प्रिय सुअन।
किन्तु नितान्त कलंकित है।

क्षय-रुज-ग्रसित प्रचंड राहु से।
त्रसित प्रवंचित शंकित है। ७।

सकल-लोकपति-अंक-शायिनी।
रमा-समा दुहिता प्यारी।
है चंचला उलूक-वाहना।
विपुल विलासमयी नारी। ८।

जिस घन के तुम पूज्य पिता हो
जिसने सरस हृदय पाया।
जिससे सलिल मिले रहती है।
हरी-भरी महि की काया। ९।

एक-एक रजकण तक जिससे
सतत सिक्त हो पाता है।
वह बहुधा कर पवि-प्रहार।
तुम पर ओले बरसाता है।१०।

क्या ये सारी मर्म-वेधिनी
बातें व्यथित बनाती हैं।
विविध रूप धरकर तुमको
दुख देतीं, बहुत सताती हैं।११।

सदा तुम्हारे अन्तस्तल में।
हैं विपत्ति-भंजन रहते।

नहीं समझ में आता कैसे।
तब विपत्ति वे हैं सहते।१२।

लाखों 'बरस कमल-दल पर
तुमने कमलासन को पाला
अहह उन्होंने तुमको कैसे।
ऐसे संकट में डाला।१३।

नहीं सोच सकता कुछ कोई।
क्यों न विबुध हो कैसा ही।
यह संसार रहा रहस्यमय।
सदा रहेगा ऐसा ही।१४।

सागर की सागरता

[५]

फूल पत्ते जिससे पाये।
मिली जिससे मंजुल छाया।
मधुरता से विमुग्ध हो-हो।
मधुरतम फल जिसका खाया। १।

जो सहज अनुरंजनता से।
नयन-रंजन करता आया।
काट उस हरे-भरे तरु को।
जन-दृगों में कब जल आया। २।

धरातल-अंक में विलसती।
लता कल कोमल दलवाली।
कलित कुसुमावलि से जिसकी।
सुछवि मुख की रहती लाली। ३।

वहन करके सौरभ जिसका
सौरभित था मारुत होता।
कुचलकर उसे राह चलते।
क्या कभी जन-मन है रोता। ४।

किसी सुन्दर तरु पर बैठा।
निरखता निखरी हरियाली।
छटा अवलोक प्रसूनों की।
मत्तता कर की सुन ताली। ५।

मुग्ध हो परम मधुर स्वर से।
गीत जो अपने गाता है।
वेधकर उस निरीह खग को।
मनुज-मन क्या बिंध पाता है। ६।

'सहज अलबेलापन' छवि लख।
जाल में जिसकी फँसता है।
बड़ा ही अनुपम भोलापन।
आँख में जिसकी बसता है। ७।

घास खा, वन में रह, जो मृग।
बिताता है अपना जीवन।
वेधकर उसको बाणों से।
क्या कलपता है मानव-मन। ८।

फूल-जैसे लाखों बालक।
पाँव से उसने मसले हैं।
लुट गईं अगणित ललनाएँ।
कभी जो तेवर बदले हैं। ९।

लोभ की लहरों में उसकी।
करोड़ों कलप-कलप डूबे।
न बेड़ा पार हुआ उनका।
भले थे जिनके मनसूबे।१०।

लहू की प्यास न बुझ पाई।
बीतती जाती हैं सदियाँ।
उतरते ही जाते हैं सिर।
रुधिर की बहती हैं नदियाँ।११।

आज तक सके न उतने बस।
उजाड़े गए सदन जितने।
सकेगा समय भी न बतला।
उतारे गए गले कितने।१२।

पिसे उसके कर से सुरपति।
लुट गया धनपति का सब धन।
नगर सुरपुर-जैसे उजड़े।
मरु बने लाखों नन्दन-वन।१३।

पर नहीं मनु-सुत के सिर पर।
पड़ सकी सुरतरु की छाया।
सदा उर बना रहा पवि-सा।
कलेजा मुँह को कब आया।१४।

देख निर्ममता मानव की।
प्रकृति कब नहीं बहुत रोई।
जमा है यह उसका आँसू।
नहीं है यह सागर कोई।१५।

शार्दूल-विक्रीडित

[६]

कैसे तो अवलोकता निज छटा तारों-भरी रात में।
कैसे नर्त्तन देखता सलिल में लाखों निशानाथ का।
होती वारिधि-मध्य दृष्टिगत क्यों ज्योतिर्मयी भूतियाँ।
आईना मिलता न जो गगन को दिव्याभ अंभोधि-सा।१।

संध्याकाल हुए व्यतीत भव में आये-अमा यामिनी।
सन्नाटा सब ओर पूरित हुए, छाये महा कालिमा।

नीचे-ऊपर अंक में उदधि के सर्वत्र भू में भरे।
तो देखें तमपुंज को प्रलय का जो दृश्य हो देखना।२।
क्या धन्वन्तरि के समान सुकृती, क्या दिव्य मुक्तावली।
क्या आरंजित मंजु इन्द्रधनु, क्या रंभा-समा सुन्दरी।
सारे रत्न-समूह भव्य भव के अंभोधि-संभूत हैं।
क्या कल्पद्रुम, क्या सुधा, सुरगवी, क्या इन्दु, क्या इन्दिरा।३।
होता है सित दिव्यक्षीरनीधि-सा राका सिता से लसे।
पाता है बहते हिमोपल भरे कल्लोल से भव्यता।
जाता है बन कान्त मत्स्य-कुल की आलोक-माला मिले।
देखी है किसने कहाँ उदधि-सी स्वर्गीय दृश्यावली।४।
आभा से भर के सतोगुण हुआ सर्वाङ्ग में व्याप्त है।
या सारा जल हो गया सित बने क्षीराब्धि के दुग्ध-सा।
या भू में, नभ में, समुद्र-तन में है कीर्त्ति श्री की भरी।
या राका-रजनी-विभूति-बल से वारीश है राजता।५।
है उत्ताल तरंग में विलसती उद्दीप्त शृंगावली।
किंवा हैं जल-केलि-लग्न जल में ज्योतिष्क आकाश के।
किंवा हीरक-मालिका उदधि में हैं अर्बुदों शोभिता।
किंवा हैं हिम के समूह बहुशः पाथोधि में पैरते।६।
जैसे हैं तमपुंज भूरि भरते पाथोधि के अंक में।
वैसे ही बहु दिव्य मीन विधि ने अंभोधि को हैं दिये।

आये मूर्तिमती मसी सम निशा घोरांधकारावृता।
विद्युद्दीप-समान है दमकती वारीश-मत्स्यावली ।७।
ऊषा-से अनुराग-राग-लसिता शोभा मनोरंजिनी।
स्वर्णाभा रवि के सहस्र कर से राका निशा से सिता।
भू से भूरि विभूति पूत विधु से सच्ची सुधा-सिक्तता।
पाता है रस-धाम वारि-धर से वारीश-मुक्तावली ।८।
आये घोर विभावरी उदधि में तेजस्विता है भरी।
या आलोक-निकेत मीन-कुल हैं कल्लोल में डोलते।
किंवा मंथन से पयोधि-पय के विद्युद्विभा है जगी।
या व्यापी वडवाग्नि-दीप्ति-बल से दीपावली है वली ।९।
नीले व्योम-समान है विलसता, है मोहता कान्त हो।
है आवर्त्त-समूह से थिरकता, है नाचता मत्त हो।
है पाता रवि से अलौकिक विभा, राकेश से दिव्यता।
है शोभामय सिंधु की सलिलता लावण्यलीलामयी ।१०।
होती है गुरु गर्जनाति-विकटा विद्युन्निपाताधिका।
देखे तुंग तरंग-भंग भरती है भीति सर्वाङ्ग में।
होते हैं बहु पोत भग्न पल में आवर्त्त के गर्त्त में।
भू में भूरि विभीपिका भरित है अंभोधि अंभोधि-सा ।११।
है सर्वाधिक वारि-लाभ करता पाथोधि पर्जन्य से।
सारा तोय-समूह सर्व नदियाँ देतीं उसे सर्वदा।

तो भी है वह अल्प भी न बढ़ता, सीमा नहीं त्यागता।
पाते हैं किसमें रसाधिपति-सी गंभीरता धीरता।१२।
पानी है रखता, गँभीर रहता, है धीरता से भरा।
जाती पास नहीं कदापि कटुता अस्निग्धता क्षुद्रता।
देखी नीरसता कभी न उसमें, पाई नहीं शुष्कता।
है मर्यादित कौन नीरनिधि-सा संसार में दूसरा।१३।
पाई श्री हरि ने, तुरंग रवि ने, मातंग देवेन्द्र ने।
सारे उत्तम रत्न कल्पतरु से वृन्दारकों ने लिये।
देखो मन्थन से अगाध निधि के क्या दानवों को मिला।
होती है वर बुद्धि ही जगत में सर्वार्थ की साधिका।१४।
टाली भीति नृलोक की, गरलता पाथोधि की दूर की।
थोड़ा लेकर वक्र अंश शशि का राकेशता दी उसे।
क्या पाया शिव ने सिवा गरल के दे दी सुरों को सुधा।
होते हैं महनीय कीर्त्ति महि में माहात्म्य की मूर्त्तियाँ।१५।
नाना क्रूर प्रचंड जन्तु कुल के उत्पीडनोत्पात से।
आता है बहु झाग सिंधु-मुख से क्या क्षुब्धता के बढ़े।
किंवा सात्विक भाव क्रुद्ध उर से उत्क्षिप्त है हो रहा।
होता फेनिल है समुद्र बहुधा या शेष फूत्कार से।१६।
बारंबार सुना विकम्पितकरी अत्युत्कटा गर्जना।
नाना दृश्य दिखा-दिखा प्रलय के आवर्त्त-माला मिले।

होती है विकराल मूर्त्ति निधि को अत्यंत त्रासप्रसू।
हो आन्दोलित चंड वायुबल से, कल्लोल से लोल हो।१७।
छोटे हैं बनते विशाल, लघुता पाते महाद्वीप हैं।
डूबे देश कई, बनी मरु मही भू शस्य से श्यामला।
कैसी है यह नीति सिंधु! तुममें क्या है महत्ता नहीं।
होते हैं जल-मग्न वे नगर जो थे स्वर्ग-जैसे लसे।१८।
खाते हैं लघु को बड़े रिपु बने हैं निर्बलों के बली।
नाना आश्रित व्यर्थ कष्ट कितने हैं भोगते सर्वदा।
हो ऐसे ममता-विहीन निधि क्यों होके महाविक्रमी।
सारे जंतु-समूह मत्स्य-कुल के हो जन्मदाता तुम्हीं।१९।
तो क्या हैं गिरि-तुल्य तुंग लहरें क्या है महागर्जना।
है रत्नाकरतातितुच्छ विभुता है व्यर्थ आवर्त्त की।
तो है हेय अगाधता सरसता गंभीरता सिंधु की।
कष्टों से बहु आर्त्त मत्स्य-कुल जो है त्राण पाता नहीं।२०।
पोतों को कर मग्न भग्न कब है होती समुद्विग्नता।
लाखों का कर प्राण-नाश उसको रोमांच होता नहीं।
लाती है अवसन्नता न उसमें संहार-दृश्यावली।
जैसा निर्दयता-निकेत निधि है, है वज्र वैसा कहाँ।२१।
हो सम्मानित भव्य भाव प्रतिभू हो भूतियों से भरा।
पापों का फल पा सका सब सदा दुर्वृत्तियाँ हैं बुरी।

सारे रत्न छिने, विलोड़ित हुआ, है दग्ध होता महा ।
पी डाला मुनि ने, तिरस्कृत बना, पाथोधि बाँधा गया ।२२।
कैसे मान सकें तुझे सरस, तू संताप-सन्दोह है ।
जो तू है पवि-सा, तुझे तरलता-सर्वस्व कैसे कहें ।
हों ऊँची उठती, परन्तु निधि ! हैं तेरी तरंगें बुरी ।
होते हैं बहु पोत भग्न जिनसे, है मग्न होती तरी ।२३।
हैं नाना विकराल जन्तु उसमें, आपत्तियाँ हैं भरी ।
है संहारक, मूर्त्तिमन्त यम है, आतंक का केन्द्र है ।
तो भी है यह बात सत्य भव का कोई यशस्वी सुधी ।
पारावार अपार दिव्य गुण का है पार पाता नहीं ।२४।
होती है विभुता-विभूति विदिता सद्रत्न-माला मिले ।
देती है बतला सदैव गुरुता गंभीरता गर्जना ।
गाती है गुण-मालिका सरव हो सारी तरंगावली ।
राका रम्य निशा सिता जलधि को सत्कीर्त्ति की मूर्त्ति है ।२५।

था उन दिनों मरुस्थल से भी नीरस सारा भू-मंडल।
परम अकान्त, अनुर्वर, धू-धू करता, पूरित बहु कश्मल।९।
यथा-काल फिर भू के तन में वांछित शीतलता आई।
धीरे-धीरे सजला सुफला शस्य-श्यामला वन पाई।१०।
उसके महाविशाल अंक में जलधि विलसता दिखलाया।
जिसको अगम अगाध सहस्रों कोसों में फैला पाया।
रत्न-राजि उत्ताल तरंगें उसको अर्पित करती थीं।
माँग वसुमती-सी देवी की मुक्ताओं से भरती थीं।११।
नाना गिरि-समूह से कितने निर्झर थे झर-झर झरते।
दिखा विचित्र दृश्य नयनों को वे थे वहुत चकित करते।
होता था यह ज्ञात, वन गई छलनी गिरि की काया है।
उससे जल पाताल का निकल धरा सींचने आया है।१२।
वहुशः सरिताएँ दिखलाईं, मंद-मंद जो वहती थीं।
कर्ण-रसायन कल-कल रव कर मुग्ध वनाती रहती थीं।
वे विस्तृत भू-भाग लाभ कर फूली नहीं समाती थीं।
वसुधा को नाचती, थिरकती, गा-गा गीत रिझाती थीं।१३।
हरी-भरी तृण-राजि मिल गये वनी हरितवसना वाला।
विपिनावलि से हुए भूपिता पाई उसने वन-माला।
नभ-तल-चुम्बी फल-दल-शोभी विविध पादपों के पाये।
विपुल पुलकिता हुई मेदिनी लतिकाओं के लहराये।१४।

वह जिस काल त्रिलोक-रंजिनी कुसुमावलि पाकर विलसी ।
रंग-बिरंगी कलिकाओं को खिलते देख गई खिल-सी ।
पहनी उसने कलित कण्ठ में जब सुमनों की मालाएँ ।
उसकी छटा देखने आईं सारी सुरपुर-बालाएँ ।१५।

जिस दिन जल के जन्तु जन्म ले कलित केलि-रत दिखलाये ।
जिस दिन गीत मछलियों के गौरव के साथ गये गाये ।
जिस दिन जल के जीवों ने जगती-तल की रंगत बदली ।
उसी दिवस से हुई विकसिता सजीवता की कान्त कली ।१६।

कभी नाचते, कभी कहीं करते कलोल पाये जाते ।
कभी फुदकते, कभी बोलते, कभी कुतरकर कुछ खाते ।
कभी विटप-डाली पर बैठे राग मनोहर थे गाते ।
कभी विहंगम रंग-रंग के नभ में उड़ते दिखलाते ।१७।

वनचारी अनेक बन-बनकर वन में थे विहार करते ।
गिरि की गोद बड़े गौरव से सारे गिरिवासी भरते ।
इने-गिने थे कहीं, कहीं पर बहुधा तन से तन छिलते ।
जल में, थल में, जहाँ देखिये वहाँ जीव अब थे मिलते ।१८।

रचना हुए सकल जीवों की एक मूर्त्ति सम्मुख आई ।
अपने साथ अलौकिक प्रतिभा जो भूतल में थी लाई ।
था कपाल उसका जगती-तल के कमाल तरु का थाला ।
उसका हृदय मनोज्ञ भावना सरस सुधा का था प्याला ।१९।

था उन दिनों मरुस्थल से भी नीरस सारा भू-मंडल।
परम अकान्त, अनुर्वर, धू-धू करता, पूरित बहु कश्मल।९।
यथा-काल फिर भू के तन में वांछित शीतलता आई।
धीरे-धीरे सजला सुफला शस्य-श्यामला बन पाई।१०।
उसके महाविशाल अंक में जलधि विलसता दिखलाया।
जिसको अगम अगाध सहस्रों कोसों में फैला पाया।
रत्न-राजि उत्ताल तरंगें उसको अर्पित करती थीं।
माँग वसुमती-सी देवी की मुक्ताओं से भरती थीं।११।
नाना गिरि-समूह से कितने निर्झर थे झर-झर झरते।
दिखा विचित्र दृश्य नयनों को वे थे बहुत चकित करते।
होता था यह ज्ञात, बन गई छलनी गिरि की काया है।
उससे जल पाताल का निकल धरा सींचने आया है।१२।
बहुशः सरिताएँ दिखलाईं, मंद-मंद जो बहती थीं।
कर्ण-रसायन कल-कल रव कर मुग्ध बनाती रहती थीं।
वे विस्तृत भू-भाग लाभ कर फूली नहीं समाती थीं।
वसुधा को नाचती, थिरकती, गा-गा गीत रिझाती थीं।१३।
हरी-भरी तृण-राजि मिल गये बनी हरितवसना बाला।
विपिनावलि से हुए भूषिता पाई उसने वन-माला।
नभ-तल-चुम्बी फल-दल-शोभी विविध पादपों के पाये।
विपुल पुलकिता हुई मेदिनी लतिकाओं के लहराये।१४।

वह जिस काल त्रिलोक-रंजिनी कुसुमावलि पाकर विलसी।
रंग-बिरंगी कलिकाओं को खिलते देख गई खिल-सी।
पहनी उसने कलित कण्ठ में जब सुमनों की मालाएँ।
उसकी छटा देखने आईं सारी सुरपुर-बालाएँ।१५।

जिस दिन जल के जन्तु जन्म ले कलित केलि-रत दिखलाये।
जिस दिन गीत मछलियों के गौरव के साथ गये गाये।
जिस दिन जल के जीवों ने जगती-तल की रंगत बदली।
उसी दिवस से हुई विकसिता सजीवता की कान्त कली।१६।

कभी नाचते, कभी कहीं करते कलोल पाये जाते।
कभी फुदकते, कभी बोलते, कभी कुतरकर कुछ खाते।
कभी विटप-डाली पर बैठे राग मनोहर थे गाते।
कभी विहंगम रंग-रंग के नभ में उड़ते दिखलाते।१७।

वनचारी अनेक बन-बनकर वन में थे विहार करते।
गिरि की गोद बड़े गौरव से सारे गिरिवासी भरते।
इने-गिने थे कहीं, कहीं पर बहुधा तन से तन छिलते।
जल में, थल में, जहाँ देखिये वहाँ जीव अब थे मिलते।१८।

रचना हुए सकल जीवों की एक मूर्त्ति सम्मुख आई।
अपने साथ अलौकिक प्रतिभा जो भूतल में थी लाई।
था कपाल उसका जगती-तल के कमाल तरु का थाला।
उसका हृदय मनोज्ञ भावना सरस सुधा का था प्याला।१९।

उसने परम रुचिर रचना कर भू को स्वर्ग बनाया है।
अमरावती-समान मनोहर सुन्दर नगर बसाया है।
है उसका साहस असीम उसकी करतूत निराली है।
वसुधा-तल-वैभव-ताला की उसके कर में ताली है।२०।
मानव ने ऐसे महान अद्भुत मन्दिर हैं रच डाले।
ऐसे कार्य किये हैं जो हैं परम चकित करनेवाले।
ऐसे-ऐसे दिव्य बीज वह विज्ञानों के बोता है।
देख सहस्र दृगों से जिनको सुरपति विस्मित होता है।२१।
आज वह विमोहिनी धरा है वारिधि-वारि-विलसिता है।
विपिन-राजि-राजिता कुसुमिता आलोकिता विकसिता है।
नगरावली विभूति-शोभिता कान्त कला-आकलिता है।
जन-कोलाहलमयी लोक की लीलाओं से ललिता है।२२।
दिन है दिव्य, रात आलोकित, दिशा दमकती रहती है।
रस की धारा बड़े वेग से उमड़-उमड़कर बहती है।
सुख नर्त्तन करता रहता है मत्त विनोद दिखाता है।
आती हैं झूमती उमंगें, मन पारस बन पाता है।२३।
आज हुन बरसता है, छूते मिट्टी सोना बनती है।
जन-जीवनदायिनी जीवनी-धारा मरु-महि जनती है।
नभ-मंडल में उड़ पाते हैं घन-माला दम भरती है।
बनी कामिनी-सी गृहदासी कहा दामिनी करती है।२४।

अवसर पाकरके वसंत अपना वैभव दिखलाता है।
फूल-फूल में हँसता कलियों को विकसाता आता है।
दिन में आकरके सहस्र-कर निज दिव्यता दिखाता है।
रजनी में रजनी-रंजन हँस सरस सुधा बरसाता है।२५।

महनीया महि

[२]

वसुंधरे! बतला दो हमको, क्यों चक्कर में रहती हो।
नहीं साँस लेने पाती हो, बहुत साँसतें सहती हो।
कौन-सी लगन तुम्हें लग गई या कि लाग में आई हो।
किसने तुम्हें बेतरह फाँसा, किससे गई सताई हो।१।
आँख जो नहीं लग पाई तो आँख क्यों न लग पाती है।
रात-रात-भर कौन वेदना तुमको जाग जगाती है।
नहीं पास जाने पाती हो, सदा दूर ही रहती हो।
खींच-तान में पड़कर फिर क्यों दुख-धारा में बहती हो।२।
रवि तुमको प्रकाश देता है, किरणें कान्त बनाती हैं।
जीवन-दान किया करती हैं, रस तुमपर बरसाती हैं।
प्यारे सुअन तुम्हारे तरु हैं, दुहिताएँ लतिकाएँ हैं।
सारे तृण वीरुध तुमने ही करके यत्न जिलाए हैं।३।
किन्तु हाथ है इसमें रवि का, ये सब उसके हैं पाले।
होते जो न दिवाकर के कर, पड़ते जीवन के लाले।

जो मयंक अपना मंजुल मुख रजनी में दिखलाता है।
विहँस-विहँसकर कर पसार जो सदा सुधा बरसाता है।४।
जिसकी चारु चाँदनी तुमको महाचारुता देती है।
लिपट-लिपट जो सदा तुम्हारे तापों को हर लेती है।
उसने भी कलनीय निज कला कमलबंधु से पाई है।
इसीलिये क्या रवि ! कृतज्ञता तुममें अधिक समाई है।५।
ऐ कृतज्ञ-हृदये ! परिक्रमा जो यों रवि की करती हो।
तो हो धन्य अपार कीर्त्ति सारे भुवनों में भरती हो।
यद्यपि रवि को इन बातों की थोड़ी भी परवाह नहीं।
जो तुम करती हो रत्ती-भर उसकी उसको चाह नहीं।६।
वह महान है, बड़े-बड़े ग्रह उससे उपकृत होते हैं।
कविगुरु-जैसे उज्ज्वलतम बन अपने तम को खोते हैं।
वह है जनक सौरमंडल का उसका प्रकृत विधाता है।
उसके तिमिर-भरे अन्तर की दिव्य ज्योति का दाता है।७।
वह सहस्र-कर रज-कण तक को किरणों से चमकाता है।
स्वार्थ-रहित हो तरुवर क्या तृण तक का जीवन-दाता है।
जड़-जंगम का उपकारक है, तारकचय का पाता है।
सर्वभूत का हित-चिन्तक है, उसका सबसे नाता है।८।
करता है चुपचाप कौन हित, निस्पृह कौन दिखाता है।
ढँपा हुआ उपकार खोल करके दिखलाया जाता है।

उचित जानकर उचित हुआ कब उचित न उचित पिपासा है ।
है संसार स्वार्थ का पुतला, प्रेम प्रेम का प्यासा है ।९।
सह साँसत कर्त्तव्य-बुद्धि से बँध कृतज्ञता-बंधन में ।
दिन-मणि की अज्ञात दशा में कोई स्वार्थ न रख मन में ।
जो करती हो उसे देख यह कहती है मति कमनीया ।
हाँ रवि महामहिम वसुंधरे ! पर तुम भी हो महनीया ।१०।

विचित्रा वसुमती

[३]

मणि-मंडित मुकुटावलि-शोभित अचल हिमाचल-से गिरिचय ।
किसपर हैं प्रति वासर लसते बनकर विविध विभूति-निलय ।
किस पर नभ-सा वर वितान सब काल तना दिखलाता है ।
जिसको रजनी में रजनीपति बहुरंजित कर पाता है ।१।
खिलती आकर अरुण-कान में बात अनूठी कहती है ।
प्रातःकाल रंगिणी ऊषा किसको रँगती रहती है ।
अगणित सरिता-सर-समूह में मंजुल मणियाँ भरती हैं ।
किसमें प्रति दिन रवि अनन्त किरणें क्रीड़ाएँ करती हैं ।२।
किसके सब जलाशयों में पड़ घन श्यामल तन की छाया ।
यों लसती है क्षीरसिंधु में ज्यों कमलापति की काया ।
हरित छटा अवलोक सरस वन घिरे घूमते आते हैं ।
साध-भरों की सुध कर किसपर जलद सुधा बरसाते हैं ।३।

दिन में किसका रवि सहस्र कर से आलिंगन करता है।
निशा में निशा-नायक किसकी नस-नस में रस भरता है।
आँखें फाड़-फाड़ किसको अवलोकन करते हैं तारे।
करके जीवन-दान वारिधर बनते हैं किसके प्यारे। ४।
सदा समीर प्यार से किसको पंखा झलता रहता है।
हिला-हिला लतिका-समूह को सुरभित बनकर बहता है।
कीचक-छिद्रों में प्रवेश कर गीत मनोहर गाता है।
विकसित कर अनन्त कलियों को किसको बहुत रिझाता है। ५।
किसके बहु श्यामायमान वन बन-ठन छटा दिखाते हैं।
नन्दन-वन-समान सब उपवन किसकी बात बनाते हैं।
किसके हरे-भरे ऊँचे तरु नभ से बातें करते हैं।
कलित किसलयों से लसते हैं, भूरि फलों से भरते हैं। ६।
किसकी कलित-भूत लतिकाएँ करती कान्त कलाएँ हैं।
खिला-खिला करके दिल किसकी खिल उठती कलिकाएँ हैं।
किसके सुमन-समूह विकसकर सुमनस-मन को हरते हैं।
सरस सुरभि से भर-भरकर सुरभित दिगन्त को करते हैं। ७।
आ करके वसंत किसको अनुपम हरियाली देता है।
जन-जन के मन तन-तन तक को बहु रसमय कर लेता है।
डाल कंठ में विपुल प्रफुल्ल प्रसूनों की मंजुल माला।
किसे पिलाता है सुरपुर की पूत सुरा-पूरित प्याला। ८।

शस्यश्यामला कौन कहाई, रत्न-भरा है किसका तन।
किसमें गड़ा हुआ है वसुधा के अनेक धनदों का धन।
किसकी रज में परम अकिंचन जन कञ्चन पा जाते हैं।
किसके मलिन कारबन कानों में हीरे मिल पाते हैं। ९।
सुन्दर तल पर रजत-लीक-सी पल-पल खींचा करती हैं।
किसको सदा सहस्रों नदियाँ जल से सींचा करती हैं।
हैं हीरक-नग-जटित बनाते किसके तन को सब सरवर।
हैं मुक्ता-समूह बरसाते किसपर प्रति वासर निर्भर।१०।
किसमें कनक-समान कान्तिमय कितने धातु विलसते हैं।
जो कमनीय कामिनी-से ही मानव-मन में बसते हैं।
पारद-सी अपार उपकारक तथा रेडियम-सी न्यारी।
किसमें है विभूति दिखलाती चित्र-विचित्र चकितकारी।११।
आठ पहर जिनमें सब दिन सोना ही बरसा करता है।
अवलोके जिनकी विभूतियाँ सुरपति तरसा करता है।
रजनी में बहु बिजली-दीपक जिनको दिव्य बनाते हैं।
ऐसे अमरावती-विमोहक नगर कहाँ हम पाते हैं!१२।
जो है विपुल विभूति-निकेतन रत्नाकर कहलाता है।
नर्त्तन करता है विमुग्ध बन कल-कल नाद सुनाता है।
जो है बहु विचित्रता-संकुल दिव्य दृश्य का धाता है।
किसपर वह उत्ताल-तरंगाकुल समुद्र लहराता है।१३।

किसकी हैं विभूतियाँ ऐसी, किसके वैभव ऐसे हैं।
क्यों बतलाऊँ किसी सिद्धि के साधन उसके कैसे हैं।
किसके दिव्य दिवस हैं इतने, इतनी सुन्दर रातें हैं।
बहु विचित्रताओं से विलसित वसुंधरा की बातें हैं।१४।

[४]

क्षमामयी क्षमा

हैं अनेक गुण तुममें वसुधे ! किन्तु क्षमा-गुण है ऐसा।
समय-नयन ने कहीं नहीं अवलोकन कर पाया जैसा।
पद-प्रहार सहती रहती हो, बहु अपमानित होती हो।
नाना दुख भोगती सदा हो, सुख से कभी न सोती हो। १।

तुमपर वज्रपात होता है, पत्थर हैं पड़ते रहते।
अग्निदेव भी गात तुम्हारा प्रायः हैं दहते रहते।
सदा पीटते हैं डंडों से, सब दिन खोदा करते हैं।
अवसर पाये तुम्हें बेध देते जन, अतर न डरते हैं। २।

पेट चीरकर लोग तुम्हारे अन्तर्धन को हरते हैं।
सारे जीव-जन्तु निज मल से मलिन पूत तन करते हैं।
नींव डालकर, नहर खोद, नर नित्य वेदना देते हैं।
खानें बना-बनाकर गहरी, दिव्य रत्न हर लेते हैं। ३।

बड़े-बड़े बहु विवर तुम्हारे तन में साँप बनाते हैं।
माँद खिरचकर मंद जीव अपनी मंदता दिखाते हैं।

वहुधा उर विदारकर वहु वापिका सरोवर बनते हैं।
छेद-छेदकर तव छाती नर कूप सहस्रों खनते हैं। ४।
वेध-वेधकर हृदय वहुत लाइनें निकाली जाती हैं।
दलती मूँग तुम्हारी छाती पर रेलें दिखलाती हैं।
काले क्वैले के निमित्त वहु गर्त्त वनाये जाते हैं।
जिनसे मीलों अंग तुम्हारे कालिख-पुते दिखाते हैं। ५।
हरे-भरे कुसुमित फल-विलसित नयन-विमोहन वहु-सुन्दर।
नव तृण श्यामल शस्य सरसतम लतिकाएँ अनुपम तरुवर।
जिनका वड़े प्रेम से प्रति दिन तुम प्रतिपालन करती हो।
जिनके तन में, दल में, फल में पल-पल प्रिय रस भरती हो। ६।
वे हैं अनुदिन नोचे जाते, कटते-पिटते रहते हैं।
निर्दय मानव के हाथों से बड़ी यातना सहते हैं।
फिर भी कभी तुम्हारे तेवर वदले नहीं दिखाते हैं।
देती हो तुम त्राण सभी को, सव तुमसे सुख पाते हैं। ७।
वे अति सुन्दर नगर जहाँ सुषमाएँ नर्त्तन करती हैं।
जहाँ रमा वैकुण्ठ छोड़कर प्रमुदित बनी विचरती हैं।
सकल स्वर्ग-सुख पाँव तोड़कर बैठे जहाँ दिखाते हैं।
जिनको धन-जनपूर्ण स्वर्ण-मन्दिर से सज्जित पाते हैं। ८।
ज्वालामुखी उगल ज्वालाएँ उन्हें भस्म कर देता है।
उनको बना भूतिमय उनकी वर विभूति हर लेता है।

पलक मारते तब तन-भूषण मिट्टी में मिल जाते हैं।
फिर भी ये विध्वंसक तुममें धँसते नहीं दिखाते हैं। ९।
बड़े-बड़े बहु धन-जन-संकुल सुन्दर-सुन्दर देश कई।
जो थे भूति-निकेतन, सुरपुर तक थी जिनकी कीर्त्ति गई।
जो चिरकाल तुम्हारे पावन-भूत अंक में पल पाये।
तुम्हें गौरवित करके गौरव-गीत गये जिनके गाये।१०।
वे हैं कहाँ, उदधि कितनों को प्रायः निगला करता है।
उसका पेट, पेट में ऐसे देशों को रख, भरता है।
फिर भी जलधि तुम्हारे तन पर वैसा ही लहराता है।
कहाँ कुपित तुम हो पाती हो, कौन दंड वह पाता है।११।
तप से रीझ देवता बनता है वांछित फल का दाता।
अपराधी का भी हित करते तुमको है देखा जाता।
इसी लिये है क्षमा तुम्हारा नाम और तुम हो भारी।
धरे! कहाँ तक कहें तुम्हारी क्षमाशीलता है न्यारी।१२।

विकंपित वसुंधरा

[५]

वसुंधरे! यह बतला दो तुम, क्यों तन कम्पित होता है।
क्यों अनर्थ का बीज लोक में कोप तुम्हारा बोता है।
माता कहलाती हो तो किसलिये विमाता बनती हो।
पूत पूत हैं, सब पूतों को तुम्हीं क्या नहीं जनती हो। १।

पूत कुपूत बने, पर माता नहीं कुमाता होती है।
अवलोकन कर व्यथा सुतों की विलख-विलख वह रोती है।
फिर किसलिये कुपित होकर तुम महा गर्जना करती हो।
भूरि भीति किसलिये भयातुर प्राणिपुंज में भरती हो। २।

क्यों पल में अपार क्रन्दन-रव घर-घर में भर जाता है।
कोलाहल होने लगता है, हा-हाकार सुनाता है।
दीवारें गिरने लगती हैं, सदन भू-पतित होते हैं।
गेहदशा अवलोक सैकड़ों दुखी खड़े दुख-रोते हैं। ३।

कितने छत के टूट पड़े अपने प्रिय प्राण गँवाते हैं।
कितने दबकर, कितने पिसकर मिट्टी में मिल जाते हैं।
अंग भंग हो गये अनेकों आहें भरते मिलते हैं।
भय से हो अभिभूत सैकड़ों चल दल-दल-से हिलते हैं। ४।

कितने भाग खड़े होते हैं, तो भी प्राण न बचते हैं।
कितने अपनी चिता वहँक अपने हाथों से रचते हैं।
कितने धन के, कितने जन के लिये कलपते फिरते हैं।
कितने सब-कुछ गँवा प्रबलतम दुख-समूह से घिरते हैं। ५।

कितने चले रसातल जाते हैं, कितने धँस जाते हैं।
कितने निकली सबल सलिल-धारा में बहे दिखाते हैं।
बनते हैं धन-जन-विहीन वांछित विभूतियाँ खोते हैं।
नगर-निकर हैं नगर न रहते, ध्वंस ग्राम पुर होते हैं। ६।

जल से थल, थल से जल बन बहु परिवर्त्तन हो जाते हैं।
कतिपय पल में ही ये सारे प्रलय-दृश्य दिखलाते हैं।
कैसी है यह वज्र-हृदयता ? क्यों तुम इतनी निर्मम हो।
क्यों संहार-मूर्त्ति धारण कर बनती तुम कृतान्त-सम हो। ७।

क्यों इतनी दुरन्तता-प्रिय हो, क्या न क्षमा कहलाती हो।
क्या तुम किसी महान शक्ति-बल से विवशा बन जाती हो।
यह सुनते हैं, शेषनाग के शिर पर वास तुम्हारा है।
क्या उसके विकराल विष-वमन का प्रपंच यह सारा है। ८।

या सहस्र-फण-फूत्कार से जब बहु कम्पित होती हो।
तब सुध-बुध खोकर विपत्ति के बीज अचानक बोती हो।
या पुराण ने जिसकी गौरवमय गुणावली गाई है।
उस कच्छप की कठिन पीठ से तुम्हें मिली कठिनाई है। ९।

या जिसके अतुलित बल से दानवता दलित दिखाती है।
उस वाराह-दशन से तुमको दंशनता मिल पाती है।
या भगवति वसुंधरे! भव में वैसी ही तव लीला है।
जैसी प्रकृति अकोमल-कोमल अकरुण करुणाशीला है।१०।

विभूतिमयी वसुधा

[६]

जब सहस्रकर छ महीने का दिवस दिखा छिप जाता है।
तब आरंजित क्षितिज अलौकिक दृश्य सामने लाता है।

उसकी ललित लालिमा संध्या-कलित-करों से लालित हो।
प्रगतिशील पल-पल बन-बन कनकाभा से प्रतिपालित हो। १।
रंग-बिरंगे लाल नील सित पीत बैंगनी बहु गोले।
हैं उछालने लगती क्षण-क्षण क्षिति-विमोहिनी छवि को ले।
उधर गगन में तरह-तरह के तारे रंग दिखाते हैं।
बार-बार जगमगा-जगमगा अपनी ज्योति जगाते हैं। २।
इधर क्षितिज से निकले गोले ऊपर उठ-उठ खिलते हैं।
उल्कापात-समान विभाएँ भू में भरते मिलते हैं।
यों छ मास का तम करके कमनीय कलाएँ खोती है।
ध्रुव-प्रदेश की रजनी अतिशय मनोरंजिनी होती है। ३।
हरे-भरे मैदान कनाडा के मीलों में फैले हैं।
जो हरियाली - छटा-वधू के परम छबीले छैले हैं।
जिनकी शस्य-विभूति सहज श्यामलता को पत रखती है।
जिनमें प्रकृति बैठ प्रायः निज उत्फुल्लता परखती है। ४।
रंग-बिरंगे तृण-समूह से सज वे जैसे लसते हैं।
विपुल सुविकसित कुसुमावलि के मिस वे जैसे हँसते हैं।
वायु मिले वे हरीतिमा के जैसे नृत्य दिखाते हैं।
वैसे दृश्य कहाँ पर लोचन अवलोकन कर पाते हैं। ५।
अमरीका है परम मनोहर, स्वर्ग-लोक-सा सुन्दर है।
जिसकी विपुल विभूति विलोके बनता चकित पुरन्दर है।

उसके विद्युद्दीप-विमण्डित नगर दिव्य द्युतिवाले हैं।
जिनके गगन-विचुम्बी सत्तर खन के सदन निराले हैं। ६।
उनके कलित कलस दिनमणि को भी मलीन कर देते हैं।
दिखा-दिखा निज छटा क्षपाकर की छवि छीने लेते हैं।
उसका एक प्रपात जल-पतन का वह समाँ दिखाता है।
जिसपर मत्त प्रमोद रीझ मुक्तावलि सदा लुटाता है। ७।
उसके विविध अलौकिक कल कुछ ऐसी कला दिखाते हैं।
जिन्हें विलोक विश्वकर्मा के कौशल भूले जाते हैं।
कितने आविष्कार हुए हैं उसमें ऐसे लोकोत्तर।
जिससे सारा देश गया है बहु अमूल्य मणियों से भर। ८।
यूरप में अति रम्य रमा की मूर्त्ति रमी दिखलाती है।
विलस अंक में उसके विभुता मंद-मंद मुसकाती है।
प्रायः श्वेत गात के मानव उसमें लसते मिलते हैं।
सुन्दरता की कलित कुंज में ललित कुसुम-से खिलते हैं। ९।
पारसता पैरिस-समान नगरों में पाई जाती है।
लंदन में नन्दनवन-सी अभिनन्दनता छवि पाती है।
प्रकृति-सुन्दरी सदा जहाँ निज प्रकृत रूप दिखलाती है।
स्विटजरलैण्ड-मेदिनी वैसी प्रमोदिनी कहलाती है।१०।
विविध भाँति की बहु विद्याएँ श्रम-संकलित कलाएँ कुल।
हैं उसको गौरवित बनाते कौशल-वलित अनेकों पुल।

सुर-समूह को कीर्त्ति-कथाएँ उड़ नभ-यान सुनाते हैं।
विहर-विहर जलयान जलधि में गौरव-गाथा गाते हैं।११।
अफरीका के नाना कानन कौतुक-सदन निराले हैं।
उसने अपनी पशुशाला में बहु विचित्र पशु पाले हैं।
जैसे अद्भुत जीव-जन्तु खग-मृग उसमें दिखलाते हैं।
वैसे कहाँ दूसरे देशों के विपिनों में पाते हैं।१२।
शीतल मधुर सलिल से विलसित कल-कल रव करनेवाली।
विपुल मंजु जलयान-वाहिनी बहु मनोहरा मतवाली।
हरे-भरे रस-सिक्त कूल के कान्त अंक में लहराई।
नील-समान सरसतम सुन्दर सरिता है उसने पाई।१३।
जिनमें कई सहस्र साल के शव रक्षित दिखलाते हैं।
ज्यों-के-त्यों सउपस्कर जिनको देख दिल दहल जाते हैं।
जिनकी बहु विशाल रचना-विधि बुधजन समझ न पाते हैं।
परम विचित्र पिरामिड उसके किसे न चकित बनाते हैं।१४।
क्या हैं ये उत्तुंग पिरामिड, कैसे गये बनाये हैं।
गिरि-से प्रस्तर-खंड किस तरह ऊपर गये उठाये हैं।
किस महान कौशल के बल से विरचित उनकी काया है।
क्या यह मायिक मिश्र-नगर के मय-दानव की माया है।१५।
वह सभ्यता, पिरामिड पर हैं जिसकी छाप लगी पाते।
वह पदार्थ जिससे सहस्र वत्सर-तक हैं शव रह जाते।

कब थी ? मिला कहाँ पर कैसे ? कौन इसे बतलावेगा।
कोई विबुध कभी इस मसले को क्या हल कर पावेगा।१६।
है एशिया महा महिमामय उसमें भरी महत्ता है।
वन्दनीय वेदों से उसको मिली सात्विकी सत्ता है।
महा तिमिर जिस काल सकल अवनी-मंडल में छाया था।
मिले ज्ञान-आलोक तभी वह आलोकित हो पाया था।१७।
भारत ही ने प्रथम भारती की आरती उतारी है।
उसने ही उर-अंधकार में अवगति-ज्योति पसारी है।
वह है वह सर जिससे निकले सब धर्मों के सोते हैं।
वह है वह जल जिसके बल से सकल पाप मल धोते हैं।१८।
कहाँ हिमाचल-मलयाचल-से अद्भुत अचल दिखाते हैं।
पतित-पावनी सुर-सरिता-सी सरिता कहीं न पाते हैं।
नयन-रसायन कान्त-कलेवर कुसुमित कुसुमाकर प्यारा।
है कश्मीर अपर सुर-उपवन सुधासिक्त छविनभ-तारा।१९।
मानसरोवर के समान सर किसे कहाँ मिल पाया है।
जिसका शतदल अमल कमल जातीय पुष्प कहलाया है।
नीर-क्षीर-सुविवेक-निपुण बहु हंस जहाँ मिल पाते हैं।
मचल-मचल मोती चुगते हैं, चल-चल चित्त चुराते हैं।२०।
जिसके कनक-विमंडित मठ हैं, जिसमें भूति विलसती है।
रमा जहाँ के लामाओं के वदन विलोक विहँसती है।

जिसके गिरि का हिम-समूह बन हेम बहुत छवि पाता है।
उस तिब्बत के वैभव-सा किसका वैभव दिखलाता है।२१।

चीन बहुत प्राचीन काल से चिन्तनीय बन पाया है।
उसकी भूतल-भूति भित्ति का भूरि प्रभाव दिखाया है।
उसका बहु विस्तार बहुलता अवलोके जनसंख्या की।
है विचित्र संसार-मूर्त्ति की दिखलाती अद्भुत झाँकी।२२।

है एशिया-खंड का उपवन कुसुमावलि से विलसित है।
राका-शशि से कान्त नृपति की कीर्त्ति-कौमुदी से सित है।
रसिक जनों का वृन्दावन है, बुधजन-वृन्द बनारस है।
फारस का भू-भाग गौरवित आर्य-वंश का पारस है।२३।

जिसने अंधकारमय अवनी को आलोकित कर डाला।
जिसने तन का, मन का, जन-जन के नयनों का तम टाला।
जो पच्चीस करोड़ मुसल्मानों का भाग्य-विधाता है।
अरब-धरा उस परम पुरुष के पैगम्बर की माता है।२४।

काकेशस-प्रदेश की सारी सुषमा सुन्दरता न्यारी।
कुस्तुनतुनिया का वैभव वर मसजिद की पच्चीकारी।
टरकी की वीरता-धीरता परिवर्त्तन-गति की बातें।
हैं रंजिनी बनी हैं जिनसे उज्ज्वलतम काली रातें।२५।

जिसके दिव्य अंक में जनमा वह मरियम का सुत प्यारा।
जिसकी ज्योति लाभ करके जगमगा उठा योरप सारा।

दे-दे ख्याति कीर्त्ति-मंदिर में उसकी मूर्त्ति बिठाती हैं।
फिलस्तीन की बातें उसको महिमामय बतलाती हैं।२६।
देश-प्रदेश प्रायद्वीपों द्वीपों से भरी दिखाती है।
नगर-निकर नाना विभूति-वैभव से बहु छवि पाती है।
खेल-खेल वारिधि-तरंग से रंग दिखाती बहुधा है।
चित्रित विविध चरित्र-चित्र से विचित्रतामय वसुधा है।२७।

[७]

शार्दूल-विक्रीडित

कोई पावन पंथ का पथिक हो या हो महा पातकी।
कोई हो बुध वन्दनीय अथवा हो निन्दनीयाग्रणी।
कोई हो बहु आर्द्रचित्त अथवा संहार की मूर्त्ति हो।
योग्यायोग्य-विवेक है न रखती, है वीरभोग्या धरा। १।
जो देखे इतिहास-ग्रंथ कितने, बातें पुरानी सुनीं।
सारे भारत के रहस्य समझे, रासो पढ़े सैकड़ों।
तो पाया कहते सहस्र मुख से संग्राम-मर्मज्ञ को।
वे थे भू-अनुरक्त हाथ जिनके आरक्त थे रक्त से। २।
भूलेगा धन से भरे भवन को भाये हुए भोग को।
भ्राता को, सुत को, पिता प्रभृति को, भामा-मुखाम्भोज को।
भावों की अनुभूति को, विभव को, भूतेश की भक्ति को।
भू-स्वामी सब भूल जाय उसको, भू भूल पाती नहीं। ३।

आरक्ता कलिकाल-मूर्त्ति कुटिला काली करालानना।
भूखी मानव-मांस की भय-भरी आतंक-आपूरिता।
उन्मत्ता करुणा-दया-विरहिता अत्यन्त उत्तेजिता।
लोहू से रह लाल है लपकती भू-लाभ की लालसा। ४।
देशों की, पुर-ग्राम की, नगर की देखे बड़ी दुर्दशा।
पाते हैं उसको महा पुलकिता काटे गला कोटिशः।
लीलाएँ अवलोक के प्रलय की है हर्ष होता उसे।
पी-पी प्राणिसमूह-रक्त महि की है दूर होती तृषा। ५।
हैं सारे पुर ग्राम धाम जलते, हैं दग्ध होते गृही।
है नाना नगरी विभूति बनती वर्षा हुए अग्नि की।
भू! तेरे अविवेक का कुफल है या है क्षमाशीलता।
जो ज्वाला बन काल है निकलती ज्वालामुखी-गर्भ से। ६।
जो निर्जीव बनी समस्त जनता हो मज्जिता राख में।
सारे वैभव से भरे नगर जो ज्वालामुखी से जले।
तो क्या हैं सर के समूह सरिता में है कहाँ सिक्तता।
तो है सागर में कहाँ सरसता, कैसे रसा है रसा। ७।
हो-हो दग्ध बनी विशाल नगरी दावाग्नि-क्रीड़ास्थली।
लाखों लोग जले-भुने, भवन की भीतें चिता-सी बनीं।
भू! तेरे अवलोकते प्रलय क्यों ज्वालामुखी यों करे।
क्यों होते जल-राशि पास जगती यों ज्वालमाला रहे। ८।

दोषों को क्षम सर्वदा जगत में जो है कहाती क्षमा।
क्यों हो-हो वह कम्पिता प्रलय की दृश्यावली दे दिखा।
कैसे सो वसुधा विरक्त बन दे ज्वालामुखी से जला।
जो पाले सुजला तथैव सुफला हो शस्य से श्यामला। ९।

नाना दानवता दुरन्त नर की, ज्वालामुखी-यंत्रणा।
ओलों का, पवि का प्रहार, रवि के उत्ताप की उग्रता।
तो कैसे सहती समुद्र-शठता दुर्वृत्ति दावाग्नि की।
तो होती महती न, जो न क्षिति में होती क्षमाशीलता।१०।

होती है हरिता हरापन मिले न्यारे हरे पेड़ का।
काली है करती अमा, अरुणता देती उषा है उसे।
प्रायः है करती विमुग्ध मन को हो शस्य से श्यामला।
पाके दिव्य सिता विभूति बनती है दुग्ध-धौता धरा।११।

आराध्या बुध-वृन्द की विबुधता आधारिता वन्दिता।
है विज्ञान-विभूति भूति भव की सद्भाव से भाविता।
है सद्बुद्धि-विधायिनी गुण-भरी है सर्व-विद्यामयी।
है पात्री प्रतिपत्ति की प्रगति की है सिद्धिःदात्री धरा।१२।

पाता गौरव है पयोधि पहना मुक्तावली-मालिका।
गाती है कल कीर्ति कान्त स्वर से सारी विहंगावली।
देते हैं उपहार पादप खड़े नाना फलों को लिये।
पूजा करती है सदैव महि की उत्फुल्ल पुष्पावली।१३।

आ-आ के घन हैं सुधा बरसते, हैं भानु देते विभा।
होती है वन-भूति धन्य दिखला सर्वाङ्ग दृश्यावली।
पाता है कमनीय अंक गिरि से दिव्याभ रत्नावली।
पाये शुभ्र सिता सदैव बनती है भूमि दिव्याम्बरा।१४।

पाती है कमनीय कान्ति विधु से, उत्फुल्लता पुष्प से।
देता चन्दन है सुवास तन को, है चाँदनी चूमती।
लेती है मधु से महा मधुरिमा मानो मनोहारिता।
होती है सरसा सदैव रस से भींगे रसा सुन्दरी।१५।

भू में हैं जनमे, विभूति-बल से भू के बली हो सके।
जागे भाग अनेक भोग भव के भू-भाग ही से मिले।
आये काल भगे कहीं न मर के भू-अंक में हैं पड़े।
भू से भूप पले सदैव कब भू भूपाल पाले पली।१६।

देता है यदि भौम साथ तज तो साथी मिला सोम-सा।
होता है यदि वज्रपात बहुधा तो है क्षमा में क्षमा।
जो है भू सरसा, सहस्रकर के उत्ताप को क्यों सहे।
जो है पास सुधा, सहस्र-फन से क्यों हो धरा शंकिता।१७।

लाखों पाप मिले समाधि-रज में या हैं चिता में जले।
आई मौत, बला मनुष्य सिर को है प्रायशः टालती।
लेती है तन ही मिला न तन में या राख में राख ही।
भूलों की बहु भूल-चूक पर भी भू धूल है डालती।१८।

संसिक्ता सरसा सरोज-वदना उल्लासिता उर्वरा।
नाना पादप-पुंज - पंक्ति-लसिता पुष्पावली - पूरिता।
लीला - आकलिता नितान्त ललिता संभार से सज्जिता।
है मुक्तावलिमंडिता मणियुता आमोदिता मेदिनी।१९।

था सिंहासन रत्नकान्त जिनका, कान्तार में वे मरे।
थे जो स्वर्गविभूति, गात उनके हैं भूमिशायी हुए।
वे सोये तम में पसार पग जो आलोक थे लोक के।
वे आये मर तीन हाथ महि में भू में समाये न जो।२०।

है अंगारक-सा कुमार उसका तेजस्विता से भरा।
सेवा है करता मयंक, सितता देती सिता है उसे।
है रत्नाकर अंक-रत्न, दिव है देता उसे दिव्यता।
है नाना स्वर्गीय भूतिभरिता है भाग्यमाना मही।२१।

दी है भूधर ने उमासम सुता दिव्यांग देवांगना।
पाई है उसने पयोधि-पय से लोकाभिरामा रमा।
मिट्टी से उसको मिली पति-रता सीता समाना सती।
है मान्या महिमामयी मति-मती धन्या वदान्या धरा।२२।

हो पाते यदि भद्र, भूत-हित को जो भूल जाते नहीं।
जो भाते भव भले भाव उनको, जो भागती भीरुता।
जो होतीं उनमें नहीं कुमति की दुर्भावनाएँ भरी।
तो भारी बनते उभार जन के भू-भार होते नहीं।२३।

लाखों भूप हुए महा प्रबल हो डूबे अहंभाव में।
भू के इन्द्र बने, तपे तपन - से, डंका बजा विश्व में।
तो भी छूट सके न काल-कर से, काया मिली धूल में।
हो पाई किसकी विभूति यह भू ? भू है भयों से भरी।२४।
आँखें हैं मुँदती, मुँदें, अवनि तो होगी सदा सज्जिता।
कोई है मरता, मरे, पर मही होगी प्रसन्नानना।
साँसें हैं चलती, चलें, वसुमती यों ही रहेगी खिली।
अन्यों का दुख, हीन हो हृदय से कैसे धरा जानती।२५।
जायेगी मुँद आँख एक दिन, हो शोभामयी मेदिनी।
छूटेगी यह देह हो अवनि में संजीवनी-सी जड़ी।
होगा नाश अवश्यमेव, महि में हो स्वर्ग की ही सुधा।
होना है तज भूति-भूति नर को, हो भूति से भू भरी।२६।
डूबे क्यों न पयोधि में, उदर में तेरे समाये न क्यों।
टूटा क्यों न पहाड़, क्यों न मुख में ज्वालामुखी के पड़े।
कैसा है यह चाव, भाव इनके क्यों हैं सहे जा रहे।
होता है दुख देख, भूमि ! तुझमें भू-भार ही हैं भरे।२७।
तो होता सर सिंधु, शान्त बनता ज्वालामुखी सिक्त हो।
होते सर्व प्रपंच तो न दव के, आतीं न आपत्तियाँ।
कोई क्यों जलता, न वारिनिधि में कोई कहीं डूबता।
जो होती जड़ता न, भाव अपना जो भूल पाती न भू।२८।

क्या पूछूँ, पर मानता मन नहीं पूछे विना, क्या करूँ।
क्या आँधी, बहु वात-चक्र, वसुधे! तेरे दुरुच्छ्वास हैं।
क्या पाथोधि-प्रकोप कोप तव है, है गर्जना भर्त्सना।
है ज्वाला वह कौन जो धरणि है ज्वालामुखी में भरी।२९।

संतापाग्नि सदैव है, निकलती ज्वालामुखी-गर्भ से।
आहें हैं पवमान कोप, निधि का उन्माद उद्वेग है।
भूपों की पशुता-प्रवृत्ति, मनुजों को दानवी वृत्ति से।
होती है गुरु पाप-भार-पवि से कम्पायमाना मही।३०।

माता-सी है दिव्य मूर्त्ति उसकी नाना महत्तामयी।
सारी ऋद्धि समृद्धि सिद्धि उससे है प्राप्त होती सदा।
क्या प्राणी, तरु क्या, तृणादि तक की है अन्नपूर्णा वही।
है सत्कर्मपरायणा हितरता, है धर्मशीला धरा।३१।

सप्तम सर्ग

अन्तर्जगत्

मन

[१]

मंजुल मलयानिल-समान है किसका मोहक झोंका।
विकसे कमलों के जैसा है विकसित किसे विलोका।
है नवनीत मृदुलतम किसलय कोमल है कहलाता।
कौन मुलायम ऊन के सदृश ॠजुतम माना जाता। १।
मंद-मंद हँसनेवाला छवि-पुंज छलकता प्याला।
कौन कलानिधि के समान है रस बरसानेवाला।
मधु-सा मधुमय कुसुमित विलसित पुलकित कौन दिखाया।
नव रसाल पादप-सा किसको मंजु मंजरित पाया। २।
रंग-विरंगी घटा-छटा से चित्त चुराये लेते।
नवल नील नीरद-सा किसको देखा जीवन देते।
प्रिय प्रभात-सी पावनता स्निग्धता किसे मिल पाई।
द्रवणशीलता द्रवित ओस-सी किसमें है दिखलाई। ३।
उठ-उठकर तरंग-मालाएँ किसकी मिलीं सरसती।
सहज तरलता सरिता-सी है किसमें बहुत विलसती।

भले भाव से भूरि भरित है कौन बताया जाता।
मृग-शावक-सा भोलापन है किसका अधिक लुभाता। ४।
जिसकी लाली अवनी में अनुराग-बीज है बोती।
उषा सुन्दरी सी अनुरंजनता है किसमें होती।
परम सरलता सरल बालकों-सी है किसमें मिलती।
किसी अलौकिक कलिका-जैसी किसकी रुचि है खिलती। ५।
दलगत ओस-बिन्दुओं तक की कान्ति बढ़ानेवाली।
रवि-प्रभात-किरणों की-सी है किसकी कला निराली।
मानव का अति अनुपम तन है किसका ताना-बाना।
मन-समान बहु मधुर विमोहक महि ने किसको माना। ६।

मानस-महत्ता

[२]

जो कुसुमायुध कुसुम-सायकों से है विद्ध बनाता।
जिसका मोहन मंत्र त्रिदेवों पर भी है चल पाता।
प्राणि-पुंज क्या, तृण तक में भी जो है रमा दिखाता।
अवनी-तल में जनन - सृष्टि का जो है जनक कहाता। १।
सुन्दरता है स्वयं बलाएँ सब दिन जिसकी लेती।
छटा निछावर हो जिसकी छवि को है निज छवि देती।
नारि-पुरुष के प्रेम-सम्मिलन का जो है निर्म्माता।
वह संसार-सूत्र-संचालक मनसिज है कहलाता। २।

जिसको ज्वालाओं में जलते दिग्विजयी दिखलाये।
जिसने करके ध्वंस धूल में नाना नगर मिलाये।
लोक-लोक विकराल मूर्त्ति अवलोके हैं कँप जाते।
जिसके लाल-लाल लोचन हैं काल-गाल बन पाते। ३।

जिसका सृजन आत्म-संरक्षण के निमित्त हो पाया।
जिसने कर भ्रू-भंग विश्व को प्रलय-दृश्य दिखलाया।
अति कराल-वदना काली जिसकी प्रतीक कहलाई।
उस दुर्वार क्रोध ने किससे ऐसी क्षमता पाई। ४।

जिसका उदधि विशाल उदर है कभी नहीं भर पाता।
लोकपाल जिसकी लहरों में है बहता दिखलाता।
तीन लोक का राज्य अवनि-मण्डल की सारी माया।
पाने पर भी जिसे सर्वदा अति लालायित पाया। ५।

कामधेनु-कामदता, सुर-तरु की सुर-तरुता न्यारी।
जिसे तृप्त कर सकीं न चिन्तामणि-चिन्ताएँ सारी।
धनद विपुल धन प्राप्त हुए भी जो है नहीं अघाता।
उस लोलुपता-भरे लोभ का कौन कहाता धाता। ६।

छूट-छूटकर जिसके बंधन में है भव बँध जाता।
जुड़ा हुआ है जिसके द्वारा वसुन्धरा का नाता।
यह जन मेरा, यह धन मेरा, राज-पाट यह मेरा।
ममता की इस मायिकता ने है घर-घर को घेरा। ७।

जिसने महाजाल फैलाकर लगा-लगाकर लासा।
बात क्या सकल दनुज-मनुज की, सुर-मुनि तक को फाँसा।
विधि-विरचित नाना विभूतियाँ मूठी में हैं जिसकी।
उस विमोहमय मोह में भरित मिली भावना किसकी। ८।
जो प्रसून के सदृश चाहता है तारक को चुनना।
जिसके लिये सुलभ है कर से सिता-वसन का बुनना।
सुधा सुधाकर की निचोड़ना हँसी-खेल है जिसको।
जो सुरेन्द्र का पद दे देता है सदैव जिस-तिसको। ९।
जिसका तेज नहीं सह सकता दिनकर-सा तेजस्वी।
मान महीपों का हर जो है बनता महा यशस्वी।
जिसका पाँव चूमती रहती है वसुधा की माया।
ऐसा मद उस अहं-भाव ने किस मदांध से पाया।१०।
जिसके शिर पर है गौरव-मणि-मण्डित मुकुट दिखाता।
जिसको विजय-दुंदुभी का रव है सब ओर सुनाता।
अन्तस्तल-विभूतियों का अधिपति है कौन कहाता।
महामहिम मन के समान मन ही है माना जाता।११।

महामहिम मन

[३]

उन विचित्र विभवों को जिनका प्रकृति-नटी से नाता है।
उन अपूर्व दृश्यावलियों को जिनको गगन दिखाता है।

उस छवि को भूतल सदैव जिसको स्वअंक में रखता है।
नयन न होते भी अनन्त नयनों से कौन निरखता है। १।
उस स्वर-लहरी को सदैव जो झंकृत होती रहती है।
सरस सुधा-धारा समस्त वसुधा पर जिससे बहती है।
प्राणि-पुंज जिसको सुन-सुन हो-हो विमुग्ध सिर धुनता है।
उसे कौन हो कान-रहित अगणित कानों से सुनता है। २।
उस सुगंध को जो मलयानिल को सुगन्धिमय करता है।
रंग-विरंगी कुसुमावलि में बहु सुवास जो भरता है।
मृग-मद-अगरु-चन्दनादिक को जो महँ-महँ महँकाता है।
उसे एक नासिका-हीन क्यों सूँघ नाक से पाता है। ३।
कौन-कौन व्यंजन कैसा है, तुरत यह समझ जाता है।
मधुर फलों की मधुमयता का भी अनुभव कर पाता है।
जो जैसा है भला-बुरा उसको वैसा कह देता है।
रसनाहीन कौन वहु रसनाओं से सब रस लेता है। ४।
मधुर लयों से बड़े मनोहर सुन्दर गीत सुनाता है।
बड़े-बड़े ग्रंथों का कितना पढ़ा पाठ पढ़ जाता है।
विना कंठ के कौन सदा अगणित कंठों से गाता है।
वाणी विना कौन वक्ता बन वाणी का पद पाता है। ५।
है कोमल-कठोर का अनुभव सर्द-गर्म का ज्ञाता है।
मलय-पवन से है सुख पाता, तप्त समीर तपाता है।

परसे कुसुम मुदित होता है, दवस्पर्श दुख देता है।
विना त्वचा के कौन त्वचा के सकल कार्य कर लेता है। ६।
सुन्दर मोती-से अत्तर लिख मोती कब न पिरोता है।
कनक-प्रसू वसुधातल को कर बीज विभव के बोता है।
चित्र-विचित्र बेल-बूटे रच रंग अनूठे भरता है।
कर के विना कौन बहु कर से काम अनेकों करता है। ७।
जल में, थल में तथा गगन में पल में जाता-आता है।
उसकी चाल देखकर खगपति चकित बना दिखलाता है।
पवन-पूत क्या, स्वयं पवन कब गति में उसको पाता है।
पद के विना विपुल पद से चल पदक कौन पा जाता है। ८।
सकल इन्द्रियाँ बन विमूढ़ कर्त्तव्य नहीं कर पाती हैं।
जो सहयोग न मानस का हो तो असफल हो जाती हैं।
अन्तस्तल के मूलभूत भावों में वही समाया है।
मानव-तन में महाबली मन ही की सारी माया है। ९।

मन से लिपटी ललनाएँ

[४]

आँखें हँस-हँस सदा अनेकों अद्भुत दृश्य दिखाती हैं।
ला सामने छटाएँ चिति की कर संकेत बताती हैं।
जो हम होतीं नहीं, भरा भूतल में अँधियाला होता।
किसी हृदय में नहीं प्रेम-रस का बहता मिलता सोता। १।

खग-कलरव वीणा-निनाद मुरली-वादन का मंजुल स्वर।
सकल राग आलाप किसी गायक का गान विमोहित कर।
उन सरिताओं का कलकल जो मंथर गति से बहती हैं।
सुना-सुनाकर श्रुतियाँ सब दिन बहुत रिझाती रहती हैं। २।
अवनीतल कुसुमावलि-सौरभ से सुरभित शरीर-द्वारा।
केसर की कमनीय क्यारियों का लेकर सुवास सारा।
मृग-मद कस्तूरी कपूर की मधुर मनोज्ञ सुरभि से भर।
स्नेहमयी नासिका सदा रहती है सेवा में तत्पर। ३।
विपुल व्यंजनों पकवानों का स्वाद बता सुख देती है।
चखा-चखाकर मीठे-मीठे फल मोहित कर लेती है।
नीरसता से निबट सरसता-धाराओं में बहती है।
रसिका रसना विविध रसों से रस उपजाती रहती है। ४।
बड़ी मधुर बातें कहती है, गीत मनोहर गाती है।
मधुमय ध्वनि स्वर्गीय स्वरों से सरस सुधा बरसाती है।
परम रुचिर रचनाएँ पढ़-पढ़ बहुत विमुग्ध बनाती है।
वाणी की मनोज्ञतम वीणा वाणी सदा बजाती है। ५।
है अनुराग-राग-अनुरंजित रस से भरी दिखाती है।
है सहृदयता-मूर्त्ति प्रिय-वदन देखे दिवस बिताती है।
बनती है वर विभा तिमिर में बहँके पथ बतलाती है।
है समता की नहीं कामना, मति ममता में माती है। ६।

काम पड़े पर काम चलाना पड़ता है जैसे-तैसे।
करे क्यों न लीलाएँ कितनी बचे बेचारा मन कैसे।
नहीं छोड़तीं क्षण-भर भी, कर विविध कलाएँ चिमटी हैं।
एक-दो नहीं, आठ-आठ ललनाएँ मन से लिपटी हैं। ६।

मन और अलबेली आँखें

[५]

जादू चलता ही रहता है, तिरछी ही वे रहती हैं।
चुप रहकर भी मचल-मचलकर सौ-सौ बातें कहती हैं।
कैसे भला न तड़पे कोई, करती रहती हैं वारें।
काट कब नहीं होती है, चलती रहती हैं तलवारें। १।
सीधे नहीं ताकते देखा, टेढ़ी हैं इनकी चालें।
कैसे पटे बलाएँ अपनी जो वे औरों पर डालें।
लोग छटपटायें तो क्या, वे छाती छेदा करती हैं।
छलनी बने कलेजा कोई, कब वे छल से डरती हैं। २।
मरनेवाले मरें, मरें, पर वे तो विष उगलेंगी ही।
चोखे-चोखे बान चलाकर जान किसी की लेंगी ही।
दिल को छीने लेती हैं, किस लिये भला वे दिल देंगी।
तन बिन जाय भले ही कोई, वे तो तेवर बदलेंगी। ३।
कभी रस बरसती रहती हैं, हँसती कभी दिखाती हैं।
कभी लाल-पीली होती हैं, कभी काल बन जाती हैं।

कभी निकलती है चिनगारी, कभी बहुत ही जलती हैं।
बहँके किसी के कलेजे पर कभी मूँग वे दलती हैं। ४।

फिरते देर नहीं होती, अकसर वे अड़ती रहती हैं।
बड़ी-बड़ी आँखों से जब देखो तब लड़ती रहती हैं।
उलझें, कड़ी पड़ें, भर जायें, बात-बात में रो देवें।
यही बान है आँख लग गये अपनेको भी खो देवें। ५।

हिली-मिली वे रहें भले ही, मगर उलट भी जाती हैं।
लगती हो टकटकी, पर कभी पलकें नहीं उठाती हैं।
आँसू आते हैं उनमें, पर मकर-भरे वे होते हैं।
वे पानी हैं, मगर आग औरों के घर में बोते हैं। ६।

बूँदें ये मोती हैं जिनके पानेवाले रोते हैं।
अपना पानी रखकर जो औरों का पानी खोते हैं।
कभी धार बँधती है तो बन जाते ऐसे सोते हैं।
जिनमें बहकर लोग हाथ सब अरमानों से धोते हैं। ७।

चाह पीसने लग जाती है, आह बहुत तड़पाती है।
कभी टपकते हैं तो टपक फफोलों की बढ़ जाती है।
पागल बने नहीं मन कैसे जब कि हैं पहेली आँखें।
सिर पर उसके जब सवार हैं दो-दो अलबेली आँखें। ८।

[६]

शार्दूल-विक्रीडित

होता है मधु स्वयं मुग्ध किसको देखे मनोहारिता।
पाती है महि में कहाँ विकचता पुष्पावली ईदृशी।
ऐसी है कलिता द्रुमावलि कहाँ, कान्ता लता है कहाँ।
लोकों में नयनाभिराम मन-सा आराम है कौन-सा। १।

होती है बहु रत्न - राजि - रुचिरा मुक्तावली-मंडिता।
लीला मूर्त्तिमती अतीव ललिता उल्लासिता रंजिता।
नाना नर्त्तन-कला - केलि - कलिता आलोक - आलोकिता।
मंदादोलित सिंधु-तुल्य मन की कान्ता तरंगावली। २

होती है शशि-कला - कान्त रवि की रम्यांशु-सी रंजिता।
ऊषा-सी अनुराग-राग-लसिता प्रातःप्रभोद्भासिता।
दिव्या तारक-मालिका - विलसिता नीलाभ्र - शोभांकिता।
रंगारंग छटा - निकेत मन की नाना तरंगावली।

जो हो पातक-मूर्त्ति जो भरित हो पापीयसी पूर्त्ति से
पाके ताप अतीव भूमि जिससे हो भूरि उत्तापिता
जो हो दानवता विभूति जिसमें दुर्भावना हो भरी
पूरी हो न प्रभो! कभी मनुज की ऐसी मनोकाम[ना]

है चिन्तामणि चिन्तनीय विदिता है कौस्तुभी कल्प[ना]
है कल्पद्रुम - मर्म ज्ञात सुरगो की गीतिका है सु[...]

है क्या पारस ? है रहस्य समझा, बातें गढ़ी हैं गई।
ये क्या हैं ? मन के प्रतीक अथवा हैं मानसी प्रक्रिया। ५।
कैसे तो मचले न क्यों न बहके कैसे सुनाई सुने।
कैसे तो बिगड़े बने न कहके बातें बड़ी बेतुकी।
कैसे तो हठ ठान के न तमके सारी बुराई करे।
ताने तो फिर क्यों भला न मन जो माने मनाये नहीं। ६।
छूटी मादकता कभी न मद की, है दंभवाला बड़ा।
मानी है, इतना ममत्व-रत है, जो मान का है नहीं।
घूमा है करता प्रमाद - नभ में, उन्माद से है भरा।
प्रायः है बनता प्रमत्त मन की जाती नहीं मत्तता। ७।
देखेंगे दृग रूप, देख न सकें तो दृष्टि का दोष है।
जिह्वा है रसकामुका रसनता चाहे बचो ही न हो।
चाहेगी ललना ललाम, ललना चाहे न चाहे उसे।
है काया कस में न किन्तु मन की माया नहीं छूटती। ८।
आँखें हैं कस में न, रूप-शशि की जो हैं चकोरी बनी।
हो जिह्वा रस-लुब्ध स्वाद - घन की जो है हुई चातकी।
भाता है विषयोपभोग उसको जो कंज के भृंगसा।
टूटेगा जग-जाल तो न, मन जो जंजाल में है फँसा। ९।
देते हैं पादप प्रमोद हिलते प्यारे हरे पत्र - से।
लेती है कलिका लुभा विलस के हैं वेलियाँ मोहती।

रीझा है करता विलोक तृण की, दूर्वा - दलों की छटा।
होता मानस है प्रफुल्ल लख के उत्फुल्ल पुष्पावली।१०
मोरों का अवलोक नर्त्तन स्वयं है नाचता मत्त हो।
गाता है बहु गीत कंठ अपना गाते खगों से मिला।
होता है मन महा मुग्ध पिक की उन्मुक्त तानें सुने।
देखे रंग-बिरंग की विहरती नाना विहंगावली।११
हो ऊँची, नत हो, कला-निरत हो, हैं नाचती मत्त हो।
देती हैं बहु दिव्य दृश्य दिखला हो भूरि उल्लासिता।
हैं मंदानिल - दोलिता सुलहरें, हैं भीतियों से भरी।
हैं कल्लोल - समान लोल मन की लीलामयी वृत्तियाँ।१२।
कैसे व्यंजन - स्वाद जान सकती, क्यों रीझती खा उसे।
क्यों मीठे फल तो विमुग्ध करते, क्यों दुग्धता मोहती।
कैसे तो रस के विभेद खुलते, क्यों ज्ञात होते किसे।
क्यों होती रसना रसज्ञ, मन जो होता रसीला नहीं।१३।
क्यों तो चंचलता दिखा मचलते सीधे नहीं ताकते।
कैसे तो अड़ते कटाक्ष करते क्यों तीर देते चला।
क्यों चालें चलते बला - पर - बला लाते दिखाते फिरे।
जो मानी मन मानता नयन तो कैसे नहीं मानते।१४।
जो पाये वन - फूल, फूल बन ले, काँटे न बोता फिरे।
क्यों हो स्वार्थ - प्रवृत्ति - वेलि बहुधा नेत्राम्बु से सिंचिता।

होता आग्रह - अंध है हित उसे तो सूझता ही नहीं।
क्यों है तू हठ ठानता मन - कहीं क्यों है नहीं मानता ।१५।
कोई है अपना न, स्वप्न सब है, संसार निस्सार है।
काया है किस काम की, जलद की छाया कही है गई।
है सम्पत्ति विपत्ति, राज रज है, है भूति तो भूति ही।
क्यों यों है मन ! तू उदास ? विष है ऐसी उदासीनता ।१६।
जो काली अलकें विलोक ललकें लालायिता ही रहीं।
देखे लोचन लोच है ललचता जो हो महा लालची।
जो गोरा तन कंज मंजु मुखड़ा है मत्त देता बना।
कैसे तो मथता न काम मन को माया दिखा मन्मथी ।१७।
भाती है उतनी न भूति जितनी भावों भरी भामिनी।
प्यारी है उतनी न भक्ति जितनी भ्रू - भंगिमा-पंडिता।
मीठी है उतनी सुधा न जितनी है ओष्ठ की माधुरी।
क्यों हो गौरव-धाम, काम मन को है कामिनी काम से ।१८।
बेढंगे सिर उठा बात कहते बुल्ले बिलाते मिले।
पाये पत्त पहाड़ जो न सँभले तो पत्त काटे गये।
खाते हैं मुँह की सदैव बहके वे हैं बुझे जो चले।
ले दंभी मन सोच ध्वंस प्रिय क्यों विध्वंस होगा नहीं ।१९।
दो क्या विंशति बाँह का वध हुआ है स्वर्णलंका कहाँ।
हो गर्वान्ध सहस्रबाहु विलटा उत्पीड़नों में पड़ा।

दंभी तू मन हो न भूलकर भी है दंभ तो दंभ ही।
होगा गर्व अवश्य खर्व, न रहा कंदर्प का दर्प भी।२०।
आती है वहुधा विपत्ति, वश क्या, क्यों धी तजे धीरता।
कोई चाल चले, चले, विचलते क्यों वुद्धिवाले रहें।
वैरी वैर करे, करे, विकल हो क्यों वीर की वीरता।
क्यों निश्चिन्त रहे न चित्त ! नित तू, चिन्ता चिता-तुल्य है।२१।
सोना है करती कुधातु अय को है सिद्धि सत्तामयी।
होती है उसकी विभूति - वल से पूरी मनोकामना।
जाती है वन दिव्य ज्योति तम में है मोहती मंजु हो।
है चिन्तामणि के समान रुचिरा चिन्ता चिता है नहीं।२२।
हो पाईं वश में नहीं सवल हो जो वासनाएँ बुरी।
हो-हो के कमनीय कान्त न वनी जो कामना काम की।
जो आँखें न खुलीं प्रवुद्ध कहला जो हैं प्रपंची छिपे।
तो क्या चेतनता अचिन्त्य पटुता क्या चित्त की चातुरी।२३।
रस्सी साँप वनी, सदैव तम में दीखे खड़े भूत हो।
पत्ते के खड़के भला कव नहीं हैं कान होते खड़े।
काँपा है करता, हुए हृदय में आतंक की कल्पना।
जाता त्रास नहीं, सशंक मन की शंका नहीं छूटती।२४।
सारे प्रेत - प्रसंग भ्रान्तिमय हैं, हैं कल्पना से भरे।
खोजे भी तरु के तले तिमिर में क्या हैं चुड़ैलें मिलीं।

देखा दृष्टि - विवेक ने, पर कहीं वैताल दीखे नहीं।
होता है भयभीत व्यर्थ मन! तू, है भूत भू में कहाँ।२५।
पेड़ों में भ्रमते फिरे तिमिर में बागों वनों में बसे।
रातें बीत गईं श्मशान - महि में शंका - स्थलों में रहे।
पाया भूत कहाँ, कहीं न फिरती देखी गई भूतनी।
शिक्षा है अनुभूत भूत - भय की बातें वृथा भूत हैं।२६।
है रोता, हँसता, प्रफुल्ल बनता, होता कभी मत्त है।
हो पाथोधि - तरंगमान नभ के तारे कभी, तोड़ता।
जाता है बन भूति भूतप कभी, पाता विधाता कभी।
कैसे तो न करे प्रपंच मन! जो तू है प्रपंची महा।२७।
भू में कौन अनर्थ अर्थवश हो तूने किया है नहीं।
तेरी पापप्रवृत्ति ने प्रबल हो पीसा नहीं है किसे।
तेरा देख महाप्रकोप महि क्या होती नहीं कम्पिता।
जो है पातक - प्रेम - मूढ़ मन! तो तू है महा पातकी।२८।
है गोलोक कहाँ, विभूति उसकी है दृष्टि आती नहीं।
है वैकुण्ठ कहाँ? कहाँ शिवपुरी? है स्वर्ग - भू भी कहाँ।
पाया है किसने कहाँ सुरगवी या नन्दनोद्यान को।
ये हैं कल्पक कान्त भूत मन की लोकोत्तरा भूतियाँ।२९।
जो है संयमशील, वृत्ति जिसकी है दिव्य ज्ञानात्मिका।
पापों को तज जो सदैव करता है पुण्य के कार्य ही।

जो है मुक्त प्रपंचजात रुज से, है मुक्त प्राणी वही।
क्या है मुक्ति? विकारबद्ध मन की उन्मुक्ति ही मुक्ति है।३०।

क्या है ब्रह्म ?स्वरूप क्या प्रकृति का? क्या विश्व की है क्रिया।
क्या है ज्ञान, विवेक, बुद्धि अथवा क्या पाप या पुण्य है।
क्यों होता इनका विचार, इनको कैसे सुधी जानते।
जो होता मन ही न तो मनन क्यों होता किसी तत्त्व का।३१।

हैं नाना कृतियाँ विभूति उसकी हैं इङ्गितें नीतियाँ।
है विज्ञान विवेक मानसिकता है भक्ति कान्ता क्रिया।
है धाता रमणीयता मधुरता लोकोत्तरा प्रीति का।
दासी है भव-भूति मुक्त मन की, हैं सेविका मुक्तियाँ।३२।

हैं सारी निधियाँ रता अनुगता, सम्पत्ति है आश्रिता।
हैं ब्रह्मांड-विभूतियाँ सहचरी, हैं शासिता शक्तियाँ।
हैं संसार-पदार्थ हस्तगत-से, हैं वस्तुएँ स्वीकृता।
है सेवारत सिद्धि, सिद्ध मन की हैं सिद्धियाँ सेविका।३३।

ऊषा कान्त कपोल, भानु-किरणें आलोकिता रंजिता।
भू के रंग-बिरंग पुष्पतरु की श्यामाभिरामा छटा।
नागों की ललितांगता रुचिरता कैसे नहीं मोहती।
हैं रंगीन बने त्रिलोक, मन की रंगीनियों से रँगे।३४।

क्या हैं ज्ञान, विवेक, बुद्धिबल क्या, ये मानसोत्पन्न हैं।
क्या हैं चिन्तन-शक्तियाँ ? मनन क्या ? क्या तर्कनाएँ सभी।
जो हैं वे सब हैं विभूति उसकी या हैं उसी की क्रिया।
कैसे जाय कही महान मन की सत्ता-इयत्ता कभी।३५।

अष्टम सर्ग

अन्तर्जगत्

हृदय

[१]

मुग्धकर सुन्दर भावों का।
विधाता है उसमें बसता।
देखकर जिसकी लीलाएँ।
जगत है मंद - मंद हँसता ।१।

रमा मन है उसमें रमता।
वह बहुत मुग्ध दिखाती है।
कलाएँ करके कलित ललित।
वह विलसती मुसकाती है ।२।

साधना के बल से उसमें।
अलौकिक रूप विलोके हैं।
देखनेवाली आँखों ने।
दृश्य अद्भुत अवलोके हैं ।३।

कभी उसमें दिखलाती है।
श्यामली मूर्त्ति मनोरम-तम।
किरीटी कल - कुण्डल - शोभी।
विभामय विपुल विभाकर सम।४।

वहु सरस नवल नीरधर-सी।
जगत-जन - जीवन - अवलम्बन।
योगियों की समाधि की निधि।
सिद्धजन - सकल-सिद्धि-साधन।५।

श्वास - प्रश्वासों में जिसकी।
अनाहत नाद सुनाता है।
अलौकिक भावों का अनुभव।
विश्व में जो भर पाता है।६।

अलौकिक जिसके स्वर-द्वारा।
सर्वदा हो - हो मंजु स्वरित।
ज्ञान - विज्ञानों के धाता।
वेद के मंत्र हुए उच्चरित।७।

कभी उसमें छवि पाती है।
मूर्त्ति केकी - कलकंठोपम।
मनोहर कोटि-काम - सुन्दर।
शरद के नील सरोरुह सम।८।

जनक है दिव - विभूतियों का।
सुअन उसका जग-अनुभव है।
अलौकिकता का है आलय।
हृदय में भरित भव-विभव है।१९।

न कामद कामधेनु इतनी।
न सुफलद सुरतरु है वैसा।
नहीं चिन्तामणि है चित-सा।
स्वयं है हृदय हृदय-जैसा।२०।

[२]

कभी वह छिलता रहता है।
कभी बेतरह मसलता है।
कभी उसको खिलता पाया।
कभी बल्लियों उछलता है।१।

खीजता है इतना, जितना।
खीज भी कभी न खीजेगी।
कभी इतना पसीजता है।
ओस जितना न पसीजेगी।२।

कभी इतना घबराता है।
भूल जाता है अपनेको।

कभी वह खेल समझता है।
किसी के गरदन नपने को।३।

कभी वह आग-बबूला बन।
बहुत ही जलता-भुनता है।
कभी फूला न समाता है।
फूल काँटों में चुनता है।४।

नहीं परदा रहने देता।
बहुत परदों से छनता है।
कभी पानी-पानी होकर।
आँख का आँसू बनता है।५।

फिर नहीं उसे देख पाता।
जिस-किसी से वह फिरता है।
कभी पड़ गये प्यार-जल में।
मछलियों-जैसा तिरता है।६।

लाग से लगती बातें कह।
आग वह कभी लगाता है।
कभी उसके हँस देने से।
फूल मुँह से झड़ पाता है।७।

कभी दिखलाता है नीरस।
कभी वह रस बरसाता है।

फूल - सा कभी मिला कोमल।
उर कभी पवि बन पाता है। ८।

[३]

हो गया क्या, क्यों बतलाऊँ।
धड़कती रहती है छाती।
बहुत बेचैनी रहती है।
रात - भर नींद नहीं आती। १।

लगाये कहीं नहीं लगता।
बहुत ही जी घबराता है।
किसी की पेशानी का बल।
बला क्यों मुझपर लाता है। २।

आप ही फँस जाऊँ जिसमें।
जाल क्यों ऐसा बुनता हूँ।
उन्हें लग गई बुरी धुन तो।
किसलिये मैं सिर धुनता हूँ। ३।

किसी का मन मेरे मन से।
मिलाये अगर नहीं मिलता।
मत मिले, पर तेवर बदले।
बेतरह दिल क्यों है हिलता। ४।

कौन सुनता है कब किसकी।
कौन कब ढंग बदलता है।
मैल उसके जी में हो, हो।
हमारा दिल क्यों मलता है। ५।

किसी की ओर किसीने कब।
प्यार की आँखों को फेरा।
किसी के तड़पाने से क्यों।
तड़प जाता है दिल मेरा। ६।

कौन बतलायेगा मुझको।
सितम क्यों कोई सहता है।
आस पर ओस पड़ गई क्यों।
दिल मसलता क्यों रहता है। ७।

कहाँ उसकी आँखें भींगी।
कब बला उसकी सोती है।
टपक पड़ते हैं क्यों आँसू।
टपक क्यों दिल में होती है। ८।

[४]

दुखों के लम्बे हाथों से।
सुखों की लुटती हैं मोटें।

चैन को चौपट करती हैं।
कलेजे पर चलती चोटें।१।

खिले कोमल कमलों का है।
सब सितम भौंरों का सहना।
मसल जाना है फूलों का।
कलेजे का मलते रहना।२।

बड़ी ही कोमल कलियों का।
है कुचल जाना या सिलना।
छेद छाती में हो जाना।
या किसी के दिल का छिलना।३।

तड़पते कलपा करते हैं।
नहीं पल-भर कल पाते हैं।
न जाने कैसे तेवर से।
कलेजे कतरे जाते हैं।४।

टूट पड़ना है बिजली का।
हाथ जीने से है धोना।
किसी पत्थर से टकराकर।
कलेजे के टुकड़े होना।५।

जायँ पर काँटे सीने में।
लहू का घूँट पड़े पीना।

नहीं जुड़ पाता है टूटे।
कलेजा है वह आईना।६।

भूल हमने की तो की ही।
न जाने ये क्यों हैं भूले।
मुँह फुलाये जो वे हैं तो।
क्यों फफोले दिल के फूले।७।

बहुत ही छोटे हों, पर हैं।
छलकते हुए व्यथा-प्याले।
किसी के छिले कलेजे के।
छरछरानेवाले छाले।८।

[५]

दूसरों के दुख का मुखड़ा।
नहीं उसको है दिखलाता।
किसी की आँखों का आँसू।
वह कभी देख नहीं पाता।१।

कौर जिन लोगों के मुँह का।
सदा ही छीना जाता है।
बहुत कुम्हलाया मुँह उनका।
कब उसे व्यथित बनाता है।२।

बनाकर बहु चंचल विचलित।
चैन चित का हर लेती है।
किसी पीड़ित की मुखमुद्रा।
कब उसे पीड़ा देती है।३।

साँसतें कर कितनी जिनको।
सबल जन सदा सताते हैं।
विकलता-भरे नयन उनके।
कब उसे विकल बनाते हैं।४।

पिसे पर भी जो पिसता है।
सदा जो नोचा जाता है।
बहुत उतरा उसका चेहरा।
उसे कब दुख पहुँचाता है।५।

छली लोगों के छल में पड़।
कसकती जिनकी छाती है।
खिन्नता उनके आनन की।
उसे कब खिन्न बनाती है।६।

जातियाँ जो चहले में फँस।
ठोकरें अब भी खाती हैं।
जल बरसती उनकी आँखें।
कहाँ उसको कलपाती हैं।७।

डाल देता है आँखों पर।
अज्ञता का परदा काला।
बनाता है नर को अंधा।
हृदय में छाया अँधियाला।८।

[६]

चाल वे टेढ़ी चलते हैं।
लिपट जाते कब डरते हैं।
नहीं है उनका मुँह मुड़ता।
मारते हैं या मरते हैं।१।

भरा विष उसमें पाते हैं।
बात जो कोई कहते हैं।
पास होती हैं दो जीभें।
सदा डँसते ही रहते हैं।२।

जब कभी लड़ने लगते हैं।
खड़े हो जान लड़ाते हैं।
जान मुशकिल से बचती है।
अगर वे दाँत गड़ाते हैं।३।

बहुत फुफकारा करते हैं।
नहीं टल पाते हैं टाले।

बुरे हैं काले साँपों से।
काल हैं काले दिलवाले ।४।

[७]

अनिर्मल छिछली नदियों का।
सलिल क्यों लगता है प्यारा।
सरस ही नहीं, सरसतम है।
सुरसरी की पावन धारा ।१।

चमकते रहते हैं तारे।
ज्योतियों से जाते हैं भर।
सुधा बरसाता रहता है।
सुधाकर ही वसुधा-तल पर ।२।

पास तालों तालावों के।
वकों का दल ही जाता है।
हंस क्यों तजे मानसर को।
कहाँ वह मोती पाता है ।३।

सफल कब हुए सुफल पाये।
न सेमल हैं उतने सुन्दर।
किसलिये मुग्ध नहीं होते।
रसालों की रसालता पर ।४।

सुरा का सर में सौदा भर।
पी उसे बनकर मतवाला।
किसलिये ढलका दे कोई।
सुधा से भरा हुआ प्याला।५।

बड़े सुन्दर कमलों के हों।
क्यों नहीं बनते अलिमाला।
क्यों बना वे बुलबुल हमको।
रंगतें दिखा गुलेलाला।६।

उतारा गया किसलिये वह।
पहनकर कनइल की माला।
गले में सुन्दर फूलों का।
गया था जो गजरा डाला।७।

सुरुचि - कुंजी से खुलता है।
पूततम भावों का ताला।
मनुज है दिवि - विभूति पाता।
बन गये दिव्य हृदयवाला।८।

[८]

मैं फूल के लिये आई।
पर फूल कहाँ चुन पाई।१।

सखि ! था हो गया सवेरा ।
लाली नभ में थी छाती ।
ऊषा लग अरुण-गले से ।
थी अपना रंग दिखाती ।
तरु पर थी बजी बधाई ।२।

था खुला झरोखा रवि का ।
थी किरण मंद मुसकाती ।
इठलाती धीरे-धीरे ।
थी वसुंधरा पर आती ।
सब ओर छटा थी छाई ।३।

मुँह खोल फूल थे हँसते ।
कलियाँ थीं खिलती जाती ।
उनपर के जल-बूँदों को ।
थी मोती प्रकृति बनाती ।
दिव ने थी ज्योति जगाई ।४।

मतवाले भौंरे आ-आ ।
फूलों को चूम रहे थे ।
रस झूम-झूम थे पीते ।
कुंजों में घूम रहे थे ।
वंशी थी गई बजाई ।५।

तितलियाँ निछावर हो - हो ।
थीं उनको नृत्य दिखाती ।
उनके रंगों में रँगकर ।
थीं अपना रंग जमाती ।
वे करती थीं मनभाई ।६।

आ मृदुल समीरण उनसे ।
था कलित केलियाँ करता ।
अति मंजुल गति से चलकर ।
फिरता था सुरभि वितरता ।
थीं रंग लताएँ लाई ।७।

सब ओर समा था छाया ।
थीं ललकें देख ललकती ।
भर - भर प्रभात - प्याले में ।
थी छवि - पुंजता छलकती ।
थी प्रफुल्लता उफनाई ।८।

यह अनुपम दृश्य विलोके ।
जब हुआ मुग्ध मन मेरा ।
कोमल भावों ने उसको ।
तब प्रेम - पूर्वक घेरा ।
औ' यह प्रिय बात सुनाई ।९।

ऐसे कमनीय समय में।
जब फूल विलस हैं हँसते।
कितनों को बहु सुख देते।
कितने हृदयों में बसते।
रुचि है जब बहुत लुभाई।१०।

तब उनको चुन ले जाना।
कैसे सहृदयता होगी।
क्या सितम न होगा उनपर।
क्या यह न निठुरता होगी।
यह होगी क्या न बुराई।११।

छिन जाय किसी का सब सुख।
वह छिदे बिधे बँध जाये।
मिल जाय धूल में चुचकर।
दलमल जाये कुम्हलाये।
गत उसकी जाय बनाई।१२।

पर कोई इसे न समझे।
रच गहने अंग सजाये।
मालाएँ गजरे गूँथे।
पहने बाँटे पहनाये।
तो होगी यह न भलाई।१३।

जब सुनीं दयामय बातें।
तब मेरा जी भर आया।
डालों पर ही फूलों का।
कुछ अजब समाँ दिखलाया।
मैं फूली नहीं समाई।
पर फूल कहाँ चुन पाई।१४।

[९]

पहने मुक्तावलि - माला।
कोई अलबेली बाला।१।

है विहर रही उपवन में।
कोमलतम भावों में भर।
अनुराग रँगे नयनों से।
कर लाभ ललक लोकोत्तर।
पी-पी प्रमोद का प्याला।२।

थीं कान्त क्यारियाँ फैली।
थे उनमें सुमन विलसते।
पहने परिधान मनोहर।
वे मंद - मंद थे हँसते।
था उनका रंग निराला।३।

उनके समीप जा - जाकर।
थी कभी मुग्ध हो जाती।
अवलोक कभी मुसकाना।
थी फूली नहीं समाती।
मन बनता था मतवाला। ४।

थी कभी चूमती उनको।
थी कभी बलाएँ लेती।
थी कभी उमगकर उनपर।
निज रीझ वार थी देती।
बन-बन सुरपुर-तरु-थाला। ५।

पूछती कभी वह उनसे।
तुम क्यों हो हँसनेवाले।
जन - जन के मन नयनों में।
तुम क्यों हो बसनेवाले।
क्यों मुझपर जादू डाला। ६।

फिर कहती, समझ गई मैं।
तुम हो ढंगों में ढाले।
हो मस्त रंग में अपने।
हो सुन्दर भोले - भाले।
है भाव तुम्हारा आला। ७।

फिर क्यों न सिरों पर चढ़ते ।
औ' हार गले का बनते ।
तो प्यार न होता इतना ।
जो नहीं महँक में सनते ।
गुण ही है गौरववाला । ८ ।

फल कैसे तरुवर पाते ।
छवि क्यों मिलती औरों को ।
तुम अगर नहीं होते तो ।
तितलियों चपल भौंरों को ।
पड़ जाता रस का लाला । ९ ।

क्यों दिशा मँहकती जाती ।
क्यों वायु सुरभि पा जाती ।
क्यों कंठ विहँग का खुलता ।
क्यों लता कान्त हो पाती ।
क्यों महि बनती रस-शाला ।१०।

हैं मुझे लुभाते खगरव ।
हैं मत्त मयूर नचाते ।
मधु-ऋतु के हरे-भरे तरु ।
हैं मुझे विमुग्ध बनाते ।
है मन हरती घन-माला ।११।

हैं ललचाती लतिकाएँ।
लहरें उठ सरस सरों में।
हैं तारे बहुत रिझाते।
है जिनके कान्त करों में।
नभतल का कुंजी - ताला।१२।
पर तुम्हें देखकर जितना।
है चित्त प्रफुल्लित होता।
जो प्रेम - बीज मानस में।
है भाव तुम्हारा बोता।
वह है निजता में ढाला।१३।
इसलिये कौन है तुम-सा।
जिसको जी सदा सराहे।
सब काल निछावर हो - हो।
चौगुनी चाह से चाहे।
कम गया न देखा-भाला।१४।

[१०]

भर धूल सब दिशाओं में।
उसमें आँधी आती है।
छा जाता है अँधियाला।
थरथर कँपती छाती है।१।

आँखें रजमय होती हैं।
हा-हा-ध्वनि सुन पड़ती है।
धुन उठते हैं कोमल दल।
तरु-सुमनावलि झड़ती है। २।

वह कभी मरुस्थल-जैसा।
है रस-विहीन बन जाता।
बालुका-पुंज रूखापन।
है नीरस उसे बताता। ३।

उसको तमारि की आभा।
यद्यपि है कान्त बनाती।
पर बिना सरसता वह भी।
है अधिक तप्त कर पाती। ४।

वह कभी वारिनिधि-जैसा।
है गर्जन करता रहता।
उत्ताल तरंगाकुल हो।
फेनिल बन-बन है बहता। ५।

हो तरल सरल कोमलतम।
है पवि पविता का पाता।
वह सुधा-विधायक होते।
है बहुविध गरल-विधाता। ६।

है दुरारोह गिरिवर - सा।
अति दुर्गम गह्वर - पूरित।
नाना विभीषिका - आकर।
विधि सरल विधान विदूरित। ७।

है तदपि उच्च वैसा ही।
वैसा ही वह छविशाली।
वैसा ही गुरुता - गर्वित।
वैसा ही मणिगण - माली। ८।

है शरद - व्योम - सा सुन्दर।
गुणगण तारकचय - मंडित।
कल कीर्त्ति-कौमुदी-विलसित।
राकापति-कान्ति - अलंकृत।९।

उसके समान ही निर्मल।
अनुरंजनता से रंजित।
उसके समान ही उज्ज्वल।
नाना भावों से व्यंजित।१०।

है प्रकृति-तुल्य ही वह भी।
नाना रहस्य अवलम्बन।
बहु भेद-भरा अति अद्भुत।
भव अविज्ञेय अन्तर्धन।११।

जग जान न पाया जिनको।
हैं उसमें ऐसे जल-थल।

जिसका न अन्त मिल पाया।
है अन्तस्तल वह नभ-तल।१२।

[११]

कमलिनी

वही तुझे भा जाय भाँवरें जो भर जावे।
वही गले लग जाय जो मधुर गान सुनावे।
क्या है यह कमनीय काम तू सोच कमलिनी।
जो अलि चाहे वही रसिक बन रस ले जावे।१।

तन कितना है मंजु, रंग कितना है न्यारा।
बन जाता है खिले बहु मनोहर सर सारा।
कमल समान नितान्त कान्त पति तूने पाया।
क्यों कुरूप अलि बना कमलिनी! तेरा प्यारा।२।

कर लंपटता तनिक नहीं लज्जित दिखलाता।
काला कुटिल अकान्त चपल है पाया जाता।
अरी कमलिनी! कौन कलंकी है अलि-जैसा।
फिर वह कैसे वास हृदय-तल में है पाता।३।

खिली कली जो मिली उसी पर है मँड़लाता।
थम जाता है वहीं, जहाँ पर रस पा जाता।
कैसे जी से तुझे कमलिनी! वह चाहेगा।
जिस अलि का रह सका नहीं अलिनी से नाता।४।

वह अवलोक न सका, नहीं अनुभव कर पाया।
इसी लिये क्या पति ने तुझसे धोखा खाया।
अलि को कर रस-दान और आलिंगन दे-दे।
क्यों कलंक का टीका सिर पर गया लगाया।५।

क्यों मर्यादा-पूत लोचनों में खलती है।
क्यों रस-लोलुप भ्रमर रंगतों में ढलती है।
विकसित तुझे विलोक प्रफुल्लित जो होता है।
क्यों तू ऐसे कमल को कमलिनी! छलती है।६।

रज के द्वारा उसे नहीं अंधा कर पाती।
चम्पक-कुसुम समान धता है नहीं बताती।
जो न कमलिनी वेध सको काँटों से अलि को।
कैसे तो है वदन कमल-कुल को दिखलाती।७।

रस-लोलुप है एक अपर रखती रस-प्याला।
दोनों ही का रंग-ढंग है बड़ा निराला॥
मधुकर से क्यों नहीं कमलिनी की पट पाती।
है यह मधु-आगार और वह मधु-मतवाला।८।

[१२]

मनोवेदना

चौपदे

थे ऐसे दिवस मनोहर ।
जब सुख-वसंत को पाकर ।
वह बहुत विलसती रहती ।
लीलाएँ ललित दिखाकर ।१।

आमोद कलानिधि सर से ।
था तृप्ति - सुधा बरसाता ।
आकर विलास - मलयानिल ।
उसको बहु कान्त बनाता ।२।

पा सुकृति सितासित रातें ।
वह थी अति दिव्य दिखाती ।
रस - सिक्त ओस की बूँदें ।
उसपर मोती बरसातीं ।३।

अब ऐसे बिगड़ गये दिन ।
जब है वह सूखी जाती ।
रस की थोड़ी बूँदें भी ।
हैं सरस नहीं कर पातीं ।४।

बहु चिन्ताओं के कोड़े।
हैं नोच-नोचकर खाते।
घिरकर विपत्ति के बादल।
हैं दुख - ओले बरसाते।५।

आँधियाँ वेदनाओं की।
उठ - उठ हैं बहुत कँपाती।
यह आशा - लता हमारी।
अब नहीं फूल-फल पाती।६।

[१३]

अन्तर्नाद

चौपदे

करुणा का घन जब उठकर।
है बरस हृदय में जाता।
तब कौन पाप-रत मन में।
है सुरसरि - सलिल बहाता।१।

जब दया-भाव से भर-भर।
है चित्त पिघलता जाता।
तब कौन मुझे दुख-मरु का।
है सुधा-स्रोत कर पाता।२।

जब मेरा हृदय पसीजे।
आँखों में आँसू आता।
तब कौन पिपासित जन की।
मुझको है याद दिलाता।३।

जब मेरे अन्तस्तल में।
बहती है हित की धारा।
तब कौन बना देता है।
मुझको वसुधा का प्यारा।४।

पर-दुख-कातरता मेरी।
जब है बहु द्रवित दिखाती।
तब क्यों विभूतियाँ सारी।
सुरपुर की हैं पा जाती।५।

ताँबा सोना बन जाये।
जब जी में है यह आता।
तब कौन परसकर कर से।
है पारस मुझे बनाता।६।

जब सहज सदाशयता की।
वीणा उर में है बजती।
तब क्यों सुरपुर-वालाएँ।
हैं दिव्य आरती सजती।७।

जब मानवता की लहरें।
मानस में हैं उठ पाती।
तब दिव्य ज्योतियाँ कैसे।
जगती में हैं जग जाती।८।

[१४]

पतिप्राणा

चौपदे

क्या समझ नहीं सकती हूँ।
प्रियतम! मैं मर्म तुम्हारा।
पर व्यथित हृदय में बहती।
क्यों रुके प्रेम की धारा।१।

अवलोक दिव्य मुख-मण्डल।
ये ज्योति युगल दृग पाते।
अब वे अमंजु रजनी के।
वारिज बनते हैं जाते।२।

जब मंद-मंद तुम हँसते।
या मधुमय बन मुसकाते।
तब मम ललकित नयनों में।
थे सरस सुधा बरसाते।३।

जब कलित कंठ के द्वारा।
गंभीर गीत सुन पाती।
तब अनुपम रस की बूँदें।
कानों में थीं पड़ जाती।४।

जब वचन मनोहर प्यारे।
कमनीय अधर पर आते।
तब मेरे मोहित मन को।
थे परम विमुग्ध बनाते।५।

जब अमल कमल दल आँखें।
थीं पुलकित विपुल दिखाती।
तब इस वसुधा-तल को ही।
थीं सुरपुर सदृश बनाती।६।

क्यों है अमनोरम बनता।
अब सुख - नन्दन-वन मेरा।
कैसे विनोद - सितकर को।
दुख-दल-बादल ने घेरा।७।

उर में करुणा-घन उमड़े।
तुम बरस दयारस - धारा।
कितने संतप्त जनों के।
बनते थे परम सहारा।८।

कुछ भाव तुम्हारे मन के।
जब कोमलतम बन पाते।
तब बहु कंटकित पथों में।
थे कुसुम-समूह बिछाते।९।

आँखों में आया पानी।
था कितनी प्यास बुझाता।
उसकी बूँदों से जीवन।
था परम पपासित पाता।१०।

उस काल नहीं किस जन के।
मन के मल को था धोता।
जिस काल तुम्हारा मानस।
पावन तरंगमय होता।११।

वह अहित क्यों बने जिसने।
सीखा है परहित करना।
क्यों द्रवित नहीं हो पाता।
अनुराग-सलिल का झरना।१२।

उपकार नहीं क्यों करता।
अवनीतल का उपकारी।
बन रवि-वियोगिनी कबतक।
कलपे नलिनी बेचारी।१३।

मैं जीती हूँ प्रति दिन कर।
सारे प्रिय कर्म तुम्हारे॥

तुम भूल गये क्यों मुझको।
मेरे नयनों के तारे।१४।

है यही कामना मेरी।
सेवा हो सफल तुम्हारी।

ललकित आँखें अवलोकें।
वह मूर्त्ति लोक-हितकारी।१५।

[१५]

पतिपरायणा

प्यारे मैं बहुत दुखी हूँ।
आँखें हैं आकुल रहती।

कैसे कह दूँ चिन्ताएँ।
कितनी आँचें हैं सहती।१।

मन बहलाने को प्रायः।
विधु को हूँ देखा करती।

पररूप - पिपासा मेरी।
है उसकी कान्ति न हरती।२।

शशि की कमनीय कलाएँ।
किसको हैं नहीं लुभाती।

किसके मानस में रस की ।
लहरें हैं नहीं उठाती ।३।

पर कान्त तुम्हारा आनन ।
जब है आलोकित होता ।

जिस काल कान्ति से अपनी ।
मानस का तम है खोता ।४।

उस काल मुग्ध कर मन को ।
जो छवि उस पर छा जाती ।

रजनी - रंजन में कब है ।
वैसी रंजनता आती ।५।

विधु है स-कलंक दिखाता ।
मुख है अकलंक तुम्हारा ।

फिर कैसे वह बन पाता ।
मेरे प्राणों का प्यारा ।६।

कितने कमलों को देखा ।
नभ के तारे अवलोके ।

दिनमणि पर आँखें डालीं ।
मैंने परमाकुल हो के ।७।

पर नहीं किसी में मुख-सी ।
महनीय कान्ति दिखलाई ।

कमनीयतमों में भी तो।
मैंने कम कमी न पाई।८।

कैसे जुग फूटा मेरा।
प्रतिकूल पड़े क्यों पासे॥
प्रियतम क्यों वदन विलोकें।
दृग रूप-सुधा के प्यासे।९।

[१६]

रूप और गुण

अरविन्द-विनिन्दक मुखड़ा।
मन को है मधुप बनाता।
वह बन मयंक-सा मोहक।
है मोहन मंत्र जगाता।१।

लोकोपकार कर मुख पर।
जो ललित कान्ति है लसती।
उसमें भव-शान्ति-विधायक।
सुरपुर-विभूति है बसती।२।

अति सुन्दर सहज रसीले।
वहु लोच-भरे जन-लोचन॥
मधु हैं मानस में भरते।
कर कुसुमायुध-मद-मोचन।३।

जो पर - दुख - कातरता - जल ।
है जन-नयनों में आता ।
वह व्यथा-भरित वसुधा को ।
है सुधा-सिक्त कर पाता ।४।

मद किसको नहीं पिलाता ।
मादक आँखों का कोना ।
है किसको नहीं नचाता ।
तिरछी चितवन का टोना ।५।

उससे भरती रहती है ।
पावन रुचि की शुचि प्याली ।
जिस दृग में है दिखलाती ।
लोकानुराग की लाली ।६।

जब आरंजित होठों पर ।
है सरस हँसी छवि पाती ।
तब नीरस मानस में भी ।
है रस की सोत बहाती ।७।

रहती है सुजन-अधर पर ।
जो वर विनोद की धारा ।
वह सिता - सदृश हरती है ।
अपचिति रजनी-तम सारा ।८।

है रूप विलास सदन धन।
बहुविध विनोद अवलम्बन।
जन-लोचन रुचिर रसायन।
संसार स्वर्ग नन्दन वन।९।

गुण है उदार संयत तम।
उत्सर्ग सलिल सुन्दर घन।
अन्तस्तल पूत उपायन।
सद्भाव सुमन चय उपवन।१०।

है रूप मोहमय मोहक।
महि मादकता का प्याला।
लोनता ललाम - निकेतन।
कमनीय काम-तरु-थाला।११।

गुण है गौरव गरिमा-रत।
हित-निरत नीति का नागर।
मानवता उर अभिनन्दन।
सुख-निलय सुधा का सागर।१२।

वह है भव-भाल कलाधर।
जो है कल कान्ति विधाता।
वह है शिव-शिर-सरि का जल।
जो है जग-जीवन-दाता।१३।

कान्त कुवदन को करती है।
कान्ति कोमलतम भावों की।८।

[१८]

निरीक्षण

दिव्यता पा जाती है कान्ति।
मिले विधुवदनी का मृदु हास।
बनाता है तन को कनकाभ।
कामिनी का कमनीय विलास।१।

गात-छवि-सरि का सरस प्रवाह।
रूप-सर का कर-विलसित आप।
मुख-कमल का है कान्त विकास।
कामिनीकुल का केलि-कलाप।२।

कामिनी-भौंहों को कर वंक।
तानता है कमनीय कमान।
बनाकर लोचन को बहु लोल।
मारता है कुसुमायुध बान।३।

सुछवि-सरसी का है कलकंज।
किसी मोहक मुखड़े का भाव।
रूप - तरु का है सरस-वसंत।
अंगना का बहु रसमय हाव।४।

रसिकता में भर-भर-कर रीझ।
डालता है किसपर न प्रभाव।
मुग्धता को करता है मत्त।
भामिनी-मुखभंगी का भाव।५।

कला से हो जाता है मंजु।
लोक - रंजनता - रजनी - अंक।
बनाता है मुख-नभ को कान्त।
कामिनी-विभ्रम मंजु मयंक।६।

भाव में भर सुरलोक-विभूति।
बढ़ा मुख-मंजुलता का मोल।
दृगों में भरता है पीयूष।
किसी ललना का कान्त कलोल।७।

लोचनों में भर-भरकर लोच।
मुग्ध मन को मोती से तोल।
बहाती है रस सरस प्रवाह।
मृगदृगी लीलाओं से लोल।८।

[१९]

मर्मवेध

त्याग कैसे उससे होगा।
न जिसने रुचि-रस्सी तोड़ी।

खोजकर जोड़ी मनमानी।
गाँठ सुख से जिसने जोड़ी।१।

एकता-मंदिर में वह क्यों।
जलायेगी दीपक घी का।
कलंकित हुआ भाल जिसका।
लगा करके कलंक-टीका।२।

मोह-मदिरा पीकर जिसने।
लोक की मर्यादा टाली।
संगठन नाम न वह लेवे।
गठन की जो है मतवाली।३।

नहीं वसुधा का हित करती।
लालसा - लालित भावुकता।
लोक-हित ललक नहीं बनती।
किसीकी इन्द्रिय-लोलुपता।४।

गले लग विजातीय जन के।
जाति-ममता है जो खोती।
कमर कस वह समाज-हित की।
राह में काँटे है बोती।५।

नाम ले विश्वबंधुता का।
विलासों को जिसने चाहा।

आप जल किसी अनल में वह ।
सगों को करती है स्वाहा ।६।

गीत समता के गा-गाकर ।
विषमता जो है दिखलाती ।

बहक यौवन-प्रमाद से वह ।
जाति-कंटक है बन जाती ।७।

बहाना कर सुधार का जो ।
बीज मौजों के है बोती ।

क्यों नहीं उसने यह समझा ।
सुधा है सीधु नहीं होती ।८।

किसीका हँसता मुखड़ा क्यों ।
किसी जी पर जादू डाले ।

किसीका जीवन क्यों बिगड़े ।
पड़े पापी मन के पाले ।९।

लाज रख सकीं न यदि आँखें ।
किसलिये उठ पाईं पलकें ।

गँवा दें क्यों मुँह की लाली ।
किसी कुल-ललना की ललकें।१०।

[२०]

मधुप

कर सका कामुक को न अकाम।
कमलिनी का कमनीय विकास।
कर सका नहीं वासना-हीन।
वासनामय को सुमन-सुवास।१।

विहँसता आता है ऋतुराज।
साथ में लिये प्रसून अनन्त।
हुआ अवनीतल में किस काल।
चटुल उपचित चाहों का अन्त।२।

फूल फल दल के प्याले मंजु।
दिखाते हैं रसमय सब ओर।
हुई कब तजकर लाभ अलोभ।
तृप्ति की ललक-भरी दृग-कोर।३।

कामनाओं की बढ़े विभूति।
चपलतर होता है चित-चाव।
प्रलोभन अवलम्बन अनुकूल।
ललाता है लालायित भाव।४।

मत्तता आकुलता का रूप।
लालसाओं का अललित ओक।

उदित होता है मानस मध्य।
मधुप की लोलुपता अवलोक ।५।

[२१]

समता-ममता

कालिमा मानस की छूटी।
हुआ परदा का मुँह काला।
टल गया घूँघट का बादल।
विधु-वदन ने जादू डाला ।१।

पड़ा सब पचड़ों पर पाला।
बेबसी पर बिजली टूटी।
बेड़ियाँ कटीं बंधनों की।
गाँस की बँधी गाँठ छूटी ।२।

बजी वीणा स्वतंत्रता की।
गुँधी हित-सुमनों की माला।
सुखों की वही सरस धारा।
छलकता है रस का प्याला ।३।

रंगतें नई रंग लाईं।
हो गया सारा मनभाया॥
धूप ने जैसा ही भूना।
मिल गई वैसी ही छाया ।४।

प्यार से गले लगा करके।
चूमती है उसको क्षमता।

स्वर्ग-जैसा कर सुमनों को।
विहँसती है समता-ममता।५।

[२२]

कौन

चाल चलते रहते हैं लोग।
चाह मैली धुलती ही नहीं।

खुटाई रग-रग में है भरी।
गाँठ दिल की खुलती ही नहीं।१।

न जाने क्या इसको हो गया।
फूल-जैसा खिलता ही नहीं।

खटकता रहता है दिन-रात।
दिल किसी से मिलता ही नहीं।२।

कम नहीं ठहराया यह गया।
पर ठहर पाया भूल न कहीं।

लाग किससे इसको हो गई।
लगाये दिल लगता ही नहीं।३।

है सदा जहर उगलना काम।
कसर किसकी रहती है मौन।

गले मिलने की क्यों हो चाह ।
खोलकर दिल मिलता है कौन ।४।

[२३]

स्वार्थी संसार

सुन लें बातें जिस-तिसकी ।
कब किसने मानी किसकी ।१।
है यही चाहती जगती ।
वह हो जिसको माने मन ।
औरों की इसके बदले ।
नप जाय भले हो गरदन ।
है उसे न परवा इसकी ।२।
है चाह स्वार्थ में डूबी ।
है उसे स्वार्थ ही प्यारा ॥
वह तो मतलब गाँठेगी ।
कोई मिल गये सहारा ।
अमृत हो चाहे ह्विसकी ।३।
फूलों से कोमल दिल पर ।
लगतीं सदमों की छड़ियाँ ।
कब भला देख पाती हैं ।
औरों के दुख की घड़ियाँ ।
पथराई आँखें रिस की ।४।

तब उतर गये लाखों सिर।
जब चलीं सितम - तलवारें।
बह गईं लहू की नदियाँ।
जब हुईं करारी वारें।
पर सुनी गई कब सिसकी।५।

हैं मार डालती उनको।
हैं जिन्हें नेकियाँ कहते।
लेती हैं जानें उनकी।
जो नहीं साँसतें सहते।
ऐंठें हैं गाँठें बिस की।६।

कुल मेलजोल पर इसका।
है रंग चढ़ा दिखलाता।
मतलब को धीरे - धीरे।
सामने देखकर आता।
कब नहीं मुरौअत खिसकी।७।

कैसे वह यह सोचेगा।
है अपना या बे-गाना।
काँटा निकाल देना है।
ढूँढ़ेगा क्यों न बहाना।
चढ़ गईं भवें हैं जिसकी।८।

[२४]

दिल के फफोले

क्यों टूट नहीं पाती हैं।
क्यों कड़ी पड़ गईं कड़ियाँ।
क्यों नहीं कट सकी बेड़ी।
क्यों खुलीं नहीं हथकड़ियाँ।१।

क्यों गड़-गड़ हैं दुख देती।
सुख-पाँवों में कंकड़ियाँ।
क्यों हैं बेतरह जलाती।
नभ-मंडल की फुलझड़ियाँ।२।

क्यों बिगड़ी ही रहती हैं।
मेरे घर की सब घड़ियाँ।
क्यों काट-काट हित-राहें।
ए बनती हैं लोमड़ियाँ।३।

क्यों बहुत तंग करती हैं।
मुझको कितनी खोपड़ियाँ।
क्या नहीं देख पाती हैं।
मेरी टूटी झोपड़ियाँ।४।

हैं ओस-बिन्दु टपकाती।
क्या कमलों की पंखड़ियाँ।

ये हैं आँसू की बूँदें।
या हैं मोती की लड़ियाँ।

किसलिये छिला दिल मेरा।
क्यों लग जाती हैं घड़ियाँ।
क्यों बीत नहीं पाती हैं।
रोती रातों की घड़ियाँ।५।

[२५]

मनोमोह

अब उर में किसलिये वह घटा नहीं उमड़ती आती।
सरस-सरस करके जो बहुधा मोती बरसा पाती।
वे मोती जिनसे बनती थी गिरा-कंठ की माला।
जिन्हें उक्ति मंजुल सीपी ने कांत अंक में पाला।१।
अब मानस में नहीं विलसते भाव-कंज वे फूले।
जिनपर रहते थे मिलिन्द-सम मधुलोलुप जन भूले।
बार-बार लीलाएँ दिखला नहीं विलस बल खाती।
अब भावुकता कल्पलता-सी कभी नहीं लहराती।२।
मन-नन्दन-वन अहह अब कहाँ वह प्रसून है पाता।
जिसका सौरभ सुरतरु सुमनों-सा था मुग्ध बनाता।
उदधि-तरंगों-जैसी अब तो उठतीं नहीं तरंगें।
वैसी ही उल्लासमयी अब बनतीं नहीं उमंगें।३।

हो पुरहूत-चाप आरंजित जैसा रंजन करता।
जैसे उसमें रंग कान्त कर से है दिनकर भरता।
वैसी ही रंजिनी किसलिये नहीं कल्पना होती।
क्यों अनुरंजन-बीज अब नहीं कृति अवनी में बोती।४।
सरस विचार-वसंत क्यों नहीं बहु कमनीय बनाता।
हृदय-विपिन किसलिये नहीं अब वैसा वैभव पाता।
कैसे इस थोड़े जीवन में पड़े सुखों के लाले।
रस-विहीन किसलिये बन गये मेरे रस के प्याले।५।

[२६]

दुखिया के दुखड़े

बुलाये नींद नहीं आती।
रात-भार रहती हूँ जगती।
किसीसे आँख लगाये क्यों।
लगाये आँख नहीं लगती।१।

रंग अपना बिगाड़कर क्यों।
रंग में उसके रँगती है।
लग नहीं जो लग पाता है।
लगन क्यों उससे लगती है।२।

निछावर क्यों होवें उसपर।
प्यार करना उससे कैसा?

जिसमें थे फूल फबीले।
क्यों उजड़े वह फुलवारी।२।

क्यों उनको हवा उड़ाये।
फूटे न कभी उनका दल।
थे सरस बनाते सबको।
रस बरस-बरस जो बादल।३।

थे जिसे देख रीझे ही।
रहते थे जिनके तारे।
उन प्यार-भरी आँखों को।
किसलिये चाँदनी मारे।४।

क्यों रहा नहीं वह अपना।
जो आँखों में बस पाता।
किसलिये आग वह बोवे।
जो चाँद सुधा बरसाता।५।

वे बनें पराये क्यों जो।
सब दिन अपने कहलाये।
कैसे तो हवा न बिगड़े।
जो हवा हवा बतलाये।६।

जिसको मैंने सींचा था।
जो था मीठे फल लाया।

अब वही आम का पौधा।
कैसे बबूल बन पाया।७।

जिसमें पड़ता रहता था।
सब स्वर्ग-सुखों का डेरा।
कैसे है उजड़ा जाता।
अब वह नन्दन-वन मेरा।८।

किसलिये धरा सुध-बुध खो।
है रत्न हाथ के खोती।
क्यों नहीं समुद्र-तरंगें।
अब हैं बिखेरती मोती।९।

क्या डूब जायगा सचमुच।
निज तेज गँवाकर सारा।
नीचे गिरता जाता है।
क्यों मेरा भाग्य-सितारा।१०।

[२९]

मोह

१

किसने कैसा जादू डाला।
लोचन-हीन बन गया कैसे युगल विलोचनवाला।

किस प्रकार लग गया वचन-रचना-पटु मुख पर ताला ।
क्यों कल कथन कान करते कानों को हुआ कसाला ।
कैसे हरित-भूत खेती पर पड़ा अचानक पाला ।
छिन्न हुई क्यों सुमति-कंठ-गत सुरुचि-सुमन की माला ।१।

२

बना क्यों मन इतना मतवाला ।
टपक रहा है बार-बार क्यों छिले हृदय का छाला ।
पीते रहे कभी पुलकित बन सरस सुधा का प्याला ।
आज कंठ हैं सींच न पाते पड़ा सलिल का लाला ।
क्यों अँधियाला बढ़ा, छिना क्यों छिति-तल का उँजियाला ।
किसने पेय मधुरतर पय में गरल तरलतम डाला ।२।

[३०]

शार्दूलविक्रीड़ित

होता कम्पित था सुरेश जिनसे जो विश्व-आतंक
थे वृन्दारक-वृन्द-वंद्य भव में जो भूति-सर्वस्व
वे हैं आज कहाँ कृतान्त-मुख ही में हैं समाये
संसारी समझे, कहे, फिर क्यों संसार निस्सार
तारे हैं पद चूमते, तरणि में है तेज मेरा
मैं हूँ विश्व-विभूति भूतपति भी है भीति से

क्या हैं ए दिवि देव दिव्य मुझसे ? मैं दिव्यता-नाथ हूँ।
मैं हूँ अन्तक का कृतान्त, मैं ही श्रीकान्त-सा कान्त हूँ।२।
खोले भी खुलते नहीं नयन हैं, क्यों बन्द ऐसे हुए।
हारे लोग जगा-जगा न, तब भी क्यों नींद है टूटती।
क्यों हैं आलस से भरे, न सुनते हैं दूसरों की कही।
खोके भी सुधि देह गेह जन की हैं लोग क्यों सो रहे।३।
क्यों सोचूँ जब सोच हूँ न सकता, जाऊँ कहाँ, क्या करूँ।
काटे है कटता न वार बहुधा मैं हूँ महा ऊबता।
होती है गत रात तारक गिने, है नींद आती नहीं।
होते चेत, अचेत है चित हुआ, चिन्ता चिता है बनी।४।
धू-धू है जलती विपन्न करती है धूम की राशि से।
आँचें दे लपटें उठा हृदय में है आग बोती सदा।
देती है कर भस्म गात-सुख को, मज्जा लहू मांस को।
चेते, है जन-चेत में धधकती, है चित्त चिन्ता चिता।५।
पाती जो न प्रतीति प्राणपति में तो प्रीति होती नहीं।
जो होते रस-हीन तो सरसता क्यों साथ देती सदा।
जो होती उनमें नहीं सदयता होते द्रवीभूत क्यों।
जो होता उर ही न सिक्त, दृग में आँसू दिखाते नहीं।६।
लेती है वह लुभा लोभ-मन को, है मोह को मोहती।
जाती है बन कोप की सहचरी, है काम के काम की।

है पूरी करती अपूर्व कृति से वांछा अहंकार की।
कैसे तो न करे प्रपंच जब है थी पंच-भूतात्मिका।७।
वे हैं भीत बलावलोक पर का, जो थे बड़े ही बली।
देखे दर्पित सैन्य-व्यूह जिनका दिग्पाल थे काँपते।
वे हैं आज बचे हुए दशन के नीचे दबा दूब को।
जो तोड़ा करते दिगन्त दमके दिग्दन्ति के दंत को।८।
ऊँचे भाल विशाल दिव्य दृग में भ्रू-भंगिमा भूति में।
नासा-कुंचन में कपोल युग में लाली-भरे होठ में।
नाना हास-विलास कंठ-रव में अन्यान्य शेपाङ्ग में।
बाला बालक चित्त की चपलता है चारुता अर्चिता।९।
बातें हैं उसको पसंद अपनी, क्यों दूसरों की सुने।
जो मैं हूँ कहता उसे न करके है भागती जी बचा।
है रूठा करती कभी झगड़ती है तान देती कभी।
थी मेरी मति तो नितान्त अचला यों चंचला क्यों हुई।१०।
होता है पल में विकास, पल में है दृष्टि आती नहीं।
छू के है बहु जीव प्राण हरती, है नाचती नग्न हो।
कोई बात सुने सहस्र श्रवणों में है उसे डालती।
देखी है चपला समान चपला भू-दृष्टि ने क्या कहीं।११।
नेता हैं, पर नीति स्वार्थ-रत है, है कीर्त्ति की कामना।
प्यारा है उनको स्वदेश, पर है बाना विदेशी बना।

वांछा है रँग जाय भारत-धरा योरोप के रंग में।
है सच्चा यदि देश-प्रेम यह तो है देश का द्रोह क्या ।१२।
है सत्कर्म-निकेत धर्म-रत है, है सत्यवक्ता सुधी।
है उच्चाशय कर्मवीर सुकृती सत्याग्रही संयमी।
है विद्या वर विज्ञता सदन, है धाता सदाचारिता।
तो होता दिवि देव जो मनुज में होती न मोहांधता ।१३।
'मेरा' का महि में महान् पद है, 'मेरा' महामंत्र है।
देखे हैं सब राव-रंक किसका प्यारा 'हमारा' नहीं।
जादू है उनका सभी पर चला, हैं त्याग बातें सुनीं।
ऐसा मानव ही मिला न ममता-माया न मोहे जिसे ।१४।
व्यापी है विभु की विभूति भव में भू-भूति में भूत में।
तारों में, तृणपुंज में, तरणि में, राकेश में, रेणु में।
पाई व्यापक दिव्य दृष्टि जिसने धाता-कृपा-वृष्टि से।
पाता है वह पत्र-पुष्प तक में सत्ता - महत्ता पता ।१५।
बातें क्यों करते कदापि मुँह भी तो खोल पाते नहीं।
कोई काम करें, परन्तु उनको है काम से काम क्या।
खायेंगे भर-पेट नींद-भर तो सोते रहेंगे न क्यों।
लेते हैं अँगड़ाइयाँ सुख मिले वे खाट हैं तोड़ते ।१६।
तो कैसे चल हाथ - पाँव सकते, चालें नहीं भूलते।
तो कैसे अँगड़ाइयाँ न अड़तीं, आती जम्हाई न क्यों।

तो वे टालमटोल क्यों न करते, ढीले न क्यों ढूँढ़ते।
जो है आलस-चोर संग, श्रम से तो जी चुराते न क्यों।१७।

थू-थू हैं करते विलोक रुचि को वे जो बड़े दान्त हैं।
छी-छी की ध्वनि है अजस्र पड़ती आ-आ उठे कान में।
देखे आनन को अभिज्ञ जनता है नेत्र को मूँदती।
रोती है मति, पाप-पंथ-रत को है ग्लानि होती नहीं।१८।

पाते हैं तम में अड़ी दनुज की वक्रानना मूर्त्तियाँ।
होती हैं तरु के समीप निशि में नाना चुड़ैलें खड़ी।
बागों में विकटस्थलों विपिन में हैं भूत होते भरे।
है शंकामय सर्व सृष्टि बनती शंकालु शंका किये।१९।

क्यों होवे तरु कम्पमान, लतिका म्लाना कभी क्यों बने।
क्यों वृन्दारक हो विपन्न, मलिना क्यों देवबाला लगे।
क्यों होवे अप्रफुल्ल कंज दलिता क्यों पुष्पमाला मिले।
आशंका मन को न हो, न मति को शंका करे शंकिता।२०।

है वैकुंठ-विलासिनी प्रियकरी, है कीर्त्ति कान्ता समा।
हैं सारी जन-शक्तियाँ सहचरी, हैं भूतियाँ तद्गता।
है वांछा अनुगामिनी, सफलता है बुद्धिमत्ताश्रिता।
दासी है भव-ऋद्धि सत्य श्रम की, हैं सेविका सिद्धियाँ।२१।

हैं साँसें यदि फूलती विकल हो, क्यों साँस लेने लगे।
क्यों हो आकुल हाथ-पाँव अपने ढीले करे क्यों थके।

आयेगा जब कार्य, सिद्धि-पथ में पीछे हटेगा नहीं।
क्यों देखे श्रमबिन्दुपात, श्रम को क्यों त्याग देवे श्रमी।२२।
लेते हैं यदि दून की, मत हँसो दूना कलेजा हुआ।
पृथ्वी थी वश में, परन्तु अब तो है हाथ में व्योम भी।
थे भूपाल तृणातितुच्छ अब हैं धाता विधाता स्वयं।
होंगे दो मद साथ तो न दुगुना होगा मदोन्माद क्यों।२३।
भागेगा तम-तोम त्याग पद को, लेगी तमिस्रा बिदा।
होगी दूर कराल काल कर से दिग्व्यापिनी कालिमा।
आयेगी फिर मंद-मंद हँसती ऊषा-समा सुन्दरी।
होयेगा फिर सुप्रभात, वसुधा होगी प्रभा-मंडिता।२४।
हो उत्पात, प्रवंचना प्रबल हो, होवें प्रपंची अड़े।
होवे आपद सामने, सफलता हो संकटों में पड़ी।
होता हो पविपात, तोप गरजें, गोले गिराती रहें।
क्यों तो धीर बने अधीर, उसकी धी क्यों तजे धीरता।२५।
बाँधा था जिसने पयोधि, जिसने अंभोधि को था मथा।
पृथ्वी थी जिसने दुही, गगन में जो पक्षियों-सा उड़ी।
पाई थी जिसने अगम्य गिरि में रत्नावली-मालिका।
हा! धाता! वह आर्यजाति अब क्यों आपत्तियों में पड़ी।२६।
है छाया वह जो सदैव तम में हैं रंग जाती दिखा।
होवे दिव्य अपूर्व, किन्तु वह तो है कल्पना मात्र ही।

हों लालायित क्यों विलोक उसको जो हाथ आती नहीं।
है आपत्ति यही किसे वह मिली जो स्वप्न-सम्पत्ति है।२७।
क्या सोचें, जब सोच हैं न सकते, है बात ही भेद की।
ऐसी है यह ग्रंथि-युक्ति, नख के खोले नहीं जो खुली।
है संसार विचित्र, चित्र उसके वैचित्र्य से हैं भरे।
रोते हैं दुख को विलोक, सुख के या स्वप्न हैं देखते।२८।
ऐसे हैं भव से अचेत, चित को है चेत होता नहीं।
होती है कम आयु नित्य, फिर भी तो हैं नहीं चौंकते।
देखा हैं करते विनाश, खुलती है आँख तो भी नहीं।
क्या जानें जग लोग हैं जग रहे या हैं पड़े सो रहे।२९।
क्यों अज्ञान-महांधकार टलता, क्यों बीत पाती तमा।
नाना पाप-प्रवृत्ति-जात पशुता होती धरा-व्यापिनी।
द्रष्टा वैदिक मंत्र के, रचयिता भू के सदाचार के।
जो होते न जगे, न ज्योति जग में तो ज्ञान की जागती।३०।
हैं उद्वेलित अब्धि पैर सकती, हैं विश्व को जीतती।
लेती हैं गिरि को उठा, कुलिश को हैं पुष्प देती बना।
हैं लोकोत्तर कला-कीर्त्ति-कलिता, हैं केशरी-वाहना।
हैं तारे नभ से उतार सकती उत्साहिता शक्तियाँ।३१।
रोकेगी तुझको स्वधर्म-दृढ़ता, धी पीट देगी तुझे।
तेरी सत्य प्रवृत्ति पूत कर से होगी महा यातना।

होगा गर्व सदैव खर्व शुचिता की सात्विकी वृत्ति से।
पावेगा फल महादर्प-तरु का ऐ पातकी पाप ! तू।३२।
होती है गतशक्ति प्राप्त प्रभुता आक्रान्त हो क्रान्ति से।
जाती है लुट दिव्य भूति, छिनता साम्राज्य है सर्वथा।
अत्याचार प्रकोप-वज्र बनता है वज्रियों के लिये।
होता है स्वयमेव खर्व पल में गर्वान्ध का गर्व भी।३३।
तानें लें, पर ऐंठ-ऐंठ करके ताने न मारा करें।
गायें गीत, परंतु गीत अपने जी के न गाने लगें।
देते हैं यदि ताल तो मचल के देवें न ताली बजा।
वे हैं जो बनते, बनें, बिगड़ के बातें बनायें नहीं।३४।
वे ही हैं हँसते न रीझ हँसना आता किसे है नहीं।
होता है कमनीय रंग उनका तो रंग हैं अन्य भी।
वे हैं कोमल, किन्तु कोमल वही माने गये हैं नहीं।
तो है भूल विलोक रूप अपना जो फूल हैं फूलते।३५।
होता जो चित में न चोर, रहती तो आँख नीची नहीं।
होता जो मन में न मैल, दृग क्यों होते नहीं सामने।
जो टेढ़ापन चित्त में न बसता, सीधे न क्यों देखते।
जो आ के पति बीच में न पड़ती, आँसू न पीते कभी।३६।
देता तो जल मैं निकाल दुखते होते नहीं हाथ जो।
तो धोता पग पूत क्यों न, लखते होते न जो दूर से।

कैसे आदर तो भला न करता है भाग्य ऐसा कहाँ।
मैं हूँ सेवक, किन्तु आज प्रभु की सेवा नहीं हो सकी।३७।
क्यों हैं लोचन लाल रात-भर क्या मैं जागता था नहीं।
होते कम्पित क्यों न हस्त पग जो है आज जाड़ा बड़ा।
मैं हूँ हाँफ रहा, परंतु घर से हूँ दौड़ता आ रहा।
है इच्छा प्रतिशोध की न मुझमें, मैं क्रोध में हूँ नहीं।३८।
काटे है कटती न रात, बकती हूँ, वेदना है बड़ी।
आशा से पथ-ओर हैं दृग लगे, क्यों देर है हो रही।
जाते हैं युग बने याम, व्यथिता हो हूँ व्यथा भोगती।
दौड़ो नाथ! बनो दयालु, दुखिता की दुर्दशा देख लो।३९।
जी है ऊब रहा, उबार न हुआ, बाधा हुई बाधिका।
मैं दौड़ी शत बार द्वार पर जा वांछा-विहीना बनी।
है मेरे मुँह से न बात कढ़ती, कैसे बताऊँ व्यथा।
आँखें भी पथरा गईं प्रिय पथी के पंथ को देखते।४०।
थी जिनके बल से विशाल-विभवा संसार-सम्मानिता।
दिव्यांगा दिव-देव-भाव-भरिता लोकोत्तरा पूत-धी।
उत्कण्ठावश, हो विनम्र प्रभु से है प्रश्न मेरा यही।
पावेंगे फिर भारतीय जन क्या वे भारती भूतियाँ।४१।
जो थोड़े उनके हितू मिल सके, वे नाम के हैं हितू।
या वे हैं अपवाद या कि उनमें है पालिसी पालिसी।

पाते हैं उसको नितान्त दलिता या दुःखिता पीड़िता।
कोई बन्धु बना न दीन जन का है दीनता दीनता।४२।
खोया जो निज स्वर्गराज्य, दुख क्या, पाया मनोराज्य है।
कोई हो परतन्त्र क्यों न, उनकी धी है स्वतन्त्रा बनी।
होवे संस्कृति धूल में मिल रही, वे संस्कृताधार हैं।
देखे भारत के सलज्ज सुत को निर्लज्ज लज्जा हुई।४३।
जाती है बन सुधासिक्त वसुधा, है व्योम पाता प्रभा।
आती है अति दिव्यता प्रकृति में, है मोहती दिग्वधू।
होता है रस का प्रवाह छवि में संसार-सौन्दर्य में।
हो-हो मंजुल मन्द-मन्द उर में आनन्द-धारा बहे।४४।
वे भू में नभ में अगम्य वन में निश्शंक हैं घूमते।
वे उत्तालतरङ्ग वारिनिधि में हैं पोत-सा पैरते।
वे हैं दुर्गम मार्ग में विहरते, हैं अग्नि में कूदते।
होते हैं अभिभूत वे न भय से जो निर्भयों में पले।४५।
जाते हैं बन भूत पेड़ तम में, है प्रेतगर्भा तमा।
होती है वहु भीति वक्र गति से या सर्प-फुत्कार से।
है हृत्कम्पकरी समान अवनी है मृत्यु त्रासात्मिका।
शंका है भय भाव भूति बनती है भीरुता भूतनी।४६।
खोले भी खुलते नहीं नयन हैं, है चेत आता नहीं।
जो कोई हित-बात है न सुनती, है चौंकती भी नहीं।

सारे यत्न हुए निरर्थ, जिसकी दुर्बोध हैं व्याधियाँ।
ऐसी जाति अवश्य मृत्यु-मुख में हो मूर्छिता है पड़ी ।४७।
खोजेगी वह कौन मार्ग, उसको त्राता मिलेगा कहाँ।
रोयेगी सिर पीट-पीट उसका उद्धार होगा नहीं।
जीयेगी वह कौन यत्न करके पीके सुधा कौन-सी।
जीने दे न कृतान्त-मूर्त्ति बनके जो जाति ही जाति को ।४८।
आँखें हैं, पर देख हैं न सकती, पा कान बे-कान है।
होते आनन बात है न कढ़ती है साँस लेती नहीं।
क्यों पाते चल हाथ-पाँव जब वे निर्जीव हैं हो गये।
फूँका जीवन-मन्त्र, किन्तु जड़ता जाती नहीं जाति की।४९।
हो उत्तेजित भाव मध्य पथ का होता पथी ही नहीं।
जाती है बन उक्ति ओज-भरिता तेजस्विता-पूरिता।
होता स्पंदन है विशेष उर तो क्यों स्फीत होगा नहीं।
है उद्वेग हुआ सदैव करता आवेग के वेग से ।५०।
होती है व्यथिता कभी विचलिता अत्यन्त भीता कभी।
रोती है वह कभी याद करके लोकोत्तरा कीर्त्तियाँ।
पुत्रों को अवलोक है विहँसती या दग्ध होती कभी।
हो कर्त्तव्यविमूढ़ जाति अब तो उन्मादिनी है बनी ।५१।
होता है मन, देख जीभ चलती, जो हो, उसे खींच लूँ।
पीटूँ क्यों न उसे तुरन्त कहता है बात जो बेतुकी।

जाता है घिढ़ चित्त चाल चलते चालाक को देख के।
जो आँखें निकलें निकाल उनको लूँ क्यों न तत्काल मैं।५२।
हैं संतप्त अनेक चित्त बहुशः काया महारुग्न है।
भू सारे उपसर्ग व्योम तक में हैं भूरिता से भरे।
पीड़ा से सुर भी बचे न भव में है ह्रास भी मृत्यु भी।
सारी संसृति आधि से मथित है, है व्याधि-बाधावृता।५३।
देती हैं तन को कँपा अति व्यथा, होती अनाहूत हैं।
हैं हा-हा ध्वनि का प्रसार करती, हो भूरि उत्तापिता।
देता है बहु कष्ट वेग उनका उत्पात-मात्रा बढ़ा।
अंधाधुंध मचा सदैव बनती हैं व्याधियाँ आँधियाँ।५४।
है काँपा करती कभी तड़पती है चोट खाती कभी।
प्रायः है वह वज्रपात सहती हो-हो महा दग्धिता।
हो उद्वेजित अब्धि से, बदन से है फेंकती फेन भी।
हा धाता ! किस पाप से वसुमती है भूरि उत्पीड़िता।५५।

सारे यत्न हुए निरर्थ, जिसकी दुर्बोध हैं व्याधियाँ।
ऐसी जाति अवश्य मृत्यु-मुख में हो मूर्छिता है पड़ी ।४७।
खोजेगी वह कौन मार्ग, उसको त्राता मिलेगा कहाँ।
रोयेगी सिर पीट-पीट उसका उद्धार होगा नहीं।
जीयेगी वह कौन यत्न करके पीके सुधा कौन-सी।
जीने दे न कृतान्त-मूर्त्ति बनके जो जाति ही जाति को ।४८।
आँखें हैं, पर देख हैं न सकती, पा कान बे-कान है।
होते आनन बात है न कढ़ती है साँस लेती नहीं।
क्यों पाते चल हाथ-पाँव जब वे निर्जीव हैं हो गये।
फूँका जीवन-मन्त्र, किन्तु जड़ता जाती नहीं जाति की ।४९।
हो उत्तेजित भाव मध्य पथ का होता पथी ही नहीं।
जाती है बन उक्ति ओज-भरिता तेजस्विता-पूरिता।
होता स्पंदन है विशेष उर तो क्यों स्फीत होगा नहीं।
है उद्वेग हुआ सदैव करता आवेग के वेग से ।५०।
होती है व्यथिता कभी विचलिता अत्यन्त भीता कभी।
रोती है वह कभी याद करके लोकोत्तरा कीर्त्तियाँ।
पुत्रों को अवलोक है विहँसती या दग्ध होती कभी।
हो कर्त्तव्यविमूढ़ जाति अब तो उन्मादिनी है बनी ।५१।
होता है मन, देख जीभ चलती, जो हो, उसे खींच लूँ।
पीटूँ क्यों न उसे तुरन्त कहता है बात जो बेतुकी।

जाता है चिढ़ चित्त चाल चलते चालाक को देख के।
जो आँखें निकलें निकाल उनको लूँ क्यों न तत्काल मैं।५२।
हैं संतप्त अनेक चित्त बहुशः काया महारुग्न है।
भू सारे उपसर्ग व्योम तक में हैं भूरिता से भरे।
पीड़ा से सुर भी बचे न भव में है ह्रास भी मृत्यु भी।
सारी संसृति आधि से मथित है, है व्याधि-बाधावृता।५३।
देती हैं तन को कँपा अति व्यथा, होती अनाहूत हैं।
हैं हा-हा ध्वनि का प्रसार करती, हो भूरि उत्तापिता।
देता है बहु कष्ट वेग उनका उत्पात-मात्रा बढ़ा।
अंधाधुंध मचा सदैव बनती हैं व्याधियाँ आँधियाँ।५४।
है काँपा करती कभी तड़पती है चोट खाती कभी।
प्रायः है वह वज्रपात सहती हो-हो महा दग्धिता।
हो उद्वेजित अब्धि से, बदन से है फेंकती फेन भी।
हा धाता ! किस पाप से वसुमती है भूरि उत्पीड़िता।५५।

नवम सर्ग

सांसारिकता

स्वभाव

[१]

गोद में ले रखता है प्यार।
सरस बन रहता है अनुकूल।

मुदित हो करती है मधुदान।
भ्रमर से क्या पाता है फूल।१।

धरा कर प्रबल पवन का संग।
भरा करती है नभ में धूल।

गगन बरसाता है बर वारि।
बनाकर वारिद को अनुकूल।२।

सदा दे-दे सुन्दर फल-फूल।
विटप करता है छाया-दान।

वृथा कोमल पत्तों को तोड़।
पथिक करता है तरु-अपमान।३।

ओस की बूँदों को ले रात।
सजाती है तरु को कर प्यार।
दिवस लेकर किरणों को साथ।
छीन लेता है मुक्ता-हार।४।

प्यार से भर विलोक प्रियकान्ति।
पास आता है मत्त पतंग।
जलाकर कर देता है राख।
स्नेहमय दीपक भरित-उमंग।५।

बोल तक सका नहीं मुँह खोल।
दूर ही रहा सब दिनों सूर।
रागमय ऊषा कर अनुराग।
माँग में भरती है सिन्दूर।६।

पपीहा तज वसुधा का वारि।
ताकता है जलधर की ओर।
बरसकर बहुधा उपल-समूह।
डराता है घन कर रव घोर।७।

पला सब दिन कोकिल का वंश।
काक के कुल का पाकर प्यार।
आज तक कोकिल-कुल-संभूत।
कर सका कौन काक उपकार।८

[२]

विचित्र विधान

मिला जिससे जीवन का दान ।
सतत कर उसी तेल का नाश ।
निज प्रिया बत्ती को कर दग्ध ।
दीप पाता है परम प्रकाश ।१।

जी सके जिनसे पा रवि ज्योति ।
उन्हीं पत्रों के हो प्रतिकूल ।
विटप बनते हैं बहु छविधाम ।
लाभ कर नूतन दल-फल-फूल ।२।

हुआ है जिससे जिसका जन्म ।
जो बना जीवन शान्ति-निकुंज ।
धूल में उसी बीज को मिला ।
अंकुरित होता है तरुपुंज ।३।

छीनकर तारक-चय की कांति ।
भव भरित तम पर कर पविपात ।
सहस कर से हर विधु का तेज ।
भानु पाता है प्रिय अवदात ।४।

कुमुद-कुल को कर कान्ति-विहीन ।
कौमुदी-उर पर कर आघात ।

. हरण कर रजनी का सर्वस्व।
प्रभा पाता है दिव्य प्रभात।५।

वायु की शीतलता को छीन।
आपको देकर वहु संताप।
दिशाओं में भर पावक पुंज।
प्रबल बनता है तप उत्ताप।६।

अवनि में नभतल में भर धूल।
द्रुमावलि को दे-दे वहु दंड।
हरण करके अगणित प्रिय प्राण।
वात बनता है परम प्रचंड।७।

दमन करके दल दुर्दमनीय।
विपुल नृप-भुज-बल का बन काल।
लोक में भर प्रभूत आतंक।
प्रबलतम बनता है भूपाल।८।

[३]

राजसत्ता

मुकुट होता है शोणित-सिक्त।
राज-पद नर-कपाल का ओक।
घरों में भरता है तमपुंज।
राजसिंहासन का आलोक।१। } वि.

बंधुओं का कर शोणित-पान।
नहीं उसको होता है क्षोभ।
पिता का करता है बलिदान।
किसी का राज्य-लाभ का लोभ।२।

झूमता चलता है जिस काल।
काँपता है अचला सब अंग।
मसलता है जन-मानस-पद्म।
राजमद का मदमत्त मतंग।३।

दमन का बरसे ज्वलदंगार।
मनुज-कुल का होता है लोप।
धरातल को करता है भस्म।
प्रलय-पावक-समान नृप-कोप।४।

भंग करके सद्भाव समेत।
मनुजता का अनुपम-तम अंग।
नर-रुधिर से रहता है सिक्त।
सुरंजित राजतिलक का रंग।५।

बना बहु प्रान्तों को मरुभूमि।
विविध सुख-सदनों का बन काल।
जनपदों का करता है ध्वंस।
राजभय प्रबल भूत-भूचाल।६।

लोक में भरती हैं आतंक।
लालसाओं की लहरें लोल।
भग्न करते हैं भवहित-पोत।
राज्य-अधिकार-उदधि-कल्लोल ।७।

गर्व-गोलों से कर पवि-पात।
अरि-अनी का करती है लोप।
कँपाती है महि को कर नाद।
राज्य-विस्तार-वृत्ति की तोप ।८।

[४]

सेमल की सदोषता

पाकर लाल कुसुम सेमल-तरु रखता है मुँह की लाली।
रहती है सब काल लोक-अनुरंजन-रत उसकी डाली।
नभतल नील वितान-तले जब उसके सुमन विलसते हैं।
तब कितने ही ललक-निकेतन जन-नयनों में बसते हैं ।१।

मंद-मंद चल मलय-मरुत जब केलि-निरत दिखलाता है।
तब लालिमा-लसित कुसुमों का कान्त केतु फहराता है।
लोहित-वसना उषा विलस जब उसे अंक में लेती है।
सरस प्रकृति जब द्रवीभूत हो मुक्तावलि दे देती है ।२।

तब वह फूला नहीं समाता, आरंजित बन जाता है।
सहृदय जन के मधुर हृदय में रस का स्रोत बहाता है।

हरित नवल दल उसके कुसुमों में जब शोभा पाते हैं।
जब उसपर पड़ दिनकर के कर कनक-कान्ति फैलाते हैं।३।
जब कोकिल को ले स्वअंक में वह काकली सुनाता है।
जब उस पर बैठा विहंग-कुल मीठे स्वर से गाता है।
तब वह किसको नहीं रिझाता, किसको नहीं लुभाता है!
किसको नहीं त्वरित हो-होकर विपुल विमुग्ध बनाता है।४।
अति चमकीली चारु मक्खियाँ तथा तितलियाँ छविवाली।
रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर बहु पतंग शोभाशाली।
जब प्रसून का रस पी उड़-उड़ मंजु भाँवरें भरते हैं।
तब क्या नहीं मुग्धकारी निधि उसको वितरण करते हैं।५।
तो भी कितने हृदयहीन जन वंचक उसे बनाते हैं।
कितने नीरस फल विलोक उसको असरस बतलाते हैं।
पर विचित्रता क्या है इसमें, भूतल को यह भाता है।
धरती में प्रायः पर का अवगुण ही देखा जाता है।६।

[५]

दुरंगी दुनिया

अजब है रंगत दुनिया की।
बदलती रहती है तेवर।
किसी पर सेहरा बँधता है।
उतर जाता है कोई सर।१।

किसी का पाँव नहीं उठता।
किसी को लग जाते हैं पर।
धूल में मिलता है कोई।
बरसता फूल है किसी पर।२।

[६]

निर्मम संसार

वायु के मिस भर-भरकर आह।
ओस-मिस बहा नयन-जलधार।
इधर रोती रहती है रात।
छिन गये मणि-मुक्ता का हार।१।

उधर रवि आ पसार कर कान्त।
उषा का करता है शृंगार।
प्रकृति है कितनी करुणा-मूर्त्ति।
देख लो कैसा है संसार।२।

[७]

उत्थान

अहह लुट गया ओस का कोष।
हो गया तम का काम तमाम।
कुमुद-कुल बना विनोद-विहीन।
छिना तरु-दल-गत मुक्ता-दाम।१।

हर गया रजनी का सर्वस्व।
छिपा रजनी-रंजन बन म्लान।
हुआ तारक-समूह का लोप।
दिवाकर! यह कैसा उत्थान।२।

[८]

फल-लाभ

चुन लिये जाते हैं लाखों।
अनेकों नुचते रहते हैं।
करोड़ों वायु-वेग से झड़।
विपद्-धारा में बहते हैं।१।

धूल में बहते हैं कितने।
बहुत-से विकस न पाते हैं।
सभी का भाग्य नहीं जगता।
सब कुसुम कब फल लाते हैं।२।

[९]

मन की मनमानी

अड़े, बखेड़े खड़े हो गये।
पीछे पड़े, न किसे पछाड़ा।
डटे, बताई डाँट न किसको।
झझके, बड़े-बड़ों को झाड़ा।१।

उलझे, किसे नहीं उलझाया।
सुलझ न पाता है सुलझाये।
तिनके, बना बना तिनकों से।
फूँक से गये लोग उड़ाये।२।

आग-बगूले बने, कब नहीं।
किसके दिल में पड़े फफोले।
खिंचे, खिंच गई हैं तलवारें।
बमके, चलते हैं बमगोले।३।

चिढ़े, सताता है वह इतना।
जिसे देखकर कौन न दहला।
ऐंठे, किससे लिया न लोहा।
दिया लहू से किसे न नहला।४।

बहँके, बला पर बला लाया।
कुढ़े, विपद ढाये देता है।
तमके, किसका कँपा कलेजा।
नहीं वह निकाले लेता है।५।

खीज, लहू पीती रहती है।
डाह, दूह लेती है पोटी।
तेवर बदले, कितनों ही की।
नुच जाती है बोटी-बोटी।६।

बिगड़े, बहुतों की बिगड़ी है।
अकड़े, लुटते लाखों घर हैं।
सनके, खालें हैं खिंच जाती।
झगड़े, कटे करोड़ों सर हैं।७।

रह जाती हैं, मति की बातें।
बनकर पानी पर की रेखा!
जब देखा तब नर के मन को।
मनमानी ही करते देखा।८।

[१०]

स्वार्थ

कौन किसी का होता है।

स्वार्थसिद्धि के सरस खेत में प्यार-बीज नर बोता है।
सब छूटे वह हथकंडों से हाथ भला कब धोता है।
पोत दूसरों को दे मोती अपने लिये पिरोता है।
सग से भी सग को दुख देते तनिक नहीं मन रोता है।
मोह अँधेरी रुचि-रजनी में सुख की नींदों सोता है।
जिससे पड़े स्वार्थ में बाधा जो वैभव को खोता है।
वह प्रिय सुत भी आँख फोड़नेवाला बनता तोता है।
सुख-सरवर के लिये नहीं बन पाता जो रस-सोता है।
है ऐसा उर कौन कि जिसमें काँटे नहीं चुभोता है।

हुई न परवा पर-मन को निज मन की रोटी पोता है।
निज सुख-साध-तरंगों में पर-सुख का पोत डुबोता है।
स्वार्थ-भाव से ही उजड़ा दिव-भाव-विहंगम-खोंता है।
उसके कर ने मसि मानवता रुचिर चित्र पर पोता है।१।

[११]

रक्तपात

रक्तरंजित है भव-इतिहास।

रुधिर-पान के बिना नहीं बुझ पाती है वसुधा की प्यास।
है विकराल काल कापालिक क्रीडा-रत ले विपुल कपाल।
काली बहुत किलकिलाती है मुंडमालिनी बन सब काल।
जो शिवशंकर कहलाते हैं कार्य उन्हीं का है संहार।
शव-वाहना प्रिया है, उनका सिंह-वाहना से है प्यार।
दुर्गा-दानव-रण में इतना हुआ रक्त-प्लावित भूअंक।
एक पिपासित खग ने गिरि पर बैठे रुधिर पिया निश्शंक।
राम और रावण आहव में उतना हुआ न रक्त-प्रवाह।
फिर भी खग ने मेरु से उतर पूरी की थी शोणित-चाह।
कहाँ हुआ, कब हुआ, हुआ किससे, भारत-सा युद्ध महान।
रक्तपान की बात क्या, विहँग सका नहीं इतना भी जान।
यद्यपि यह प्रतिपादित करता है यह कल्पित समर-प्रसंग।
अतिशय पशुता-निर्दयता-पूरित था आदिम युद्ध-उमंग।

किसी अंश में विबुध विवेचक मति सकती है इसको मान।
किन्तु सत्य है यह, दानव मानव दोनों हैं एक समान।
अवसर पर दानवता करते कब मानवता हुई सशंक।
लाखों घर लुट गये, करोड़ों कटे-पिटे होते भ्रू वंक।
कभी राज्य-विस्तार-लालसा ले कठोर कर में करवाल।
लाख-लाख लोगों का लोहू करती है कर आँखें लाल।
कभी आत्म-रक्षण-निमित्त अथवा आतंक-प्रसारण-हेतु।
प्रबल प्रताप किसी का बनता है जग-जन-उत्पीड़न-केतु।
निरपराध हैं पिसे करोड़ों, अरबों दिये गये हैं भून।
अनायास नुच गये कोटिशः सुन्दर-सुन्दर खिले प्रसून।
क्यों ? इसलिये कि किसी नराधम नृप के ये थे प्यारे खेल।
अथवा किसी पिशाच-प्रकृति का चिढ़ से उठ पाया था शेल।
लाखों के लोहू से गारा बन-बन हुए हरम तैयार।
धर्मान्तर के लिये करोड़ों शिर उतरे, चमकी तलवार।
वैज्ञानिक बहु अस्त्र-शस्त्र अब जितने करते हैं उत्पात।
विध्वंसक रणपोत आदि से होते हैं जितने अपघात।
वायुयान-गोला-वर्षण से होता है जो हा-हाकार।
देखे नगर-ध्वंसिनी तोपों की वसुधातल में भरमार।
कैसे कह सकता है कोई, दानव-युग था महादुरन्त।
सच तो यह है, दुर्जनता का होता नहीं दिखाता अंत।

अधिक सभ्य अमरीका योरप को सब लोग रहे हैं मान।
आज इन्हीं को प्राप्त हो गये हैं वसुधा के सब सम्मान।
किन्तु इन्हीं देशों में अब है सारे कल-बल-छल का राज।
स्वार्थसिद्धि के रचे गये हैं नाना साधन कर बहु व्याज।
इसी लिये रणचंडी की है वहाँ गर्जना परम प्रचंड।
होता है यह ज्ञात युद्ध से कम्पित होवेगा भूखंड।
क्या है यही विधान प्रकृति का, क्या है शिव का यही स्वरूप!
क्या विकराल काल काली के तांडव का ही है यह रूप।
जो हो, किन्तु देखकर सारी घटनाएँ होता है ज्ञात।
शक्तिवृद्धि औ स्वार्थसिद्धि का मूल मंत्र है शोणित-पात।१।

[१२]

मतवाली ममता

मानव-ममता है मतवाली।

अपने ही कर में रखती है सब तालों की ताली।
अपनी ही रंगत में रँगकर रखती है मुँह-लाली।
ऐसे ढंग कहाँ वह जैसे ढंगों में है ढाली।
धीरे-धीरे उसने सब लोगों पर आँखें डाली।
अपनी-सी सुन्दरता उसने कहीं न देखीभाली।
अपनी फुलवारी की करती है वह ही रखवाली।
फूल बखेरे देती है औरों पर उसकी गाली।

भरी व्यंजनों से होती है उसकी परसी थाली।
कैसी ही हो, किन्तु बहुत ही है वह भोलीभाली ।१।

[१३]

बल

विश्व में है बल ही बलवान ।
कौन पूछता है अबलों को, सबलों का है सकल जहान
जल में, थल में, विशद गगन में एकछत्र है उनका राज
सफल सुसेवित सम्मानित है उनका उन्नत प्रबल समाज
होते हैं विलोप पल-भर में अगणित ताराओं के ओक।
प्रभा-हीन बनता है शशधर रवि का तेजः-पुंज विलोक।
विभावरी तजती है विभुता, उज्ज्वल हो जाता है व्योम।
दिनमणि का प्रताप-बल देखे विदलित होता है तमतोम।
हुई धरा शासित सबलों से, नभ में उड़े विजय के केतु।
किसी सबल कर के द्वारा ही बाँधा गया सिन्धु में सेतु।
दुर्बल छोटे जीव बड़े सबलों के बनते हैं आहार।
दिखलाते हैं जल में थल में प्रतिदिन ऐसे दृश्य अपार।
तनबल जनबल धनबल विद्याबुद्धिबलादिक का सम्मान।
कहाँ नहीं कब हुआ, सब जगह ए ही माने गये महान।
जीवनमय है सबल पुरुष, जीवन-विहीन है निर्बल लोक।
निर्बलता है तिमिर, सबलता है वसुधातल का आलोक ।१।

[१४]

अनर्थ-मूल स्वार्थ

स्वार्थ ही है अनर्थ का मूल।

औरों का सर्वस्व-हरण कर कब उसको होती है शूल।
तबतक सुत सुत है वनिता वनिता है उनसे है बहु प्यार।
स्वार्थदेव का उनके द्वारा जबतक होता है सत्कार।
अन्तर पड़े चली दारा सुत की ग्रीवा पर भी तलवार।
कटी भाइयों की भी बोटी, हुई पिता पर भी है वार।
अवलोकन के लिये अन्य का दुख वह होता है जन्मांध।
तोड़ा करता है उसका हठ-प्लावन नीति-नियम का बाँध।
कोई कटे पिटे लुट जावे छिने किसी के मुँह का कौर।
किसी का कलेजा निकले या जाय रंक बन जन-सिरमौर।
मसल जाय लालसा किसी की, किसी शीश पर हो पविपात।
किसी लोकपूजित के उर में लगे किसी पामर की लात।
इन बातों की कुछ भी परवा उसने किसी काल में की न।
तड़प-तड़पकर कोई चाहे बने विना पानी का मीन।
सौ परदों में छिपकर भी करता रहता है अपना काम।
अवसर पर सब सद्भावों से वह बदला करता है नाम।
छल-प्रपंच का वह पुतला है, वह पामरता की है मूर्त्ति!
अधम कौन उसके समान है, वह है सब पापों की पूर्त्ति।

भरी व्यंजनों से होती है उसकी परसी थाली।
कैसी ही हो, किन्तु बहुत ही है वह भोलीभाली ।१।

[१३]

बल

विश्व में है बल ही बलवान।
कौन पूछता है अबलों को, सबलों का है सकल जहान
जल में, थल में, विशद गगन में एकछत्र है उनका राज
सफल सुसेवित सम्मानित है उनका उन्नत प्रबल समाज
होते हैं विलोप पल-भर में अगणित ताराओं के ओक।
प्रभा-हीन बनता है शशधर रवि का तेजः-पुंज विलोक।
विभावरी तजती है विभुता, उज्ज्वल हो जाता है व्योम।
दिनमणि का प्रताप-बल देखे विदलित होता है तमतोम।
हुई धरा शासित सबलों से, नभ में उड़े विजय के केतु।
किसी सबल कर के द्वारा ही बाँधा गया सिन्धु में सेतु।
दुर्बल छोटे जीव बड़े सबलों के बनते हैं आहार।
दिखलाते हैं जल में थल में प्रतिदिन ऐसे दृश्य अपार।
तनबल जनबल धनबल विद्याबुद्धिबलादिक का सम्मान।
कहाँ नहीं कब हुआ, सब जगह ए ही माने गये महान।
जीवनमय है सबल पुरुष, जीवन-विहीन है निर्बल लोक।
निर्बलता है तिमिर, सबलता है वसुधातल का आलोक ।१।

[१४]

अनर्थ-मूल स्वार्थ

स्वार्थ ही है अनर्थ का मूल।

औरों का सर्वस्व-हरण कर कब उसको होती है शूल।

तबतक सुत सुत है वनिता वनिता है उनसे है बहु प्यार।

स्वार्थदेव का उनके द्वारा जबतक होता है सत्कार।

अन्तर पड़े चली दारा सुत की ग्रीवा पर भी तलवार।

कटी भाइयों की भी बोटी, हुई पिता पर भी है वार।

अवलोकन के लिये अन्य का दुख वह होता है जन्मांध।

तोड़ा करता है उसका हठ-प्लावन नीति-नियम का बाँध।

कोई कटे पिटे लुट जावे छिने किसी के मुँह का कौर।

किसी का कलेजा निकले या जाय रंक बन जन-सिरमौर।

मसल जाय लालसा किसी की, किसी शीश पर हो पविपात।

किसी लोकपूजित के उर में लगे किसी पामर की लात।

इन बातों की कुछ भी परवा उसने किसी काल में की न।

तड़प-तड़पकर कोई चाहे बने बिना पानी का मीन।

सौ परदों में छिपकर भी करता रहता है अपना काम।

अवसर पर सब सद्भावों से वह बदला करता है नाम।

छल-प्रपंच का वह पुतला है, वह पामरता की है मूर्त्ति!

अधम कौन उसके समान है, वह है सब पापों की पूर्त्ति।

किन्तु जगत के प्राणिमात्र के उर पर है उसका अधिकार।
हो असार संसार पर वही है सारे सारों का सार।
बड़े-बड़े त्यागी अवलोके, देखा बहुत बड़ों का त्याग।
ऐसे मिले महाजन जिनमें हरि का था सच्चा अनुराग।
किन्तु स्वार्थ उनमें भी पाया, हाँ, बहु परवर्तित था रूप।
सरस सुधा से सिक्त हुआ था संसारी का नीरस पूप।
जीवन का सर्वस्व स्वार्थ है, बिना स्वार्थ का क्या संसार।
इसी लिये है प्राणिमात्र पर उसका बहुत बड़ा अधिकार।
किन्तु मानवी दुर्बलता का हुआ न उससे सद्व्यवहार।
इसी हेतु वह बना हुआ है अत्याचारों का आधार।
जिसका सृजन हुआ करने को सारे जीवों का उपकार।
बहुत दिनों से बना हुआ है वही अनर्थों का आगार।
प्रकृति-क्रियाएँ हैं रहस्यमय, अद्भुत है भव-पारावार।
मनुज पार पा सका न उसका यद्यपि हुआ प्रयत्न अपार।

[१५]

स्वार्थपरता

स्वार्थपरता है पामरता।

यह है सत्य तो कहेंगे हम किसे कार्य-तत्परता।
नाना बाधाएँ हैं सम्मुख, भय-संकुल है धरती।
विविध असुविधाएँ आ-आकर सुविधाएँ हैं हरती।

जो उनका प्रतिकार न होगा, कार्य सिद्ध क्यों होगा।
यत्न ज्ञात हो तो कोई दुख क्यों जायगा भोगा।
दुरुपयोग है बुरा सदा, है सदुपयोग उपकारी।
कुपथ त्यागकर सतत सुपथ का बने मनुज अधिकारी।
स्वार्थ रहेगा जबतक समुचित निन्द्य बनेगा कैसे।
पर न कनक-मुद्रा कहलायेंगे ताँबे के पैसे। १।

[१६]

दानव

पापी है वह माना जाता।
कर अपकार कुपथ पर चल जो पाप-परायणता है पाता।
जो है विविध प्रपंच-विधाता जो है मूर्त्तिमान मायावी।
जिसकी मति है लोक-ध्वंसिनी, जिसका मद है शोणित-स्रावी।
अहंभाव जिसका है यम-सा, जिसके कौशल हैं पवि-जैसे।
नीति नागिनी-सी है जिसकी उसमें है मानवता कैसे।
कौन उसे मानव मानेगा जिसे काल कहती है जनता।
दानव अन्य है न, दानवता कर मानव है दानव बनता।१।

[१७]

नरता और पशुता

उस नरता से पशुता भली।
विधि-विडम्बना से जो पामरता पलने में पली।

पशुता ने कब नरता की-सी टेढ़ी चालें चली।
कब उसके समान ही वह कुत्सित ढंगों में ढली।
नरता दुर्मति-ज्वालाओं में जैसी जनता जली।
उसके भय से पड़ी जनपदों में जैसी खलबली।
जैसी उसने रोकी भयभीतों की रक्षित गली।
वैसी की है कब पशुता ने, वह कब भव को खली।
नरता लाई बला लोक पर दे-दे मिसरी-डली।
पशुता से यों भोली जनता कहाँ गई कब छली।
पशुता में वह शक्ति कहाँ, हों पास भले ही बली।
नरता-दर्पों से वसुन्धरा गई नहीं कब दली।१।

[१८]

जीव का जीवन जीव

जीवों का जीवन है जीव।
यह जीवन-संग्राम जगत का है कौतूहल-जनक अतीव।
जल-थल-अनल-अनिल में नभ में होता रहता है दिन-रात।
कोटि-कोटि जीवों का पल-पल कोटि-कोटि जीवों से घात।
छोटे-छोटे कीट बड़े कीटों के बनते हैं आहार।
बड़े-बड़े कीटों को खाते रहते हैं खग-वृन्द अपार।
निर्बल खग को पकड़-पकड़कर पलते हैं सब सबल सचान।
पशु-समूह में भी मिलता है विधि का यही विचित्र विधान।

बड़ी मछलियाँ छोटी मछली को खा जाती हैं तत्काल।
बड़ी मछलियों को लेता है मकर उदर में अपने डाल।
ऐसे अद्भुत दृश्य अनेकों दिखलाता है वारिधि-अंक।
वह सब काल बना रहता है महाकाल का प्रिय पर्यङ्क।
बड़े-बड़े विकराल जीव का होता है पल-भर में लोप।
उसको उदरसात् करता है किसी प्रबल का महाप्रकोप।
मनुज-उदर है किसी पयोनिधि से भी वृहत् और गम्भीर।
जिसमें समा सके हैं जग के सभी जीव धर विविध शरीर।
स्वजातीय को भी पामर नर खा जाता है सर्प-समान।
इतर प्राणियों-सा है वह भी, बने भले ही ज्ञान-निधान।
बलवानों की है वसुन्धरा, बलवानों का है संसार।
निर्बल मिटते हैं, होती है सदा सबल की जय-जयकार।
प्रकृति-नटी के रङ्गमंच के सकल दृश्य हैं बड़े विचित्र।
कोई नहीं समझ पाता है उसके चित्रित चित्र चरित्र।१।

[१९]

जगत-जंजाल

हैं भव-जाल जगत-जंजाल।
भूलभुलैयाँ की-सी उसकी भूल-भरी है चाल।
नाना अवसर विविध परिस्थिति बाधाएँ विकराल।
सदा सामने ला देती हैं परम अवांछित काल।

विविध प्रकृतियों के मानव देते हैं झंझट डाल।
कोप न होगा क्यों वैरी को देख बजाते गाल।
है वह पामर जो न सके अपना सर्वस्व सँभाल।
सबसे अधिक विचारणीय है भव में भूति-सवाल।
होगा वह न अकण्टक जो पथ-कंटक सका न टाल।
वह असि-वार सहेगा जिसके पास न होगी ढाल।
विधि-प्रपंच-कृत गरल-सुधामय है वसुधा का थाल।
जटिल क्या, जटिलतम है जग के जंजालों का हाल।१।

[२०]

शार्दूल-विक्रीडित

व्याली-सी विष से भरी विषमता आपूरिता क्रोधना।
अन्धाधुन्ध-परायणा कुटिलता की मूर्त्ति व्याघ्रानना।
है अत्यन्त कठोर उग्र अधमा, है लोक-संहारिणी।
है दुर्दान्त नितान्त वज्र-हृदया स्वार्थान्धता-दानवी।१।
होती है मधुरा सुधा-सरसता से सिंचिता शोभना।
नाना केलि-निकेतना सुवसना शांता मनोज्ञा महा।
लीला लोल तरंगिता उदधि-सी चिन्तांकिता आकुला।
है सांसारिकता महान गहना मोहान्धता-आवृता।२।
कांक्षा है अनुरक्त भक्त जन को सद्भक्ति या मुक्ति की।
ज्ञानी को बहु ज्ञान की, विबुध को लोकोत्तरा बुद्धि की।

त्यागी को अनुभूत त्याग-सुख की, योगीन्द्र को सिद्धि की।
है सांसारिकता न स्वार्थ-रहिता, निस्स्वार्थता है कहाँ।३।
मैं हूँ ब्रह्म-समान व्याप्त सबमें, हूँ सर्वलोकेश्वरी।
हूँ उद्भूत समस्त भूति खनि, हूँ सर्वार्थ की साधिका।
हूँ सारी वसुधा-विभूति-जननी, हूँ शक्ति-संचारिणी।
है सांसारिकता पुकार कहती, मैं स्वार्थसर्वस्व हूँ।४।
होती है सुख-कामनातिप्रबला है लालसा-लोलुपा।
प्यारे हैं भव-भोग, मुग्ध करती है भूयसी भूतियाँ।
तो भी है वह प्रेम, प्रेम ? जिसमें है इन्द्रियासक्तता।
तो क्या हैं हितपूर्त्तियाँ यदि बनीं वे स्वार्थ की मूर्त्तियाँ।५।
सारे धर्म - समाज भूमितल के जो दंभसर्वस्व हैं।
पाते हैं जिनमें महाविषमता जो द्वेष-उन्मेष हैं।
जो हैं गौरव गर्व ईति जिनमें है वृत्ति - उन्मत्तता।
क्या वे हैं परमार्थ - मूर्त्ति जिनमें स्वार्थान्धता है भरी।६।
उत्फुल्ला सरसा नितान्त मधुरा शान्ता मनोज्ञा महा।
नाना भाव-निकेतना विविधता आधारिता व्यंजिता।
हो अम्भोधि - समान वैभवमयी हो व्योम-सी विस्तृता।
है सांसारिकता विहार करती सर्वत्र संसार में।७।
बातें हों मन की मिले सफलता सम्पत्ति स्वायत्त हो।
पूरी हो प्रिय कामना, सुगमता से सिद्धियाँ प्राप्त हों।

वाधाएँ सब काल वाधित वनें, हो वैरिता वंचिता।
ए हैं मानव की नितान्त रुचिरा स्वाभाविकी वृत्तियाँ।८।
क्या खाये-पहने करे स्वहित क्यों मुद्रा कमाये न जो।
जायेगा लुट जो न वुद्धि-वल से टाले वलाएँ टलीं।
होगा रक्षित भी न ईति अथवा दुर्नीतियों से दवे।
संसारी फिर क्यों न जन्म जग में ले स्वार्थ-सर्वस्व हो।९।
वे हैं धन्य परार्थ त्याग करते जो लोग हैं स्वार्थ का।
ऐसे हैं कितने, परन्तु उनका तो त्याग ही स्वार्थ है।
होता है परमार्थ पूत उसमें है भूरि स्वर्गीयता।
तो भी क्या परमार्थ सार्थक नहीं जो अर्थ है स्वार्थ में।१०।
कोई है जग में भला न, यह तो कोई कहेगा नहीं।
संसारी फिर भी प्रमत्त रहता है स्वार्थ की सिद्धि में।
कच्चे काम पड़े सगे वन गये, सच्चे न सच्चे रहे।
देखा जो दृग खोल बोल सुन के तो ढोल में पोल थी।११।
हैं ऐसे जन भी हुए जगत में जो त्याग-सर्वस्व थे।
देवों से अति पूत दिव्य जिनकी हैं मानवी कीर्त्तियाँ।
जाँचा तो उनकी असंख्य जन में संख्या गिनी ही मिली।
लाखों में कुछ लोग पुण्यबल से माने महात्मा गये।१२।
ज्ञाता वैदिक मन्त्र के प्रथमतः, धाता धरा-धर्म के।
नाना मान्य महर्षि विज्ञ मुनि से मन्वादि से दिव्य-धी।

मेधावी कपिलादि से विबुधता-सर्वस्व व्यासादि से।
पृथ्वी ने कितने जने सुअन हैं उद्बुद्ध सिद्धार्थ-से।१३।
मूसा - से जरदश्त - से अरब के नामी नबी - से सुधी।
प्लेटो धर्मधुरीण-से कुछ गिने चीनादि के सिद्ध-से।
ऐसे ही कुछ अन्य धर्मगुरु - से धर्माग्रणी व्यक्ति से।
हैं अत्यल्प हुए सदैव महि में ईसादि-से सद्व्रती।१४।
है अध्यात्म महा पुनीत, तम में है तेज के पुंज-सा।
है विज्ञान विकासमान नभ का पीयूषवर्षी शशी।
है स्वार्थान्ध-विलोचनांजन तथा सद्भाव-अंभोधि है।
है आधार त्रिलोक-शान्ति-सुख का सद्बोध-सर्वस्व है।१५।
होती है जब पाप-पूरित धरा सद्वृत्ति उत्पीड़िता।
पाती है पशुता प्रसार बनती स्वार्थान्धता है कशा।
होता है जब नग्न नृत्य दनुजों के दानवी कृत्य का।
आता है तब मही-मध्य बहुधा कोई महा-दिव्य-धी।१६।
होता है वह देश-काल प्रतिभू सत्याग्रही संयमी।
देता है बहु दिव्य ज्योति जगती के प्राणियों में जगा।
लेता है बिगड़ी सुधार, करता उद्धार है धर्म का।
पाती है वसुधा अलौकिक सुधा सद्बोध-सर्वस्व से।१७।
कोई हो अवतार दिव्य जन हो या हो महा सात्त्विकी।
शिक्षा हो उसकी महा हितकरी, हो उक्ति लोकोत्तरा।

होंगे क्या तब भी सभी रुचिरधी, त्यागी, तपस्वी, यती ।
क्या होगी तब भी समस्त वसुधा हो शान्त स्वर्गोपमा ।१८।
है स्वाभाविक कामना स्वहित की, है वित्त-वांछा बली ।
प्राणी की सुख-लालसा सहज है, है चित्त स्वार्थी बड़ा ।
पंजे में इनके सदा जग रहा, कैसे भला छूटता ।
वे हैं विश्वजनीन भूति यदि ए संसार-सर्वस्व हैं ।१९।
क्या है मुक्ति ? यथार्थ ज्ञान इसका है प्राणियों को कहाँ ।
कोई मानव ही रहस्य इसका है जान पाता कभी ।
चिन्ता है किसको नहीं उदर की है जीविका जीवनी ।
प्यारी है उतनी न मुक्ति जितनी है भुक्ति भू की प्रिया ।२०।
आँखें हैं छवि-कांक्षिणी, श्रवण है लोभी सदालाप का ।
जिह्वा है रस-लोलुपा, सुरभि की है कामुका नासिका ।
सारी प्रेय विभूति को विषय को हैं इन्द्रियाँ चाहती ।
जाता है बन योग रोग, किसको है भोग भाता नहीं ।२१।
तो है कौन विचित्र बात मन में जो है भरी मत्तता ।
है आश्चर्य नहीं मनुष्य बनता जो स्वार्थ - सर्वस्व है ।
जो है जीव ममत्व से भरित तो क्या है हुआ अन्यथा ।
क्या है भौतिकता न भूत-चय की स्वाभाविकी प्रक्रिया ।२२।
होती है तम-मज्जिता मलिनता-आपूरिता ज्यों तमा ।
त्यों ही मानव की प्रवृत्ति रहती है स्वार्थ से आवृता ।

जैसे तारक से मयंक-कर से पाती निशा है प्रभा।
त्यों ही है वर बोध से नृमति भी है दिव्य होती कभी।२३।
आचार्यों महिमा-महान पुरुषों से प्राप्त सद्वृत्तियाँ।
होती हैं उपकारिका हितकरी सद्बोध-उत्पादिका।
वे हैं आकर यथाकाल करते उद्बुद्ध संसार को।
तो भी स्वार्थ-प्रवृत्ति-वृत्ति जनता है त्याग पाती नहीं।२४।
है आवश्यक वस्तु व्यस्त रखती देती व्यथा है क्षुधा।
बाधा है सब काल व्याधि बनती है वैरिता बेधती।
है दोनों कर बाँधती विवशता, है व्यर्थता बाँट में।
प्राणी स्वार्थनिबद्ध दृष्टि-सुपथों में विस्तृता क्यों बने।२५।
ऐसे हैं महि में मिले सुजन भी जो त्याग की मूर्त्ति थे।
लोगों का हित था निजस्व जिनका जो थे परार्थी बड़े।
ए लोकोत्तर धर्मप्राण जन ही भू दिव्य आदर्श हैं।
होते हैं अपवाद, लोक कितने ऐसे मिले लोक में।२६।
औरों का मुँह-कौर छीन, भरते हैं पेट भूखे हुए।
लोगों की विविधा विभूति हरते हैं, भीति होती नहीं।
होते हैं बहु लोग तृप्त बहुधा पीके सगों का लहू।
होवे क्यों न अधर्म, स्वार्थ इतना है धर्म प्यारा किसे।२७
माता हैं महि देवता, पर हुए भीता कलंकांक से।
हाथों से अपने अबोध सुत का है घोंट देती गला।

जो थे देव-समान, संकट पड़े, वे दानवों-से बने।
कोई हो उपलब्ध आत्महित को है त्याग पाता नहीं।२८।
वेदों की भव-वन्दनीय श्रुति को शास्त्रादि के मर्म को।
सन्तों की शुचि उक्ति को जगत के सद्धर्म के मन्त्र को।
जाती है तब भूल भक्ति-पथ को विज्ञान की वृत्ति को।
होती है जब मत्त आत्मरति की वांछा बलीयान हो।२९।
कानों ने कलिकाल के कब सुनी ऐसी महागर्जना।
हो पाई कब यों कठोर रव से शब्दायमाना दिशा।
हो पाया किस देश मध्य उतना कोलाहलों को बढ़ा।
होता है अब वज्रघोष जितना भू में अहंभाव का।३०।
सारे भूतल में समुद्र-जल में युद्धाग्नि-ज्वाला जगा।
ओले से नभ-यान से द्रव-भरे गोले गिरा प्रायशः।
नाना दानवता - प्रपञ्च-वलिता दुर्वृत्तियों को बढ़ा।
है भूलोक-विलोप-साधन-व्रती लिप्सा अहंभाव की।३१।
नाना नूतन अस्त्र-शस्त्र तुपकें गोले बड़े विप्लवी।
हैं संहारक कोटि-कोटि जन के कल्पान्त के अर्क-से।
होते हैं उनसे विनष्ट नगरों के वृन्द तत्काल ही।
है विज्ञान-विभूति आज वसुधा-उद्भूति-विध्वंसिनी।३२।
छाये हैं बहु व्योमयान नभ में जो काल - से क्रूर हैं।
हो-हो हुंकृत ओत-प्रोत निधि हैं संग्राम के पोत से।

पृथ्वी में उन्मादपूर्ण बजती है द्वंद्व की दुन्दुभी।
प्राय: है अब भ्रान्ति क्रांति बनती, भूशान्ति भागे कहाँ।३३।

अत्याचार-रता कठोर-हृदया है रक्तपानोत्सुका।
है संहार-परायणा पवि-समा मांसाशिनी पापिनी।
नाना मानव-वंश-ध्वंस-निरता निन्द्या कृतान्तोपमा।
है कृत्या सम कूटनीति-कटुता-आपूरिता मेदिनी।३४।

है पाथोधि विभूति दान करता स्वायत्त है सिंधुजा।
पृथ्वी है वशवर्त्तिनी अनुगता है दामिनी शासिता।
पंखा है झलता समीर, मुसका देता सुधा है शशी।
फूला है बन भाव-मत्त, भव को, भूला अहंभाव है।३५।

होवे जो हित पाप से वह उसे तो पुण्य है मानता।
अत्याचार किये मिले यदि धरा तो क्या सदाचार है!
जो हो लाभ किये कुवृत्ति तब क्यों सद्वृत्ति सद्वृत्ति है।
है सांसारिकता न ईश्वर-रता, है स्वार्थसिद्धिप्रदा।३६।

ज्ञाता होकर विश्वव्याप्त विभु के जो हैं बने पातकी।
आँखें जो नर की बचा प्रभु-दृगों में धूल हैं झोंकते।
जो हो आस्तिक मूर्त्तिमान बनते हैं नास्तिकों के चचा।
वे हैं ईश्वर मानते, मन भला क्यों मान लेगा इसे।३७।

होती है कब भीति लोकपति की काटे करोड़ों गले।
आता है कब ध्यान पूत प्रभु का संसार को पीसते।

काँपा कौन नृशंस सर्वगत के सर्वाश्रितों को सता।
हारी ईश्वरसिद्धि कर्मपथ में आस्वार्थ की सिद्धि से।३८।
हृद्या ईश्वरता हुई न इतनी हो मुक्ति से मंडिता।
पा के दिव्य मनोज्ञ मूर्त्ति जितनी भाई अहंमन्यता।
प्यारी हैं उतनी कभी न लगतीं आध्यात्मिकी वृत्तियाँ।
भाती है जितनी विभूति-रत को भू भौतिकी प्रक्रिया।३९।
प्राणी है अनुरक्त भक्त जितना संसार-सम्पत्ति का।
प्यारी है उतनी उसे न तपसा-सम्बन्धिनी साधना।
भोगेच्छा जितनी रुची, प्रिय लगी वांछा सुखों की यथा।
वैसी ही कब त्यागवृत्ति नर की आकांक्षिता हो सकी।४०।
होता है पर-कार्य पूत, जनता का श्रेय सत्कर्म है।
तो भी त्राण-निमित्त आत्महित का उद्बोध ही मुख्य है।
होवे मुक्ति महा विभूति, फिर भी है भुक्ति ही जीवनी।
सच्चा हो परलोक, किन्तु मिलता आलोक है लोक में।४१।
होता देख महा अनर्थ बनता कोई परार्थी नहीं।
होते भी अपकार कौन करता सत्कार है अन्य का।
मर्यादा प्रिय है किसे न, किसको है नाम प्यारा नहीं।
सत्ता है किसकी न भूति, किसको भाती महत्ता नहीं।४२।
बाधा की हरती अबाध गति है धी धीरता से भरी।
वैरी के बल को विलोप करती हैं वीरता-वृत्तियाँ।

देती है कर छिन्न-भिन्न उसको सत्ता-महत्ता दिखा।
दुष्टों की पशुता-प्रवृत्ति सहती है शक्तिमत्ता नहीं।४३।
जोड़े क्यों हित क्रुद्ध क्रूर नर से पा प्रार्थिता शक्तियाँ।
मोड़े क्यों मुख, रुष्ट दुष्ट जन को कोड़े लगाये न क्यों।
छोड़े क्यों छल-छद्म-सद्म खल को दे क्यों न धुर्रे उड़ा।
तोड़े क्यों न कृतान्त-तुल्य धन के दुर्दान्त के दन्त को।४४।
जैसी है त्रिगुणात्मिका त्रिगुण से है वैसि ही शासिता।
धू-धू है जलती प्रफुल्ल बनती होती सुधासिक्त है।
है दिव्या मधुरा महान सरसा स्वार्थान्धता से भरी।
है सांसारिकता रहस्य-भरिता वैचित्र्य से आवृता।४५।

दशम सर्ग

स्वर्ग

सुरपुर

[१]

स्वर्ग है उर-अंभोज-दिनेश।
भाव-सिंहासन का अवनीप।
सदाशा-रजनी मंजु मयंक।
निराशा-निशा प्रदीप्त प्रदीप।१।

यदि मरण है तम-तोम समान।
स्वर्ग तो है अनुपम आलोक।
प्रकाशित उससे हुआ सदैव।
हृदय-तल परम मनोरम ओक।२।

उरों में भर बहु कोमल भाव।
सजाती हैं व्यंजन के थाल।
कराती है कितने प्रिय कर्म।
कामना सुरपुर की सब काल।३।

पुष्पवर्षण होता है ज्ञात।
अस्त्रशस्त्रों का प्रबल प्रहार।
बनाता है रण-भू को कान्त।
वीर का स्वर्गलाभ-संस्कार।४।

खुदे सरवर वन सरस नितान्त।
प्रकट करते हैं किसकी प्यास।
कलस मन्दिर के कान्ति-निकेत।
स्वर्ग-रुचि के हैं रुचिर विकास।५।

नहीं जो होता जग को ज्ञात।
मंजुतम स्वर्गवास का मर्म।
बाँधता क्यों कृतज्ञता पाश।
न हो पाते पितरों के कर्म।६।

जो नहीं होती उसकी चाह।
सुकृति की क्यों होती उत्पत्ति।
बनाती किसे नहीं उत्कंठ।
अलौकिक स्वर्गलोक-सम्पत्ति।७।

हुआ कब किसी काल में म्लान।
सका भ्रम-भौंरा उसको छू न।
सौरभित है उससे संसार।
स्वर्ग है परम प्रफुल्ल प्रसून।८।

दशम सर्ग

स्वर्ग

सुरपुर

[१]

स्वर्ग है उर-अंभोज-दिनेश।
भाव-सिंहासन का अवनीप।
सदाशा-रजनी मंजु मयंक।
निराशा-निशा प्रदीप्त प्रदीप।१।

यदि मरण है तम-तोम समान।
स्वर्ग तो है अनुपम आलोक।
प्रकाशित उससे हुआ सदैव।
हृदय-तल परम मनोरम ओक।२।

उरों में भर बहु कोमल भाव।
सजाती हैं व्यंजन के थाल।
कराती है कितने प्रिय कर्म।
कामना सुरपुर की सब काल।३।

पुष्पवर्षण होता है ज्ञात।
अस्त्रशस्त्रों का प्रबल प्रहार।
बनाता है रण-भू को कान्त।
वीर का स्वर्गलाभ-संस्कार ।४।

खुदे सरवर वन सरस नितान्त।
प्रकट करते हैं किसकी प्यास।
कलस मन्दिर के कान्ति-निकेत।
स्वर्ग-रुचि के हैं रुचिर विकास।५।

नहीं जो होता जग को ज्ञात।
मंजुतम स्वर्गवास का मर्म।
बाँधता क्यों कृतज्ञता पाश।
न हो पाते पितरों के कर्म।६।

जो नहीं होती उसकी चाह।
सुकृति की क्यों होती उत्पत्ति।
बनाती किसे नहीं उत्कंठ।
अलौकिक स्वर्गलोक-सम्पत्ति।७।

हुआ कब किसी काल में म्लान।
सका भ्रम-भौंरा उसको छू न।
सौरभित है उससे संसार।
स्वर्ग है परम प्रफुल्ल प्रसून।८।

[२]

सुख गले लगता रहता है।
फूल सिर पर बरसाता है।
देवतों को अभिमत देते।
मोद फूला न समाता है।१।

नहीं चिन्ता चिन्तित करती।
चित्त चिन्तामणि बनता है।
नहीं आँसू आते, लोचन।
प्रेम-मुक्ताफल जनता है।२।

जरा है पास नहीं आती।
सदा ही रहता है यौवन।
दमकता ही दिखलाता है।
देवतों का कुन्दन-सा तन।३।

किसी को रोग नहीं लगता।
दुख नहीं मुख दिखलाता है।
अमर तो अमर कहाते हैं।
मर नहीं कोई पाता है।४।

असुविधा कान्त कर्मपथ में।
भला कैसे काँटा बोती।

सर्व निधियों के निधि सुर हैं।
सिद्धि है करतल-गत होती।५।

जीविका के जंजालों में।
नहीं उनका जीवन फँसता।
हुन बरसता है सदनों में।
करों में पारस है बसता।६।

कामना पूरी होती है।
रुचिर रुचि हो-हो खिलती है।
कल्पतरु-फल वे खाते हैं।
सुधा पीने को मिलती है।७।

चारु पावक द्वारा विरचित।
देवतों का है पावन तन।
पूत भावों से प्रतिबिम्बित।
परम उज्ज्वल मणि-सा है मन।८।

महीनों भूख नहीं लगती।
अनुगता निद्रा रहती है।
वासना में उनकी सरसा।
सुरसरी-धारा बहती है।९

स्वर्ग पर ही अवलम्बित है।
सुरगणों का गौरव सारा।

देव-कुल दिव्य भूतिबल से।
स्वर्ग है भूतल से न्यारा। १०।

[३]

कहाँ सदा उत्ताल तरंगित सुख-पयोधि दिखलाता है।
महाशान्ति-रत्नावलि-माला जिससे सुरपति पाता है।
कहाँ प्रमोद-प्रसून-पुंज इतना प्रफुल्ल बन जाता है।
जिसे विलोकि मानसर-विलसित विकच सरोज लजाता है। १।
कहाँ अप्सरा दमक दिखाकर द्युति दिगन्त में भरती है।
स्वरलहरी से मुग्ध बनाकर किसका हृदय न हरती है।
उसकी तानें राग-रागिनी को करती हैं मूर्त्तिमती।
जहाँ-तहाँ नर्त्तन-रत रह जो बन जाती हैं अरुन्धती। २।
कहाँ बजाकर वीणा तुम्बुरु सुधा प्रवाहित करता है।
कहाँ गान कर हाहा हूहू ध्वनि में गौरव भरता है।
उनके तालों स्वरों लयों से जो विमुग्धता होती है।
परमानन्द-वीज वह अभिरुचि शुचि अवनी में बोती है। ३।
जिसकी हरियाली नीलम के मुँह की लाली रखती है।
नभ-नीलिमा देखकर जिसको निज कल कान्ति परखती है।
जिसके कुसुम नहीं कुम्हलाते, म्लान नहीं दल होता है।
कहाँ विलस वह फलद कल्पतरु वीज विभव का बोता है।

जिसका दर्शन सकल दिव्यता-दर्शन का फल देता है।
जिसका स्पर्श पुण्य पथ की बहु बाधाएँ हर लेता है।
विविध सिद्धि-साधना-सहचरी जिसकी पयमय छाती है।
कहाँ सर्वदा वह चिर-कामद कामधेनु मिल पाती है। ५।
जिसकी कुसुमावलि कुसुमाकर का भी चित्त चुराती है।
जिसकी ललित लता ललामता मूर्त्तिमती कहलाती है।
वृन्दारक तरुवृन्द देख जिसके फूले न समाते हैं।
कहाँ लोक-अभिनन्दन नन्दन-वन-जैसा वन पाते हैं। ६।
जो है प्रकृति कान्त कर-लालित, छवि जिसका पद धोती है।
जिसके कलित अंक में विलसे उज्ज्वलतम 'मणि' होती है।
सकल विश्व सौन्दर्य सदा जिसकी विभूति का है सेवी।
अमरावती-समान कहाँ पर देखी दिव्य मूर्त्ति देवी।
भरित अलौकिक बातों से है, स्वरित उच्चतम स्वर से है।
दमक रहा है परम दिव्य बन ललितभूत लोकोत्तर है।
जगतीतल-शरीर का उर है भव-विभूतियों से पुर है।
ऐसा कौन सरस सुन्दर है, सुरपुर-जैसा सुरपुर है।८।

[४]

है जहाँ सुखों का डेरा।
किस तरह वहाँ दुख ठहरें।

देव-कुल दिव्य भूतिबल से।
स्वर्ग है भूतल से न्यारा। १०।

[३]

कहाँ सदा उत्ताल तरंगित सुख-पयोधि दिखलाता है।
महाशान्ति-रत्नावलि-माला जिससे सुरपति पाता है।
कहाँ प्रमोद-प्रसून-पुंज इतना प्रफुल्ल बन जाता है।
जिसे विलोकि मानसर-विलसित विकच सरोज लजाता है। १।
कहाँ अप्सरा दमक दिखाकर द्युति दिगन्त में भरती है।
स्वरलहरी से मुग्ध बनाकर किसका हृदय न हरती है।
उसकी तानें राग-रागिनी को करती हैं मूर्त्तिमती।
जहाँ-तहाँ नर्त्तन-रत रह जो बन जाती हैं अरुन्धती। २।
कहाँ बजाकर वीणा तुम्बुरु सुधा प्रवाहित करता है।
कहाँ गान कर हाहा हूहू ध्वनि में गौरव भरता है।
उनके तालों स्वरों लयों से जो विमुग्धता होती है।
परमानन्द-वीज वह अभिरुचि शुचि अवनी में बोती है। ३।
जिसकी हरियाली नीलम के मुँह की लाली रखती है।
नभ-नीलिमा देखकर जिसको निज कल कान्ति परखती है।
जिसके कुसुम नहीं कुम्हलाते, म्लान नहीं दल होता है।
कहाँ विलस वह फलद कल्पतरु वीज विभव का बोता है।

जिसका दर्शन सकल दिव्यता-दर्शन का फल देता है।
जिसका स्पर्श पुण्य पथ की बहु बाधाएँ हर लेता है।
विविध सिद्धि-साधना-सहचरी जिसकी पयमय छाती है।
कहाँ सर्वदा वह चिर-कामद कामधेनु मिल पाती है। ५।
जिसकी कुसुमावलि कुसुमाकर का भी चित्त चुराती है।
जिसकी ललित लता ललामता मूर्त्तिमती कहलाती है।
वृन्दारक तरुवृन्द देख जिसके फूले न समाते हैं।
कहाँ लोक-अभिनन्दन नन्दन-वन-जैसा वन पाते हैं। ६।
जो है प्रकृति कान्त कर-लालित, छवि जिसका पद धोती है।
जिसके कलित अंक में विलसे उज्ज्वलतम 'मणि' होती है।
सकल विश्व सौन्दर्य सदा जिसकी विभूति का है सेवी।
अमरावती-समान कहाँ पर देखी दिव्य मूर्त्ति देवी।
भरित अलौकिक बातों से है, स्वरित उच्चतम स्वर से है।
दमक रहा है परम दिव्य बन ललितभूत लोकोत्तर है।
जगतीतल-शरीर का उर है भव-विभूतियों से पुर है।
ऐसा कौन सरस सुन्दर है, सुरपुर-जैसा सुरपुर है। ८।

[४]

है जहाँ सुखों का डेरा।
किस तरह वहाँ दुख ठहरें।

करती हैं विपुल विनोदित।
उठ-उठ विनोद की लहरें। १।

हैं लोग विहँसते हँसते।
या मंद-मंद मुसकाते।
है कोई खिन्न न होता।
सब हैं प्रसन्न दिखलाते। २।

औरों का विभव विलोके।
जो जाता है किसका जल।
है क्रोध कौन कर पाता।
है कहाँ कलह-कोलाहल। ३।

जो वचन कहे जाते हैं।
वे सब होते हैं तोले।
दिल में कड़वी बातों से।
पड़ पाते नहीं फफोले। ४।

हैं नहीं बखेड़े उठते।
है नहीं झगड़ता कोई।
हैं नहीं जगाई जाती।
जी की बुराइयाँ सोई। ५।

है अन्धाधुन्ध न मचता।
है किसे न प्यारा धन्धा।

पर मोह नहीं कर पाता।
परहित आँखो को अंधा। ६।

खिँच एँच-पेंच भँवरो से।
चक्करें नहीं खाता है।
पड़ लोभ-सिंधु में परहित-
बेड़ा न डूब जाता है। ७।

छल दम्भ द्रोह मद मत्सर।
सामने नहीं आते हैं।
दुर्भाव दिव्य भावों को।
मुख नहीं दिखा पाते हैं। ८।

कब अहंमन्यता ममता।
मायामय है बन जाती।
उनकी मननीय महत्ता।
सात्त्विक सत्ता है पाती।९।

दुख से कराहता कोई।
है कहीं नहीं दिखलाता।
हो विकल वेदनाओं से।
दृग वारि नहीं बरसाता।१०।

है काल नहीं कलपाता।
हैं त्रिविध ताप न तपाते।

आँसू आने से लोचन।
आरक्त नहीं बन पाते।११।
चित चोट नहीं खाते हैं।
मुँह नहीं किसी के सिलते।
चुभती लगती बातों से।
हैं नहीं कलेजे छिलते।१२।
कमनीय कीर्ति था कृति को।
है उज्ज्वलतम जिसका तन।
है मलिन नहीं कर पाता।
मैलेपन का मैलापन।१३।
सुर हैं सद्वृत्ति-विधाता।
सद्भाव - सदन के केतन।
सुरपुर है सहज समुज्ज्वल।
सात्विकता कान्त निकेतन।१४।

अमरावती

[५]

मणि-जटित स्वर्ण के मंदिर।
विधि को मोहे लेते हैं।
विधु को हैं कान्त बनाते।
दिव को आभा देते हैं।१।

हैं कनकाचल-से उन्नत ।
परमोज्ज्वल त्रिभुवन-सुन्दर ।
हैं विविध विभूति-विभूपित ।
दिव्यता-मूर्त्ति लोकोत्तर ।२।

उनके कल कलश अनेकों ।
हैं दिनमणि से द्युतिवाले ।
आलोक-पुंज पादप के ।
हैं विपुल विभामय थाले ।३।

चामीकर-दण्ड-विमण्डित ।
उड़ती उत्तुंग ध्वजाएँ ।
हैं कीर्त्ति उक्ति-कान्ता की ।
बहु लोलभूत रसनाएँ ।४।

सब हैं समान ही ऊँचे ।
हैं एक पंक्ति में सारे ।
नवज्योति-लाभ करते हैं ।
अवलोके लोचन-तारे ।५।

वे सब हैं स्वयंप्रकाशित ।
हैं स्वयं स्वच्छता-साधन ।
देखे उनकी पावनता ।
पावन हो जाते हैं मन ।६।

हैं लगे यंत्र वे उनमें।
जो हैं बहु काम बनाते।
या मधुर स्वरों से गा-गा।
श्रुति को हैं सुधा पिलाते।७।

मंजुल मणियों के गहने।
पहने मौक्तिक-मालाएँ।
देवतों सहित लसती हैं।
उनमें दिव की बालाएँ।८।

चाँदी-विरचित सब सड़कें।
हैं चारों ओर चमकती।
चाँदनी-चारुता में थीं।
दामिनी समान दमकती।९।

है हाट हाटकालंकृत।
है विपणि रत्नचय-भरिता।
जिसमें बहती रहती है।
पावन प्रमोदमय सरिता।१०।

था कहीं नहीं मैलापन।
थी नहीं मलिनता मिलती।
सब समय स्वच्छता सित हो।
थी वहाँ सिता-सी खिलती।११।

वन सुधा-धवल रह निर्मल।
हैं सकल सदन छवि पाते।
होकर भी परम पुरातन।
नूतनतम थे दिखलाते।१२।

थे दिव्य दिव्य से भी दिन।
थी विभावरी दिवसोपम।
दिव में प्रवेश-साहस कर।
तम बनता था उज्ज्वलतम।१३।

तज प्रचंडता बन संयत।
मृदु स्वर भर-भर कुछ कहता।
चल मंद-मंद हो सुरभित।
शीतल समीर है बहता।१४।

सित भानु भानु की किरणें।
हैं यथासमय आ जाती।
मिल कान्त तारकावलि से।
हैं दिव्य दृश्य दिखलाती।१५।

घन किसी समय जो घिरता।
तो सरस सुधा बरसाता।
मुक्ता करके ओलों को।
पद अलौकिकों का पाता।१६।

जब मंद - मंद रव करके ।
अति मधुर मृदंग बजाता ।
तब केलिमयी चपला का ।
नर्त्तन था समाँ दिखाता ।१७।

घन-अंक त्याग, आ नीचे ।
है मणिमाला बन जाती ।
या बिजली दिव-सदनों में ।
मंजुल झालरें लगाती ।१८।

थी प्रकृति परम अनुकूला ।
प्रतिकूल नहीं होती थी ।
पवि को प्रसून थी करती ।
हिम से रचती मोती थी ।१९।

सब ओर स्फूर्त्ति थी फैली ।
थी मोद-मग्नता लसती ।
बहती विनोद-धारा थी ।
थी उत्फुल्लता विहँसती ।२०।

अप्रतिहत - गति - अधिकारी ।
निज वेग-वारि-निधि - मज्जित ।
नभ-जल-थल-यान अनेकों ।
अति आरंजित बहु सज्जित ।२१।

जब उड़ते तिरते चलते।
किसको न चकित थे करते।
श्रुतिमधुर मनोहर मंजुल।
रव थे दिगंत में भरते।२२।

अवलोक अमरता-आनन।
था चित्त उल्लसित होता।
सहजात निरुजता का बल।
था बीज श्रेय का बोता।२३।

आनन्द-तरंगें उर में।
थीं शोक-विमुक्ति उठाती।
चिन्ता-विहीनता मन को।
थी वारिज विकच बनाती।२४।

हैं राग-रंग की उठती।
किस जगह अपूर्व तरंगें।
हैं कहाँ उमड़ती आती।
बादलों समान उमंगें।२५।

बहु हास-विलास कहाँ पर।
है निज उल्लास दिखाता।
आमोद-प्रमोद कहाँ आ।
परियों का परा जमाता।२६।

कर कान्त कलाएँ कितनी।
हैं मंद - मंद मुसकाती।
किस जगह देव-बालाएँ।
हैं दिव-दिव्यता दिखाती।२७।

भर पूत भावनाओं से।
आनन्द मनाती खिलती।
किस जगह देवताओं की।
हैं दिव्य मूर्त्तियाँ मिलती।२८।

हैं जहाँ न द्वन्द्व सताते।
है जहाँ दुख विमुख रहता।
क्यों वहाँ न रस रह पाता।
है जहाँ सुधारस बहता।२९।

लौकिक होके सब किसकी।
कह सके अलौकिक सत्ता।
अनुपम मन-वचन-अगोचर।
है अमरावती-महत्ता।३०।

नन्दन-वन

[६]

विविध रंग के विटप खड़े थे ऊँचा शीश उठाये।
पहने प्रिय परिधान मनोहर नाना वेश बनाये।

लाल-लाल दल लसित सकल तरु बड़े ललित थे लगते।
ललकित लोचन-चय को थे अनुराग-राग में रँगते।१।
हरित दलों वाले पादप थे जी को हरा बनाते।
याद दिलाकर श्यामल-तन की मोहन मंत्र जगाते।
पीला था नीला बन जाता, नीला बनता पीला।
रंग-विरंगे तरुओं की थी रंग-विरंगी लीला।२।
हरे-भरे सर्वदा दिखाते, सदा रहे फल लाते।
सुन्दर सुरभित सुमनावलि से वे थे गौरव पाते।
छवि विलोक कुसुमाकर इतना अधिक रीझ जाता है।
जिससे उनका साथ कभी वह त्याग नहीं पाता है।३।
कितने हैं कल-गान सुनाते, कितने वाद्य बजाते।
कितने पवन साथ क्रीड़ा कर कौतुक हैं दिखलाते।
कितने चमक-चमक बनते हैं ज्योति-पुंज के पुतले।
कितने प्रकृति-अंक के कहलाते हैं बालक तुतले।४।
कभी डालियाँ उनकी ऐसे प्रिय फल हैं टपकाती।
जिनको चख बरसों अमरों को भूख नहीं लग पाती।
उनके गिरे प्रसून गले का हार सदा बनते हैं।
ले-ले विमल वारि की बूँदें वे मोती जनते हैं।५।
लता लहलहाती ललामता मुखड़े की है लाली।
अपने पास लोक-मोहन की रखती है प्रिय ताली।

सदा प्रफुल्ल बनी रहती है, कभी नहीं कुम्हलाती।
उसकी कलित कीर्त्ति सब दिन सुर-ललनाएँ हैं गाती ।६।
उसकी लचक लोच कोमलता है कमाल कर देती।
मचल-मचलकर उसका हिलना है मन छीने लेती।
लपटी देख उसे तरुवर से सुरपुर की बालाएँ।
तल्लीनता कण्ठ की बनती हैं मंजुल मालाएँ।७।
सुमन सुनन्दन-वन-सुमनों की है महिमा मनहारी।
कमनीयता मधुरता उनकी है त्रिभुवन से न्यारी।
किसी समय जब सुन्दरता का है प्रसंग छिड़ जाता।
सबसे पहले नाम सुमन का तब मुख पर है आता।८।
धरा-कुसुम-कुल के देखे जब हुई धारणा ऐसी।
तब सोचें, नन्दन-वन की कुसुमावलि होगी कैसी।
उनका रूप देख करके है रूप रूप पा जाता।
उनकी छाया में 'वसुन्धरा-कुसुम' कान्ति है पाता।९।
तरह-तरह के कुसुमों की हैं अमित क्यारियाँ लसती।
निज सजधज-सम्मुख जो अवनी-सजधज पर हैं हँसती।
किसी कुसुम का अलबेलापन है बहु मुग्ध बनाता।
किसी कुसुम की कलित रंगतों में है मन रँग जाता।१०।
ए हैं वे प्रसून जो खिलकर म्लान नहीं होते हैं।
सौरभ-बीज जगत में जो सुरभित हो-हो बोते हैं।

आदर पाकर जो हैं सुरपति-शीश-मुकुट पर चढ़ते।
जो खिल-खिलकर भव-प्रमोद का पाठ सदा हैं पढ़ते।११।
देवपुरी उनके विकास से है विकसित हो पाती।
उनकी छटा देवबाला-तन की है छटा बढ़ाती।
वे हैं अनुरंजन-व्रत-रत रह दिवपति परम दुलारे।
वे हैं सुरसमूह के वल्लभ, सुरबाला के प्यारे।१२।
आनन्दित रह स्वयं और को हैं आनन्दित करते।
भीनी-भीनी महँक सदा वे त्रिभुवन में हैं भरते।
उनके द्वारा सद्भावों का व्यञ्जन हैं कर पाते।
वन्दित जन पर वृन्दारक हैं सदा फूल बरसाते।१३।
जड़ी-बूटियाँ ज्योतिमयी हैं सदा जगमगाती हैं।
तेजःपुंज कलेवर द्वारा तेजस्विता जताती हैं।
पा करके विचित्र फल-दल हैं अद्भुत दृश्य दिखाती।
दिव्य लोक में कर निवास हैं अधिक दिव्यता पाती।१४।
खिलीं अधखिलीं मिलीं तनिक-सा खिलीं खेल दिखलाये।
बदल रूप ललना से लालन हुई मन्द मुसकाये।
बन-बन कलित विकास क्रिया की कोमलतम पलिकाएँ।
कला दिखाती हो रहती हैं कलामयी कलिकाएँ।१५।
है कल्पना कल्पपादप की कल्पलता की न्यारी।
पर उनके पाने का नन्दन-वन ही है अधिकारी।

जिसमें नहीं अलौकिकता हो, जिसमें हो न महत्ता।
क्यों है वह स्वर्गीय न जिसमें हो सुरपुर की सत्ता।१६।

वह सदैव मुखरित रहता है खग-कुल-कलरव द्वारा।
कोमल मधुर स्वरों से बहती रहती है रस-धारा।
बहुरंगी विहंग जब चड़-चड़ स्वर्गिक गान सुनाते।
मोदमत्त वन तरु-तृण तक तब थे झूमते दिखाते।१७।

बजती कान्त करों से वीणा सुधामयी स्वर-लहरी।
नृत्य-गान अप्सरा - वृन्द का लय-तालों पर ठहरी।
सुर-समूह का वर विहार सुरबाला की क्रीड़ाएँ।
सकल विश्व-मानस-विमोहिनी भावमयी व्रीडाएँ।१८।

कूजित विहँग रँगीली तितली गुंजित अलि-मालाएँ।
कुंजों बीच बनी सोने की बड़ी दिव्य शालाएँ।
सुन्दर से सुन्दर विहार-थल दृश्य नितान्त मनोहर।
प्रकृति-रम्यता समय-सरसता लीलाएँ लोकोत्तर।१९।

हो-हो स्वर्ग-विभूति-विभूषित, हो दिव्यता-निमज्जित।
हो अनुमोदनीय सुख के सब सामानों से सज्जित।
बतलाती हैं उड़ा-उड़ा के कान्त कीर्त्ति के केतन।
वास्तव में सुविदित नन्दन-वन है आनन्द-निकेतन।२०।

विबुध-वृन्द

[७]

जिसकी विजय-दुंदुभी का रव भव को कंपित करता है।
प्रकृत तेज जिसका दिगन्त के तिमिर-पुंज को रहता है।
वारिवाह जिसके निदेश से जग को जीवन देता है।
सप्त-रंग-रंजित निज धनु से जो विमुग्ध कर लेता है।१।
दिव्य अलौकिक बहु मणियों से मंडित मुकुट मनोहारी।
सकल मुकुटधर-शासन का है जिसे बनाता अधिकारी।
श्वेतवर्ण ऐरावत-सा मदमत्त गजेन्द्र-मंद-गामी।
सबसे ऊँचे सिंहासन का जिसे बनाता है स्वामी।२।
चार चक्षु है नहीं स्वयं जो है सहस्र लोचनवाला।
सारी जगती का रहस्य सब है जिसका देखाभाला।
आ यमराज सामने जिसके धर्मराज बन जाता है।
वह है सुरपति कर के पवि से जो लोकों का पाता है।३।
जिसकी ज्योति गगनतल में भी परमोज्ज्वल दिखलाती है।
सब भावों का सदुपयोग जिसकी शिक्षा सिखलाती है।
धूमधाम से बहती जिसको धर्म-धुरंधरता-धारा।
है सुरपति सर्वस्व विपथ-गत सुर-समूह का ध्रुव तारा।४।
कहाँ नहीं उस सकल लोक-पालक की कला दिखाती है।
एक-एक फूलों में उसकी सुछवि छलक-सी जाती है।

(ए)क-एक पत्ते पर उसका पता लिखा-सा मिलता है।
खुल जाता है ज्ञान-नयन जब मंद-मंद वह हिलता है ॥५॥
ऐसे भेद बतानेवाली जिसकी कृपा निराली है।
जिसके कर में सकल लोक-हित-कामुकता की ताली है।
जो है त्रिभुवन-शांति-विधाता, सुरपुर का हितकारी है।
वह है सुरगुरु जिसकी गुरुता नीति-निपुणता न्यारी है। ६।
जिसकी तंत्री सुने विश्वहृत्तंत्री बजने लगती है।
जिसकी भावमयी स्वर-लहरी भक्ति-रंग में रँगती है।
जिसका कल आलाप श्रवण में सुधा-विन्दु टपकाता है।
आलबाल उर लसित प्रेमतरु जिससे तरु हो पाता है। ७।
जिसकी महिमामयी मूर्त्ति मन को रसमत्त बनाती है।
किसे नहीं जिसकी तदीयता तदीयता दे पाती है।
सुर-सदनों में जिसका प्रेम-प्रवाह प्रवाहित रहता है।
वह है वह आनन्द-मग्न देवर्षि जिसे जग कहता है। ८
रमा चंचला हों; पर अचला जिसके यहाँ दिखाती हैं।
ऋद्धि-सिद्धियाँ जिसकी सेवा कर फूली न समाती हैं।
नव निधियाँ निधि के समान जिसकी निधि में लहराती हैं।
जिसके महाकोष में अगणित मणियाँ शोभा पाती हैं।
जो त्रिभुवन के धन-समूह का धाता माना जाता है।
जिसकी कृपा हुए लक्षाधिप महारंक बन पाता है

सदा भरापूरा जिसका अक्षय भांडार कहाता है।
वह कुवेर है जिसका वैभव कूत न कोई पाता है।१०।
जिसके तरल हृदय की महिमा जलधि-तरंगें गाती हैं।
कल-कल रव करके सरिताएँ जिसकी कीर्त्ति सुनाती हैं।
सकल जलाशय जिसके करुणामय आशय के आलय हैं।
पा जिसका संकेत पयोधर सदा बरस पाते पय हैं।११।
करके जीवन-दान सर्वदा जो जग-जीवनदाता है।
एक-एक तरु-तृण से जिसका जलसिंचन का नाता है।
वाष्परूप में परिणत हो जो पूर्त्ति व्याप्ति की करता है।
वह है वरुण असरसों में भी जो सदैव रस भरता है।१२।
जिसकी ज्योति सदा जगतीतल में जगती दिखलाती है।
भर-भर तारक-चय में जिसकी भूरि विभा छवि पाती है।
बसकर जो विद्युत-प्रवाह में कान्त कलाएँ करता है।
जिसका तेजःपुंज तमा के तिमिर-पुंज को हरता है।१३।
जो है दीप्ति विभूतिमान जो विश्व-विलोचन-तारा है।
आलोकिता प्रकृति की कृति को जिसका प्रबल सहारा है।
जो कर रत्नराजि को रंजित मणि को कान्त बनाता है।
वह पावक है दिव भी जिससे परम दिव्यता पाता है।१४।
उठा-उठा उत्ताल तरंगें निधि को कंपित करता है।
जो दिगन्त में महाघोर रव गरज-गरजकर भरता है।

ले तुरंग का काम छिन्न घन से तरंग में आता है।
जो प्रवेश कर कीचक-रन्ध्रों में वर वेणु बजाता है।१५।
खिला-खिला करके कलियों को हँसा-हँसाकर फूलों को।
उड़ा-उड़ाकर वन-विभूतियों के बहुरंग दुकूलों को।
जो बहता है सुरभित हो, नर्त्तन कर मुग्ध बनाता है।
वह समीर है जो सारी संसृति का प्राण कहाता है।१६।
यह संसार व्याधि-मन्दिर है बहु तापों से तपता है।
उसका गला विविध पीड़ाओं द्वारा बहुधा नपता है।
इनका शमन हाथ में जिन विबुधों के रहता आया है।
रस-रसायनों द्वारा निर्मित जिनकी अद्भुत काया है।१७।
जड़ी-बूटियों में प्रभाव जिनका परिपूरित रहता है।
स्रोत निरुजता का ओषधि में जिनके बल से बहता है।
स्वयं अगद रह सगदों को जो अगद सदैव बनाते हैं।
वे पीयूषपाणि - पुंगव अश्विनीकुमार कहाते हैं।१८।
जिसका आगम अरुण दिखा अरुणाभा सूचित करता है।
जो सिन्दूर उषा - रमणी की मंजु माँग में भरता है।
जिससे पावनतम प्रभात नित प्रभा - पुंज पा जाता है।
जिसके कान्ति-निकेतन कर से जगत कान्त बन पाता है।१९।
जो है जागृति मूर्त्तिमन्त, जो दिव्य दिवस का धाता है।
सतरंगी किरणें धारण कर जो सप्ताश्व कहाता है।

जो विभिन्न रूपों से सारे भव में व्याप्त दिखाता है।
वह दिनमणि है जो त्रिलोकपति-लोचन माना जाता है।२०।
जो रजनी का रंजन कर रजनी-रंजन कहलाता है।
जो नभतल में विलस-विलस हँस-हँसकर रस बरसाता है।
दिखा तेज तारक-चय में जो तारापति-पद पाता है।
जो है सिता-सुन्दरी का पति सिन्धुसुता का भ्राता है।२१।
जो शिव के विशाल मस्तक पर बहु विलसित दिखलाता है।
सुन्दर से सुन्दर भव-आनन जिसका पटतर पाता है।
मिले अलौकिक रूप-माधुरी जो बनता जग-जेता है।
वह मयंक है जो संसृति को सुधासिक्त कर देता है।२२।
जिनकी ब्रह्मपुरी में वाणी वीणा बजती रहती है।
जिसकी ध्वनि ब्रह्माण्डमयी बन, पाती महिमा महती है।
प्राणिमात्र - कंठों में उसकी झंकृत छटा दिखाती है।
विविध स्वरों ध्वनियों में परिणत हो वह मुग्ध बनाती है।२३।
जिनके चारों वदन वेद हैं जो भव-भेद बताते हैं।
सृष्टि-सृजन की सकल अलौकिक बातें जिनमें पाते हैं।
जिनकी रचना के चरित्र अति ही विचित्र दिखलाते हैं।
वे हैं ब्रह्मा पलक मारते जो ब्रह्मांड बनाते हैं।२४।
दो क्या, चार भुजाओं से जो जग का पालन करते हैं।
चींटी हो या हो गजेन्द्र जो उदर सभी का भरते हैं।

स्तनपायी प्राणीसमूह को जो पय सदा पिलाते हैं।
प्रस्तर-भरे कीटकों को जो दे-दे अन्न जिलाते हैं।२५।
जो हैं कर्म-सूत्र-संचालक विविध विधान-विधाता हैं।
जो हैं कुत्सित पात्र नियामक सत्पात्रों के पाता हैं।
हैं संसार-चक्र-परिचालक जो वैकुंठ-निवासी हैं।
वे हैं अखिल लोक के नायक वे ही रमा-विलासी हैं।२६।
मङ्गलमूर्त्ति सुअन हैं जिनके जिनको मोदक प्यारे हैं।
सुर-सेनापति श्याम-कार्त्तिक जिनके बड़े दुलारे हैं।
सिंहवाहना प्रिया सुरसरी-धारा जिनको प्यारी है।
भाल-विराजित चन्द्रकला में जिसकी सुख-छवि न्यारी है।२७।
जिनके तन की वर विभूति सारी विभूतियाँ देती है।
जिनकी कृपादृष्टि रङ्कों को भी सुरपति कर लेती है।
है कैलास धाम जिनका जिनको मति समझ न पाती है।
वे शिव हैं जिनकी कुटिला भ्रू प्रलयंकरी कहाती है।२८।
दैवी कला सकल लोकों ओकों में कान्त दिखाती है।
सारे ब्रह्मांडों में सुरगण-सत्ता सबल जनाती है।
सबमें सकल सुसङ्गत बातें सहज भाव से भरते हैं।
सारी संसृति का नियमन नियमानुसार वे करते हैं।२९।
ब्रह्मलोक में है विशेषता है वैकुंठ-विभवशाली।
बाते हैं गौरव-उपेत कैलास-धाम गरिमावाली।

पर न भ्रान्तिवश उनके वासस्थल को स्वर्ग बताते हैं।
क्या 'त्रिदेव' चतुरानन।कमलापति शिव कहे न जाते हैं।३०।

स्वर्ग की कल्पना

[८]

अच्छा होता, दुख न कभी होता, सुख होता।
सब होते उत्फुल्ल, न मिलता कोई रोता।
उठती रहतीं सदा हृदय में सरस तरंगें।
कुचली जातीं नहीं किसी की कभी उमंगें।१।
बजते होते घर-घर में आनन्द - बधावे।
निरानन्द मिलते न धूम से करते धावे।
सदा विहँसता जन - जन - चन्द्रानन दिखलाता।
किसी काल में कहीं न कोई मुख कुम्हलाता।२।
बहती मिलती सकल मानसों में रस - धारा।
छिदता बिंधता नहीं हृदय वेदन-शर द्वारा।
होते जगती - जीव मंजु भोगों के भोगी।
करने पर भी खोज न मिलता कोई रोगी।३।
होती मन की बात, तोड़ते सब नभ - तारे।
बैठा मिलता कहीं नहीं कोई मन मारे।
होते सब स्वच्छन्द धर्मरत पर - उपकारी।
कहीं न मिलते पाप - ताप - तापित अपकारी।४।

सदन-सदन में रमा रमण करती दिखलाती।
नहीं धड़कती पेट के लिये कोई छाती।
जहाँ-तहाँ सब ओर नित बरसता हुन होता।
कहीं न कोई कभी गाँठ की पूँजी खोता। ५।
नवयौवन से सदा लसित होते नर-नारी।
आती जरा कभी न, न जातीं आँखें मारी।
मिले अमरता कभी नहीं मानव मर पाता।
सरस सुधा कर पान न अपना प्राण गँवाता। ६।
नहीं किसी का जीवन-सा पारस खो जाता।
सोने का संसार न मिट्टी में मिल पाता।
सब सदनों में परम हर्ष-कोलाहल होता।
खोकर अपने रत्न न कोई रोता-धोता। ७।
चिरजीवन कर लाभ लोक फूला न समाता।
नहीं काल विकराल किसी का हृदय कँपाता।
द्वारों चौबारों पर मिलती नौबत झड़ती।
किसी कान में कभी नहीं क्रन्दन-ध्वनि पड़ती। ८।
दिव्य नारि-नर-वृन्द गा-बजा रीझ रिझाते।
कर-कर हास-विलास उल्लसित लसित दिखाते।
सब उद्वेजक भाव सामने सहम न आते।
सारे नीरस व्यसन विषय तन परस न पाते। ९।

हरेभरे तरुवृन्द फलों से भरे दिखाते।
पर हो-हो कंटकित न औरों को उलझाते।
फूल-फूलकर फूल फबीले बन मुसकाते।
पर रज से अंधे न रसिक भौंरे बन पाते।१०।

घनरुचि तन की छटा दिखा नभ में घन आते।
सरस वारि कर दान रसा को रसा बनाते।
पर कभी न वे कर्ण-विदारी नाद सुनाते।
न तो गिराते विज्जु, न तो ओले बरसाते।११।

बहता रहे समीर महँकता शीतल करता।
पर आँधी बन रहे न नयनों में रज भरता।
लतिका से कर केलि वने जीवन-संचारी।
पेड़ न टूटे ध्वंस न हो फूली फुलवारी।१२।

ऐसी ही कामना सदा मानव करते हैं।
कुछ ऐसे ही भाव भावुकों में भरते हैं।
भव का द्वन्द्व विलोक मनुज भावित होता है।
देख काल-मुख आठ-आठ आँसू रोता है।१३।

इस विचार ने बुध जन को है बहुत सताया।
कैसे होगी अजर अमर मानव की काया।
क्या लोकों में लोक नहीं है ऐसा न्यारा।
जिसे मिला हो भू-उपद्रवों से छुटकारा।१४।

देख चित्त की वृत्ति समा है गया दिखाया।
मिला रंग से रंग, रंग है गया जमाया।
कहते हैं कुछ विबुध, पता कब गया बताया।
है सुरपुर-कल्पना किसी कलनक की माया।१५।

स्वर्ग की वास्तवता

[९]

नीलाम्बर में बड़े अनूठे रत्न जड़े हैं।
भव-वारिधि में विपुल विद्युत-स्तंभ खड़े हैं।
तारे हैं अद्भुत विचित्र अत्यंत निराले।
परम दिव्य आलोक निलय कौतुक तरु थाले। १।
यदि स्वकीय विज्ञात सौर-मंडल को ले लें।
चिन्ता-नौका को विचार-वारिधि में खे लें।
तो होगा यह ज्ञात एक उसके ही तारे।
हैं मन-वचन-अगोचर मति-अवगति से न्यारे। २।
फिर अनन्त तारक-समूह की सारी बातें।
कैसे हैं उनके दिन या कैसी हैं रातें।
क्या रहस्य हैं उनके, क्या है उनकी सत्ता।
क्या है उनका बल विवेक अधिकार महत्ता। ३।
किसी काल में बता सकेगा कोई कैसे।
बड़े विज्ञ भी कह न सकेंगे, वे हैं ऐसे।

दिनमणि से सौगुने बड़े नभ में हैं तारे।
जो हैं दिव दिव्यता-करों से गये सँवारे। ४।
ऐसे तारक-चय की भी है कथा सुनाई।
जिनकी किरणें अब तक हैं न धरा पर आई।
वे हैं द्युतिसर्वस्व अलौकिक गुणगणशाली।
है उनकी विभुता अचिन्त्य, दिव्यता निराली। ५।
क्या इनमें से कोई भी सर्वोत्तम तारा।
स्वर्ग नाम से जा सकता है नहीं पुकारा।
हैं तारक के सिवा सौर-मंडल कितने ही।
क्या हैं बहु विख्यात अलौकिक स्वर्ग न वे ही। ६।
क्या न सौर-मंडल हमलोगों का है अनुपम।
क्या न हमारे सूर्यदेव हैं प्रकृत दिव्यतम।
रविमंडल विस्तृत वसुधा से बहुत बड़ा है।
जो अवनी है मटर तो द्युमणि-बिम्ब घड़ा है। ७।
अग्नि-शरीरी वृन्दारक हैं माने जाते।
तरणि-बिम्ब-वासी भी हैं आग्नेय कहाते।
हैं सुरगुरु विधु सहित सौर-मंडल में रहते।
क्या होगा अयथार्थ उसे जो दिव हैं कहते। ८।
बुद्धदेव में है अनात्मवादिता दिखाती।
ईश-विषय में नहीं जीभ उनकी खुल पाती।

पर वे भी हैं स्वर्गलोक-सत्ता बतलाते।
जैन-धर्म के ग्रंथ स्वर्गगुणगण हैं गाते। ९।
हैं विहिश्त के दिव्य गान जरदुश्त सुनाते।
स्वर्ग-दृश्य देखे मूसा-दृग हैं खुल जाते।
ईसा हैं स्वर्गीय पिता के पुत्र कहाते।
पैगम्बर जन्नत-पैगामों को हैं लाते। १०।
फिर कैसे यह कहें स्वर्ग-संबंधी बातें!
हैं झूठी, हैं गढ़ी, हैं तिमिर-पूरित रातें।
मरने पर मानव-तन है रज में मिल जाता।
किसी दूसरी जगह नहीं है जाता-आता। ११।
जा करके परलोक पलटता कौन दिखाया।
है उसका वह पंथ जन जिसे खोज न पाया।
इसी लिये परलोक स्वर्ग आदिक की बातें।
जँचती नहीं, जान पड़ती हैं उतरी ताँतें। १२।
हैं अनात्मवादिता इन विचारों में पाते।
ज्ञान-नयन किस लिये नहीं हैं खोले जाते।
है शरीर से भिन्न 'जीव' यह कभी न भूले।
क्यों अबोध लोहा न बोध पारस को छू ले। १३।
करके तन का त्याग कहाँ है आत्मा जाती।
यह जिज्ञासा विबुधों को है यही बताती।

कर्मभूमि में जीव कर्म का फल पाता है।
उच्च कर्म कर उच्च लोक में वह जाता है। १४।
विबुधों का वर बोध अबुधता का बाधक है।
यह विचार भी स्वर्गसिद्धि का ही साधक है।
तर्क-वितर्क विवाद और है बहुत अल्पमत।
स्वर्गलोक-अस्तित्व है विपुल बुध-जन-सम्मत। १५।

[१०]

शार्दूल-विक्रीडित

है ऐरावत-सा गजेन्द्र न कहीं, है कौन देवेन्द्र-सा।
है कान्ता न शची समान अपरा देवापगा है कहाँ।
श्री जैसी गिरिजा गिरा सम नहीं देखी कहीं देवियाँ।
पाई कल्पलतोपमा न लतिका, है स्वर्ग ही स्वर्ग-सा।१। अत
शोभा-संकलिता नितान्त ललिता कान्ता कलालंकृता।
लीला-लोल सदैव यौवनवती सद्वेश-वस्त्रावृता।
नाना गौरव-गर्विता गुणमयी उल्लासिता संस्कृता।
होती है दिव-दिव्यता-विलसिता स्वर्गाङ्गना सुन्दरी।२।
शुद्धा सिद्धि-विधायिनी अमरता आधारिता निर्जरा।
सारी आधि-उपाधि-व्याधि-रहिता बाधादि से वर्जिता।
कान्ता कान्ति-निकेतनातिसरसा दिव्या सुधासिंचिता।
नाना भूति विभूति मूर्त्ति महती है स्वर्ग स्वर्गीयता।३।

जो होती न विराजमान उसमें दिव्यांग देवांगना।
जो देते न उसे प्रभूत विभुता देवेश या देवते।
नाना दिव्य गुणावली-सदन जो होती नहीं स्वर्गभू।
तो पाती न महान भूति महती होती महत्ता नहीं।४।

होते म्लान नहीं प्रसून, रहते उत्फुल्ल हैं सर्वदा।
पा के दिव्य हरीतिमा विलसती है कान्त वृक्षावली।
पत्ते हैं परिणाम रम्य फल हैं होते सुधा से भरे।
है उद्यान न अन्य, स्वर्ग-अवनी के नन्दनोद्यान-सा।५।

जो हो स्वस्थ शरीर, भाग्य जगता, पद्मासना की कृपा।
जो हो पुत्र विनीत, बुद्धि विमला, हो बंधु में बंधुता।
जो हो मानवता विवेक-सफला, हों सात्विकी वृत्तियाँ।
हो कान्ता मृदुभाषिणी अनुगता तो स्वर्ग है सद्म ही।६।

होती है विकरालता जगत की जाते जहाँ कम्पिता।
आता काल नहीं समीप जिसके आरक्त आँखें किये।
होता है भय आप भीत जिसकी निर्भीकता भूति से।
जा पाते यमदूत हैं न जिसमें है स्वर्ग-सा स्वर्ग ही।७।

होता क्रन्दन है नहीं, न मिलता है आर्त्त कोई कहीं।
हाहाकार हुआ कभी न, उसने आहें सुनी भी नहीं।
देखा दृश्य न मृत्यु का, न दव से दग्धा विलोकी चिता।
है आनन्द-निधान स्वर्ग-विभुता उत्फुल्लता-मूर्त्ति है।८।

गाती है वह गीत, पूत जिससे होती मनोवृत्ति है।
लेती है वह तान रीझ जिससे है रीझ जाती स्वयं।
ऐसी है कलकंठता कलित जो है मोहती विश्व को।
है संगीत सजीव मूर्त्ति दिवि की लोकोत्तरा अप्सरा।९।

सारी मोहन-मंत्र-सिद्धि स्वर में, आलाप में मुग्धता।
तालों में लय में महामधुरता, शब्दावली में सुधा।
भावों में वर भावना सरसता उत्कंठता कंठ में।
देती है भर भूतप्रीतिध्वनि में गंधर्व गंधर्वता।१०।

जागे सात्विक भाव भूति टलती हैं तामसी वृत्तियाँ।
देखे दिव्य दिवा-विकास छिपती है भीतभूता तमा।
जाती है मिट ज्ञान भानु-कर से अज्ञान की कालिमा।
पाते हैं द्युति लोक लोक दिवि की आलोकमाला मिले।११।

पाते हैं बहुदीप्ति देवगण से दिव्यांगना-वृन्द से।
होते झंकृत हैं सदैव बजते वीणादि झंकार से।
हो आरंजित रत्न से विलसते हैं मोहते लोक को।
आँखों में बसते सदा विहँसते आवास हैं स्वर्ग के।१२।

हो-हो नृत्य-कला-निमग्न दिखला अत्यन्त तल्लीनता।
पाँवों के वर नूपुरादि ध्वनि से संसार को मोहती।
ले-ले तान महान मंजु रव से धारा सुधा की बहा।
नाना भाव-भरी परी सहित गा है नाचती किन्नरी।१३।

नाना रोग-वियोग-दुःख-दल से जो द्वंद्व से है बचा।
सारी ऋद्धि प्रसिद्ध सिद्धि निधि पा जो भूति से है भरा।
जो है मृत्यु-प्रपंच-हीन जिसमें हैं जीवनी ज्योतियाँ।
तो क्या है अपवर्ग-पुण्य बल से जो स्वर्ग ऐसा मिले।१४।

सारी संसृति है विभूति उसकी, है भूत-सत्ता वही।
प्यारा है वह लोक लोकपति का है लोक प्यारा उसे।
जो हो जाय अनन्यता जगत में तो अन्यता है कहाँ।
तो क्या है अपवर्ग-प्राप्ति-गरिमा, तो स्वर्ग संसर्ग क्या।१५।

जो माने न उसे असार, समझे संसार की सारता।
जो देखे तृण से त्रिदेव तक में दिव्यांग की दिव्यता।
जो आँखें अवलोक लें अखिल में आत्मीयता का समा!
जो मानव का हो महान मन तो क्या साहिबी स्वर्ग की।१६।

एकादश सर्ग

कर्म-विपाक

[१]

कर्म-अकर्म

अवसर पर आँखें बदले।
बनता है सगा पराया।
काँटा छिट गया वहाँ पर।
था फूल जहाँ बिछ पाया। १।

जो रहा प्यार का पुतला।
वह है आँखों में गड़ता।
अपने पोसे-पाले को।
है कभी पीसना पड़ता। २।

जिसकी नहँ उँगली दुखते।
आँखों में आँसू आता।
जो खटके पीछे पड़कर।
है वही पछाड़ा जाता। ३।

जिसका मुँह बिना विलोके।
दिन था पहाड़ हो पाता।

वह मुँह न दिखावे, ऐसा।
है कभी चित्त फट जाता। ४।

हैं भली भली ही बातें।
हैं बुरी बुरी कहलाती।
पर लाग लगे पर-घर में।
है आग लगाई जाती। ५।

है झूठा तो झूठा ही।
सच्चा है भला कहाता।
पर लगता ही रहता है।
झूठी बातों का ताँता। ६।

खलता है पग के नीचे।
चींटी का भी पड़ जाना।
पर कभी ठीक जँचता है।
लाखों का लहू बहाना। ७।

जी बहुत दुखी होता है।
अवलोक और का दुखड़ा।
हैं कभी फेर लेते मुँह।
देखे दुखियों का मुखड़ा। ८।

थोड़ा भी सितम किसी का।
है कहाँ कौन सह पाता।

पर दबकर कड़े पड़े का।
है तलवा चाटा जाता। ९।

सब कुछ है समय कराता।
यह बात गई है मानी।
है भरी दाँव-पेचों से।
भव कर्म-अकर्म-कहानी। १०।

[२]

उत्ताल तरंगित वारिधि।
यदि रत्नराजि देता है।
तो द्वीपपुंज को भी वह।
हो क्षुब्ध निगल लेता है। १।

चल परम प्रचंड प्रभंजन।
यदि है विशुद्धि कर पाता।
तो दुर्गति कर तरुओं की।
भव में रज है भर जाता। २।

यदि बरस-बरसकर वारिद।
बनता है जीवनदाता।
तो मार-मारकर पत्थर।
भू पर है वज्र गिराता। ३।

वह मुँह न दिखावे, ऐसा।
है कभी चित्त फट जाता। ४।

हैं भली भली ही बातें।
हैं बुरी बुरी कहलाती।
पर लाग लगे पर-घर में।
है आग लगाई जाती। ५।

है झूठा तो झूठा ही।
सच्चा है भला कहाता।
पर लगता ही रहता है।
झूठी बातों का ताँता। ६।

खलता है पग के नीचे।
चींटी का भी पड़ जाना।
पर कभी ठीक जँचता है।
लाखों का लहू बहाना। ७।

जी बहुत दुखी होता है।
अवलोक और का दुखड़ा।
हैं कभी फेर लेते मुँह।
देखे दुखियों का मुखड़ा। ८।

थोड़ा भी सितम किसी का।
है कहाँ कौन सह पाता।

पर दबकर कड़े पड़े का।
है तलवा चाटा जाता। ९।

सब कुछ है समय कराता।
यह बात गई है मानो।
है भरी दाँव-पेचों से।
भव कर्म-अकर्म-कहानी। १०।

[२]

उत्ताल तरंगित वारिधि।
यदि रत्नराजि देता है।
तो द्वीपपुंज को भी वह।
हो क्षुब्ध निगल लेता है। १।

चल परम प्रचंड प्रभंजन।
यदि है विशुद्धि कर पाता।
तो दुर्गति कर तरुओं की।
भव में रज है भर जाता। २।

यदि बरस-बरसकर वारिद।
बनता है जीवनदाता।
तो मार-मारकर पत्थर।
भू पर है वज्र गिराता। ३।

यदि आ दिनमणि की किरणें।
जग में हैं ज्योति जगाती।
तो करके नाश निशा का।
तम को हैं तमक दिखाती। ४।

यदि बहु भलाइयाँ भू की।
पावक द्वारा हैं होती।
तो जगी ज्वाल-मालाएँ।
हैं आग धरा में बोती। ५।

हैं देवधुनी के धाता।
गिरि हैं भूधर कहलाते।
पर वे पाषाण-हृदय हैं।
पवित्र उनमें हैं पाते। ६।

सरिताएँ हैं रस देती।
कल कल रव कर हैं गाती।
पर टेढ़ी चालें चल-चल।
हैं बहु विचलित कर पाती। ७।

उनमें है सुधा गरल है।
हैं विविध विनोद व्यथाएँ।
हैं भरी जटिलताओं से।
भव कर्म-अकर्म-कथाएँ। ८।

[२]

वह गूढ़ ग्रंथि है ऐसी।
जो खुली न मति-नख द्वारा।
वह है वह जटिल समस्या।
जिससे समस्त जग हारा। १।

है अविज्ञात गति जिसकी।
मिलता है नहीं किनारा।
वह है अन्तःसलिला की।
वह अन्तर्वर्त्ती धारा। २।

पची होता रहता है।
जिसके निमित्त जग माथा।
अविदित रहस्य - परिपूरित।
वह है वह अद्भुत गाथा। ३।

खोले जिसका अवगुंठन।
खुलता न कभी दिखलाया।
वह है वह प्रकृति - वधूटी।
जिसकी है मोहक माया। ४।

जैसी कि लोक - अभिरुचि है।
वह नहीं उठ सकी वैसी।

भव - रंगमंच की वह है।
अवरोध - यवनिका ऐसी। ५।

कैसे खुलता वह ताला।
जिसने वाधा है डाली।
जो किसी को न मिल पाई।
वह है विचित्र वह ताली। ६।

जिस जगह अगति के द्वारा।
जाती है मति - गति डाँटी।
है जहाँ प्रगति न दृगों की।
वह है वह दुर्गम घाटी। ७।

मन मनन नहीं कर पाता।
मतिमान मंद है बनता।
कब बोध-सुफल कहलाई।
भव कर्म - अकर्म - गहनता।८।

[४]

जो पूज्यपाद कहलाता।
गुरुदेव गया जो माना।
अपने शिष्यों को जिसने।
सुत के समान ही जाना। १।

जिसके प्रसाद से कितने ।
दिव्यास्त्र हाथ थे आये ।
जिसकी गौरव - गाथाएँ ।
थे अयुत-मुखों ने गाये । २ ।

वह वृद्ध निरस्त्र तपस्वी ।
संतान - शोक से कातर ।
हत हुआ कपट-कौशल से ।
हो गया अलग धड़ से सर । ३ ।

जो सत्यसंध था जिसका ।
व्रत धर्म - धुरंधरता था ।
उसके असत्य के बल से ।
गुरुपत्नी हुई अनाथा । ४ ।

'ए सारी बातें' जो हैं ।
वर आहव - नीति - प्रकाशी ।
संकेत से हुईं जिनके ।
वे थे भूभार - विनाशी । ५ ।

बहु रक्षित राजसभा में ।
जो थी महती कहलाती ।
रजवती एक कुलबाला ।
है पकड़ मँगाई जाती । ६ ।

चिढ़ एक महाबलशाली ।
था उसको बहुत सताता ।
उस निरपराध महिला का ।
कच खींचा-नोचा जाता । ७ ।

वह रोती - चिल्लाती थी ।
पर कौन मदद को आता ।
उस भरी सभा में उसको ।
था नग्न बनाया जाता । ८ ।

थे वहाँ महज्जन कितने ।
पर दिखा सके न महत्ता ।
अबला शरीर पर विजयी ।
हो गई आसुरी सत्ता । ९ ।

थी अर्द्धनिशा, छाया था ।
सब ओर घना अँधियाला ।
लग गया चेतना पर था ।
निद्रा-देवी का ताला । १० ।

सब जगत पड़ा सोता था ।
पर कुछ वीरताभिमानी ।
जगते थे इस असमय में ।
रचने को क्रान्ति-कहानी । ११ ।

कर प्रबल प्रमुख को आगे ।
घुस-घुस शिविरों में कितने ।
उनका वध किया उन्होंने ।
निद्राभिभूत थे जितने । १२ ।

जो निरपराध बालक थे ।
जिनकी थीं करुण पुकारें ।
जो थे निरीह उन पर भी ।
गिर गईं उठी तलवारें । १३ ।

जो इस प्रसिद्ध नाटक का ।
है सूत्रधार कहलाता ।
भारत - वसुधा द्वारा वह ।
चिरजीवी पद है पाता । १४ ।

कर्त्तव्य - विमूढ करेगी ।
क्यों नहीं विचित्र अवस्था ।
है भरी विषमताओं से ।
भव कर्म-अकर्म-व्यवस्था । १५ ।

[५]

कर्म का मर्म

१

फूल काँटों को करता है ।
संग को मोम बनाता है ।

चिढ़ एक महाबलशाली ।
था उसको बहुत सताता ।
उस निरपराध महिला का ।
कच खींचा-नोचा जाता । ७ ।

वह रोती - चिल्लाती थी ।
पर कौन मदद को आता ।
उस भरी सभा में उसको ।
था नग्न बनाया जाता । ८ ।

थे वहाँ महज्जन कितने ।
पर दिखा सके न महत्ता ।
अबला शरीर पर विजयी ।
हो गई आसुरी सत्ता । ९ ।

थी अर्द्धनिशा, छाया था ।
सब ओर घना अँधियाला ।
लग गया चेतना पर था ।
निद्रा-देवी का ताला । १० ।

सब जगत पड़ा सोता था ।
पर कुछ वीरताभिमानी ।
जगते थे इस असमय में ।
रचने को क्रान्ति-कहानी । ११ ।

कर प्रबल प्रमुख को आगे ।
घुस-घुस शिविरों में कितने ।
उनका वध किया उन्होंने ।
निद्राभिभूत थे जितने । १२ ।

जो निरपराध बालक थे ।
जिनकी थीं करुण पुकारें ।
जो थे निरीह उन पर भी ।
गिर गईं उठी तलवारें । १३ ।

जो इस प्रसिद्ध नाटक का ।
है सूत्रधार कहलाता ।
भारत - वसुधा द्वारा वह ।
चिरजीवी पद है पाता । १४ ।

कर्त्तव्य - विमूढ करेगी ।
क्यों नहीं विचित्र अवस्था ।
है भरी विषमताओं से ।
भव कर्म-अकर्म-व्यवस्था । १५ ।

[५]

कर्म का मर्म

१

फूल काँटों को करता है ।
संग को मोम बनाता है ।

वालुकामयी मरुधरा में।
सुरसरी - सलिल बहाता है।१।

जहाँ पड़ जाता है सूखा।
वहाँ पानी बरसाता है।

धूल - मिट्टी में कितने ही।
अनूठे फल उपजाता है।२।

दूर करके पेचीलापन।
झमेलों से बच जाता है।

गुत्थियाँ खोल-खोलकर वह।
उलझनों को सुलझाता है।३।

बखेड़े पास नहीं आते।
बला का गला दबाता है।

दहल सिर पर सवार होकर।
उसे नीचा दिखलाता है।४।

भूल की भूल-भुलैयों में।
पड़ गये तुरत सँभलता है।

राह में रोड़े हों तो हों।
पाँव उसका कब टलता है।५।

चाहता है जो कुछ करना।
उसे वह कर दिखलाता है।

सामने हो पहाड़ तो क्या।
धूल में उसे मिलाता है।६।

सामने आ रुकावटें सब।
उसे हैं रोक नहीं पाती।
देख उसको चालें चलते।
आप वे हैं चकरा जाती।७।

बहुत ही साहस है उसमें।
क्या नहीं वह कर पाता है।
फन पकड़ता है साँपों का।
सिंह को डाँट बताता है।८।

बड़ी करतूतों वाला है।
सदा सब कुछ कर लेता है।
परस पारस से लोहे को।
'कर्म' सोना कर देता है।९।

२

चारु चिन्तामणि जैसा है।
क्यों नहीं चिन्तित हित करता।
मिले नर-रत्न गृहों को वह।
रुचिर रत्नों से है भरता।१।

उसी का अनुपम रस पाकर।
रसा कहलाई सरसा है।
सब सुखों का वह साधन है।
कामप्रद कामधेनु - सा है।२।

देखकर उसकी तत्परता।
भवानी भव कर जाती है।
दान कर उसको वर विद्या।
गिरा गौरवित बनाती है।३।

देखकर उसका सत्याग्रह।
लोक - पालक घबराते हैं।
भूलते विधि हैं विधि अपनी।
रुद्र शंकर बन जाते हैं।४।

परम आदर कर जलधारा।
सदा उसका पग है धोती।
दामिनी दीप दिखा, उस पर।
बरसता है बादल मोती।५।

दिवा दमकाता है, रजनी।
उसे रंजित कर छिकती है।
देख विधु हँसता है, उसपर।
चाँदनी सुधा छिड़कती है।६।

दिव उसे दिव्य बनाता है।
तारकाएँ दम भरती हैं।
देखकर उसकी कृतियों को।
दिशाएँ विहँसा करती हैं।७।

रमा के कर से लालित हो।
क्या नहीं ललके लेता है।
कल्पतरु - जैसा कामद बन।
'कर्म' वांछित फल देता है।८।

३

बबूलों को बोकर किसने।
आम के अनुपम फल पाये।
लगे तब कंज मंजु कैसे।
फूल जब सेमल के भाये।१।

डरे तब जल जाने से क्यों।
आग से जब कोई खेले।
बाल बिनने से क्यों काँपे।
जब बलाएँ सिर पर ले ले।२।

गात चन्दन से चर्चित हो।
चाँदनी का सुख पाता है।

क्यों न वह छाया में बैठे।
धूप में जो उकताता है।३।

प्यार ही से बन सकते हैं।
पराये भी अपने प्यारे।
बचाना है अपनेको तो।
और को पत्थर क्यों मारे।४।

सँभाले मुँह, करते रहकर।
जीभ की पूरी रखवाली।
जब बुरी गाली लगती है।
तब न दें औरों को गाली।५।

जगत में कौन पराया है।
कौन याँ नहीं हमारा है।
मान तो हम सबको देवें।
मान जो हमको प्यारा है।६।

क्यों किसी को कोई दुख दे।
क्यों किसी को कोई ताने।
क्यों न अपने जी जैसा ही।
दूसरों के जी को जाने।७।

कौन किसको सुख देता है।
किसी को कौन सताता है।

किये का ही फल मिलता है।
कर्म हो सुख-दुख-दाता है।८।

४

प्रति दिवस उदयाचल पर आ।
भव-दृगों से हो अवलोकित।
कीर्त्ति दिनमणि-कर पाता है।
लोक को करके आलोकित।१।

सुधा को लिये सिंधु को मथ।
सुधाकर नभ पर आता है।
रात-भर बिहँस-बिहँस उसको।
धरातल पर बरसाता है।२।

तारकावलि तैयारी कर।
तिमिर से भिड़ती रहती है।
ज्योति देकर जगतीतल को।
प्रगति - धारा में बहती है।३।

वात है मंद - मंद चलता।
महँक से भरता रहता है।
पास आ कलिका कानों में।
विकचता बातें कहता है।४।

वारि से भर-भरकर वारिद ।
सरस हो-हो रस देता है ।
मुग्धता दिखा दिग्वधू की ।
बलाएँ बहुधा लेता है ।५।

व्योमतल में नभ-यान विहर ।
विविध कौतुक दिखलाते हैं ।
कीर्त्ति विज्ञान-विधानों की ।
विपुल कंठों से गाते हैं ।६।

हिमाचल अचल कहाकर भी ।
द्रवित हो रचता सोता है ।
निर्झरों से झंकृत रहकर ।
ध्वनित सरिध्वनि से होता है ।७।

गगनचुम्बी मंदिर के कलश ।
उच्च प्रासाद-पताकाए ।
प्रचारित करती रहती हैं ।
कला-कौशल गुण-गरिमाएँ ।८।

महँकते हैं रस देते हैं ।
हँस लुभाते ही रहते हैं ।
फूल सब अपना मुँह खोले ।
कौन-सी बातें कहते हैं ।९।

काम में रत रह गाने गा।
खोजते फिरते हैं चारा।
कौन - सा भेद बताते हैं।
विहग-कुल निज कलरव द्वारा।१०।

भ्रमर-गुंजन तितली - नर्त्तन।
हो रहा है किस तंत्री पर।
मत्त होती है मधुमक्खी।
कौन-सा मधुप्याला पीकर। ११।

विपुल वन-उपवन के पादप।
हरे परिधानों को पहने।
सजाये किसके सजते हैं।
फूल-फल के पाकर गहने। १२।

महा उत्ताल तरंगों पर।
विजय पोतों से पाता है।
मिल गये किसका बल गोपद।
सिंधु को मनुज बनाता है। १३।

सत्यता से सब दिन किसकी।
सिद्धि के साथ निबहती है।
सफलता - ताला की कुञ्जी
हाथ में किसके रहती है।१४।

सुशोभित है दिवि की दिवता।
दिव्यतम उसकी सत्ता से।
विलसता है वसुंधरातल।
कर्म की कान्त महत्ता से।१५।

[६]

कर्म का त्याग

१

यह सुखद पावन भूति-निकेत।
सुरसरी का है सरस प्रवाह।
वह मलिन रोग-भरित अपुनीत।
कर्मनाशा का है अवगाह।१।

यह हिमाचल का है वह अंक।
विबुध करते हैं जहाँ विहार।
जहाँ पर प्रकृति-वधूटी बैठ।
गूँधती है मंजुल मणिहार।२।

वह मरुस्थल का है वह भाग।
जहाँ है खर-रवि-कर उत्ताप।
बढ़ाती है वालुका-उपेत।
जहाँ की भूमि विविध संताप।३।

यह प्रकृति देश-काल-अनुकूल।
विधाता का है वह सुविधान।
समुन्नति-आनन परम प्रफुल्ल।
नहीं जिससे बन पाता म्लान।४।

वह परम कुटिल काल-संकेत।
इस सरणि का है जो है हीन।
बनाता रहता है जो सतत।
प्राणियों को बहु दीन मलीन।५।

यह नियति-कर-विरचित कमनीय।
उच्चतम है वह सत्सोपान।
चढ़े जिस पर संयम के साथ।
सकल भव करता है सम्मान।६।

वह महा अज्ञ विवेक-विहीन—
कर-रचित है वह गर्त्त गभीर।
गिरे जिसमें होता है नष्ट।
विभव-गौरव का सबल शरीर।७।

एक है सुधा, दूसरा गरल।
प्रथम है धर्म, द्वितीय अधर्म।
उभय की हैं वृत्तियाँ विभिन्न।
कर्म है जीवन, मरण अकर्म।८।

२

शक्ति रहते न सकेंगे रोक।
विलोचन अवलोकन का काम।
नासिका ग्रहण करेगी गंध।
बनेगा श्रवण शब्द का धाम।१।

तुरत जायेगी रसना जान।
कौन-से रस का क्या है स्वाद।
न चूकेगा अवसर अवलोक।
करेगा आनन वाद-विवाद।२।

त्वचा को बिना किये कुछ यत्न।
स्पर्श का हो जाता है ज्ञान।
किया करता है मन सब काल।
बहुत-सी बातों का अनुमान।३।

सलिल में तरल तरंग समान।
उठा करते हैं नाना भाव।
वहन करता रहता है चित्त।
निज विषय के चिन्तन का चाव।४।

चलेगी क्या न निराली चाल।
आत्मगौरव स्वाभाविक चाह।

निकालेगी न सुअवसर देख।
क्या सुमति अपनी अनुपम राह।५।

क्या करेगी न मान की आन।
सदा निज विभुता का विस्तार।
क्या न डालेगी लिप्सा ललक।
समादर-कंठ में प्रमुद-हार।६।

विदित करने को विश्व-विभूति।
दिखाने को अद्भुत व्यापार।
लगा जो उर से शिर पर्यन्त।
टूट जायेगा क्या वह तार।७।

जिस समय तक है सुख-दुख-ज्ञान।
आत्मसत्ता में है अनुराग।
कर्ममय है जबतक संसार।
कर्म का कैसे होगा त्याग।८।

३

विलोचन अवलोकें छविपुंज।
मुग्ध हों भव-सौन्दर्य विलोक।
किन्तु हों दृष्टि नितान्त पुनीत।
सामने हो अनुभव-आलोक।१।

दिखाई पड़े कुवस्तु सुवस्तु।
विदूरित हों तम-तोम-विकार।
सुमति मानवता मुख अवलोक।
बने सद्भाव गले का हार।२।

हस्तगत हो वह आत्मिक शक्ति।
छिड़े वह अन्तस्तल का तार।
लोकहितमय हो जिसकी मीड़।
प्रेम-परिपूरित हो झंकार।३।

पाठ कर विश्व-बंधुता-मंत्र।
बने मानस कमनीय अतीव।
समझकर सर्वभूतहित मर्म।
सगे बन जाँय जगत के जीव।४।

चित्त इतना हो जाय दयार्द्र।
दुःख औरों का देख सके न।
अगम भवहित का पंथ विलोक।
पाँव पौरुष का कभी थके न।५।

न ममता छले न मोहे मोह।
असंयम सके हृदय को छू न।
मिले परमार्थ-शंभु का शीश।
स्वार्थ बन जाय पवित्र प्रसून।६।

सफल होता है मानव-जन्म।
हाथ आ जाता है अपवर्ग।
धर्म पर जब परमार्थ-निमित्त।
स्वार्थ हो जाता है उत्सर्ग।७।

स्वार्थ-परमार्थ-रहस्य विलोक।
विश्वहित से रख बहु अनुराग।
सदा जो किया जाय सविवेक।
है वही 'कृत्य' कर्म का त्याग।८।

४

अंध नयनों में भर दे ज्योति।
बने अज्ञान-तिमिर आलोक।
भरित हो जहाँ मलिनता भूरि।
करे उसको उज्ज्वलतम ओक।१।

तमोगुण से हो-हो अभिभूत।
तामसी रजनी का व्यापार।
जहाँ हो व्याप्त वहाँ बन भानु।
करे निज प्रबल प्रभा-विस्तार।२।

जहाँ पर कूटनीति का जाल।
फैल करता हो अत्याचार।

वहाँ बन स्वयं न्याय की मूर्त्ति।
करे उत्पीड़ित का उपकार।३।

कृपा-कर सदा पोंछता रहे।
व्यथित पीड़ित जन-लोचन-वारि।
क्लेश विकराल उरग के लिये।
सर्वदा बने सबल उरगारि।४।

दौड़कर पकड़े उनका हाथ।
बहाये जिनको संकट-स्रोत।
आपदा - वारिधि - वारि-निमग्न।
भग्नउर के निमित्त हो पोत।५।

दीन का बंधु दुखी - अवलंब।
रंक का धन अनाथ का नाथ।
जाय बन निराधार-आधार।
पतित की गति प्यासे का पाथ।६।

किन्तु जो करे, करे सविवेक।
स्वार्थ तज धारण करके धर्म।
जान कर्त्तव्य दिव्य रख दृष्टि।
समझकर मानवता का मर्म।७।

करे क्यों कर्म-त्याग का गर्व।
दिखाकर नाना विषय-विराग।

कर्म का त्याग कर सका कौन।
त्याग है कर्म-फलों का त्याग।८।

[७]

कर्म-भोग

१

एक भ्रम है अज्ञान-प्रसूत।
बनाता रहता है जो भ्रान्त।
हुआ कर्त्तव्य - विमूढ़ सदैव।
लोक जिससे हो-हो आक्रान्त।१।

मनुज - उत्साह - कुरंग - निमित्त।
है परम जटिल वह महाजाल।
नहीं पाता विमुक्ति-पथ खोज।
बद्ध जिसमें रह जो चिरकाल।२।

वह समुन्नति-सरि प्रबल प्रवाह।
निरोधक है मरुधरा समान।
जहाँ होता है उसके सरस।
मनोहर जीवन का अवसान।३।

ओज-गिरि-शिखरों पर सब काल।
किया करता है वह पवि-पात।
श्रम-सदन पर गोलों के सदृश।
सदा पहुँचाता है आघात।४।

गिरे जिसमें प्रयत्न - मातंग।
विवश है बनता, है वह गर्त्त।
पड़े जिसमें जन-साहस - पोत।
सदा डूबे, है वह आवर्त्त।५।

लोप होती है, उसमें देख।
वायु-सी दीपक-दीप्ति विरक्ति।
मनुज-जीवन-प्रदीप की ज्योति।
अलौकिक कार्यकारिणी शक्ति।६।

उस प्रभंजन का है वह वेग।
भरी जिसने विपत्ति की गोद।
हुआ जिससे सर्वदा विपन्न।
सकल उद्योग-समूह पयोद।७।

पा सके पता नहीं बुधवृन्द।
बुद्धि की दूरबीन से देख।
थक गई दृष्टि दिव्य से दिव्य।
न दिखलाया लिलार का लेख।८।

२

भाग्य-लिपि मानना बड़ी है भ्रान्ति।
वह पतन गूढ़ गर्त्त की है राह।

वह नदी है भयंकरी दुर्लङ्घ्य।
आज तक मिल सकी न जिसकी थाह।१।

क्यों न उसको मरीचिका लें मान।
है दिखाती सरस सलिल-आवास।
पर सकी मिल न एक बूँद कदापि।
बुझ न पाई कभी किसी की प्यास।२।

है किसी बाँझ बालिका की बात।
जिसका केवल सुना गया है नाम।
पर किसी को मिला नहीं अस्तित्व।
है कहाँ पर धरा कहाँ धन धाम।३।

है कहीं पर नहीं दिखाती नींव।
है कहीं भी जमा न उसका पाँव।
क्यों बतायें उसे न सिकता-भित्ति।
जब कि है भाव का सदैव अभाव।४।

है अमा की तिमिर-भरी वह रात।
कालिमा हो सकी न जिसकी दूर।
और भी हो गई विपत्ति-उपेत।
क्या हुआ जो मिलित हुए शशि सूर।५।

उस गहनता समान है वह गूढ़।
है बनाता जिसे विपिन बहु घोर।

है जहाँ दृष्टि को न मिलता पंथ।
है जहाँ पर विभीषिका सब ओर।६।

वह किसी नट कुवंशिका के तुल्य।
है जगाती अनेक सोये नाग।
बेसुरा बोल फोड़ती है कान।
है भरी छिद्र से घिरी खटराग।७।

है किसी ज्ञान-हीन लोक-निमित्त।
व्योम का पुष्प, मरुमही का नीर।
फेर में पड़ न, क्यों न मुँह लें फेर।
वारि की लीक है लिलार-लकीर।८।

३

भाग्य है अज्ञों का अवलंब।
आलसी का है परमाधार।
गले में पड़े भ्रान्ति का फंद।
लुट गया मणिमुक्ता का हार।१।

दूसरों का आनन अवलोक।
बढ़ गये कर्महीनता प्यार।
मिला मिट्टी में सँचित भोग।
सुखों का सोने का संसार।२।

सो रहे हैं आँखों को मूँद ।
समय पर सके नहीं जो जाग ।
डालकर हाथ-पाँव वे लोग ।
भाग में लगा रहे हैं आग । ३ ।

अचानक हो जाये पविपात ।
या बरस जाये सिर पर फूल ।
भीरुता का है यह उपभोग ।
सदा है भाग्य-भरोसा भूल । ४ ।

लोक को काम-चोर की उक्ति ।
किया करती है अधिक प्रसन्न ।
उसे फल - दल - देते हैं पेड़ ।
धरा से वह पाता है अन्न । ५ ।

बनाता कैसे उसे न मूढ़ ।
अभावों से कर-कर अभिभूत ।
किसी सिर पर जब हुआ सवार ।
भाग्यजीवी अभाग्य का भूत । ६ ।

जब हमारा अति कुत्सित कर्म ।
चलायेगा हम पर करवाल ।
उस समय सुन्दर सरस प्रसून ।
बरस पायेगा नहीं -कपाल । ७ ।

है गढ़ी हुई भाग्य-लिपि बात।
कथा उसकी है परम अलीक।
कहाँ पर मिला भाल का अंक।
कल्पिता है लिलार की लीक। ८।

४

भाग्य का रोना रो-रोकर।
वृथा ही नर घबराता है।
भागता है श्रम से, तब क्यों।
भाग्य को कोसा जाता है। १।

साँसतें सहता है कोई।
तो किये का फल पाता है।
किया उस बेचारे ने क्या।
भाल क्यों ठोंका जाता है। २।

उसी के अपने कर्मों से।
मनुज-कष्टों का नाता है।
क्यों पटकते हैं सिर को वह।
किस लिये पीटा जाता है। ३।

खोलकर नर कानों को जब।
नहीं हित-बातें सुनता है।

बुरी धुन जब जी को भाई।
किस लिये सिर तब धुनता है। ४।
चलें सारी चालें उलटी।
भली बातों से मुँह मोड़ें।
किस लिये माथा तो ठनके।
किस लिये तो सिर को तोड़ें। ५।
काम के काम न कर पायें।
न तो हित की बातें सोचें।
क्यों न तो ठोकर खायेंगे।
चौंककर सिर को क्यों नोचें। ६।
कर्म का मर्म बिना समझे।
सदा जो बने रहे पोंगा।
तो न होगा कुछ सिर पकड़े।
हित नहीं सिर कूटे होगा। ७।
किसी का कर्म-भोग क्या है ?
कर्म को कर्म बनाता है।
क्यों पड़े भाग्य फेर में नर।
कर्म ही भाग्य-विधाता है। ८।

५

पिता-वीर्य माता-रज द्वारा है प्राणी बन पाता।
उनके वैभव का प्रभाव उस पर है प्रचुर दिखाता।

है गढ़ी हुई भाग्य-लिपि बात।
कथा उसकी है परम अलीक।
कहाँ पर मिला भाल का अंक।
कल्पिता है लिलार की लीक। ८।

४

भाग्य का रोना रो-रोकर।
वृथा ही नर घबराता है।
भागता है श्रम से, तब क्यों।
भाग्य को कोसा जाता है। १।

साँसतें सहता है कोई।
तो किये का फल पाता है।
किया उस बेचारे ने क्या।
भाल क्यों ठोंका जाता है। २।

उसी के अपने कर्मों से।
मनुज-कष्टों का नाता है।
क्यों पटकते हैं सिर को वह।
किस लिये पीटा जाता है। ३।

खोलकर नर कानों को जब।
नहीं हित-बातें सुनता है।

बुरी धुन जब जी को भाई।
किस लिये सिर तब धुनता है। ४।
चलें सारी चालें उलटी।
भली बातों से मुँह मोड़ें।
किस लिये माथा तो ठनके।
किस लिये तो सिर को तोड़ें। ५।
काम के काम न कर पायें।
न तो हित की बातें सोचें।
क्यों न तो ठोकर खायेंगे।
चौंककर सिर को क्यों नोचें। ६।
कर्म का मर्म विना समझे।
सदा जो बने रहे पोंगा।
तो न होगा कुछ सिर पकड़े।
हित नहीं सिर कूटे होगा। ७।
किसी का कर्म-भोग क्या है ?
कर्म को कर्म बनाता है।
क्यों पड़े भाग्य फेर में नर।
कर्म ही भाग्य - विधाता है। ८।

५

पिता-वीर्य माता - रज द्वारा है प्राणी बन पाता।
उनके वैभव का प्रभाव उस पर है प्रचुर दिखाता।

एक करतूती है ऐसा।
बोलती है जिसकी तूती ।२।

भले ही गोले चलते हों।
कब सका है जी हिल उनका।
वीर कब घबरा जाते हैं।
दलकता है कब दिल उनका ।३।

थकाहट थका नहीं सकती।
रुकावट रोक नहीं सकती।
काम करनेवाले की धुन।
तोड़ नभ-तारे है लाती ।४।

जो बड़ी जीवट वाले हैं।
न डिगना है उनकी थाती।
कलेजा कभी नहीं हिलता।
सिल बनी रहती है छाती ।५।

साहसी का साहस देखे।
सिड़ें हैं अपना सिर देती।
विदअतें बिदअत सहती हैं।
साँसतें साँस नहीं लेतीं ।६।

सूख जाये समुद्र जो तो।
उसे दम भर में भरते हैं।

काम है कौन नहीं जिसको।
कलेजेवाले करते हैं।७।

पैठते हैं पातालों में।
आसमाँ पर उड़ जाते हैं।
काम जिनको प्यारा है वे।
काम कर नाम कमाते हैं।८।

२

देख उत्ताल तरंगों को।
कार्यरत कब घबराता है।
शक्ति कुंभज-सी धारण कर।
पयोनिधि को पी जाता है।१।

कार्य-पथ का बाधक देखे।
वीर पौरुष से भरता है।
पर्वतों को पवि बन-बनकर।
धूल में परिणत करता है।२।

विलोके मूर्त्ति केशरी की।
गरजती शोणित की प्यासी।
शक्ति वीरों की बनती है।
सर्वदा सिंहवाहना-सी।३।

पुरन्दर के हाथों से भी।
बात कहते वह है छिनता।
वीरवर भरे वीरता में।
वज्र को वज्र नहीं गिनता।४।

सत्य पथ पर चोटें खाये।
नहीं वह करता है 'सी' भी।
कब हुई वीरों को परवा।
त्रिशूली के त्रिशूल की भी।५।

देखकर उनकी बलवत्ता।
सबल का बल भी है टलता।
अलौकिक वीर-चरित्रों पर।
चक्रधर-चक्र नहीं चलता।६।

खलों को खलता का सहना।
वीर को है बहुधा खलता।
किसी पत्थर-सी छाती पर।
वही है सदा मूँग दलता।७।

कर्मरत वीरों का कौशल।
चमकता है रत्नों को जन।
फूल के गुच्छे बनते हैं।
हाथ में पड़ साँपों के फन।८।

३

वज्र को तृण कर देने में।
फड़कती है उसकी नस-नस।
सिन्धु को गोपद करता है।
साहसी का सच्चा साहस।१।

राह में अड़ी अड़चनों को।
चोटियों-सदृश मसलता है।
वीर जब बढ़ता है आगे।
काम करके ही टलता है।२।

काम जब कसकर करती है।
बिगड़ पाता तब कैसे रस।
सिद्धि कृति की मूँठी में है।
हाथ में उसके है पारस।३।

विघ्न हैं विघ्न नहीं करते।
नहीं बाधा बाधा देती।
साहसी का देखे साहस।
आपदा साँस नहीं लेती।४।

यत्न कर लोग रत्न कितने।
कीचड़ों में से पाते हैं।

फल लगा उकठे काठों में।
धूल में फूल खिलाते हैं।५।

बुद्धि के बल से वश में रह।
विविध ढंगों में ढलती है।
बालकर दीपक-मालाएँ।
दामिनी पंखा झलती है।६।

क्या नहीं करता है उद्यम।
कर सके क्या न यत्न न्यारे।
आँख के तारे बन पाये।
करोड़ों कोसों के तारे।७।

खुले ताला के जाती है।
निजी पूँजी देखीभाली।
किन्तु है कर्म करों में ही।
सब सफलताओं की ताली।८।

४

विश्व के थाल में भरा व्यंजन।
बस उसी के लिये परोसा है।
जो खड़ा है स्वपाँव पर होता।
बाहुबल का जिसे भरोसा है।१।

है भरा वित्त जाँघ में जिनकी।
मुँह नहीं ताकते किसी का वे।
कर कमाई कुबेर बन घर में।
बालते हैं प्रदीप घी का वे।२।

यह भरा है उमंग से होता।
इंच-भर वह नहीं उभरता है।
करतबी काम कर कमाता है।
आलसी दैव-दैव करता है।३।

कौन पड़ भाग्य-फेर में पनपा।
आत्मबल है विभूति का दाता।
एक दो बेर को तरसता है।
दूसरा है कुबेर बन जाता।४।

नाम हैं कर्म-भोग का लेते।
पर बने हैं बहुत बड़े भोगी।
भाग्य की भूल में पड़े हैं जब।
तब भलाई न दैव से होगी।५।

चौंक भूले हुए हरिण की-सी।
किस लिये नर छलाँग भरता है।
कर रहा है सदैव मनमानी।
तो वृथा दैव-दैव करता है।६।

जो नहीं आँख खोलकर चलते ।
देखकर देख जो नहीं पाते ।
देव पर भूल जो करें भूलें ।
किस लिये वे न ठोकरें खाते ।७।

हाथ में विश्वशक्ति है उसके ।
वह विबुध-वृन्द-नेत्र-तारा है ।
अन्य बलवान कौन है ऐसा ।
आत्मबल का जिसे सहारा है ।८।

५

नर नभग के सदृश कैसे ।
नभ में उड़ते दिखलाते ।
सुरपुर-विमान जैसे ही ।
क्यों विविध विमान बनाते ।१।

क्यों रेल तार बन पाते ।
क्यों घड़ियाँ घर-घर चलतीं ।
क्यों विपुल दीप-मालाएँ ।
विद्युत-विभूति से बलतीं ।२।

बातें सहस्र कोसों की ।
क्यों घर-बैठे सुन पाते ।

वहु अन्य-देश-गायक क्यों ।
आ पास स्वगाने गाते ।३।

क्यों विविध कलें वन-वनकर ।
दिखलातीं दिव्य कलाएँ ।
वह वल क्यों मिलता जिससे ।
टलती हैं विपुल वलाएँ ।४।

लाखों कोसों की दूरी ।
क्यों परम अल्प हो जाती ।
वहु-दूर-स्थित द्वीपावलि ।
क्यों घर-आँगन वन जाती ।५।

कैसे भावुक को मिलतीं ।
वहु भव-विधायिनी वातें ।
वर ज्योति-विमंडित वनतीं ।
कैसे तमसावृत रातें ।६।

वन-वन विचित्र यंत्रों में ।
अद्भुत क्रीडा-शालाएँ ।
क्यों हार गले का वनतीं ।
मोहक तारक-मालाएँ ।७।

जो कर्म-कुशलता दिखला ।
जागतीं न विज्ञ जमातें ।

कैसे अवगत हो पातीं ।
विज्ञान की विविध बातें ।८।

[९]

कर्मयोग

छप्पै

नयन मनुज के सदा सफलता-मुख अवलोकें ।
दोनों कर बन परम कान्त सुरतरु-फल लोकें ।
उसको बहती मिले मरु-अवनि में रस-धारा ।
वह पाता ही रहे अमरपुर-सा सुख न्यारा ।
कैसे किस साधन के किये ? तो उत्तर होगा यही ।
सब दिनों कर्मरत जो रहा सिद्धि पा सका है वही ।१।
उषा राग को लसित कर्म अनुराग बनाता ।
कर्मसूत्र में बँधा दिवाकर है दिखलाता ।
रजनी-रंजन कर्म कान्त बन है छवि पाता ।
अवनीतल पर सरस सुधारस है बरसाता ।
है करती रहती विश्व को विदित कर्म की माधुरी ।
हो तारकावली से कलित प्रति दिन रजनी सुन्दरी ।२।
परम पवि-हृदय-मेरु-प्रवाहित निर्झर द्वारा ।
प्रस्तर-संकुल अवनि-मध्य-गत सरिता-धारा ।

फल से विलसे विटप रंग लातीं लतिकाएँ।
सौरभ-भरे प्रसून विकच बनती कलिकाएँ।
देती हैं भव को, कर्म की अनुपमता की सूचना।
है कर्म परम पावन सरस सुन्दर भावों में सना ।३।
कैसे मिलते रत्न क्यों उदधि-मंथन होता।
कैसे कार्य-कलाप बीज फल कृति के बोता।
कैसे जडता मध्य जीवनी-धारा बहती।
कैसे वांछित 'सिद्धि' साधना-कर में रहती।
कैसे तो वारिद-वृन्द वर वारि बरस पाते कहीं।
जो कर्म न होता तो रसा सरसा हो सकती नहीं। ४।
कर्महीनता मरण, कर्म-कौशल है जीवन।
सौरभ-रहित सुमन-समान है कर्महीन जन।
तिमिर-भरित अपुनीत इन्द्रियों का वर रवि है।
कर्म परम पाषाण - भूत मानस का पवि है।
है कर्म-त्याग की रगों में परिपूरित निर्जीवता।
है कर्मयोग के सूत्र में बँधी समस्त सजीवता। ५।

[१०]

शार्दूल-विक्रीडित

क्या है कर्म अकर्म धर्म किसको हैं मानते दिव्य-धी।
क्या है पुण्य - विवेक, पाप किसको विद्वज्जनों ने कहा।

मीमांसा इसकी हुई कम नहीं, है आज भी हो रही।
होता है न रहस्य-भेद फिर भी 'धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः'। १।
नाना तर्क-वितर्क हैं विषय हैं वे जो द्विधाग्रस्त हैं।
ऐसे हैं फिर भी विचार कितने जो सत्य-सर्वस्व हैं।
सारे मानवधर्मग्रंथ जिनको हैं तत्त्वतः मानते।
तो भी क्या वसुधा समस्त जन के वे सर्वथा मान्य हैं। २।
प्राणी है परिणाम भूत-चय का, है वृत्ति भी भौतिकी।
पाते हैं उसमें अतः अधिकता भूतोद्भवा भूति की।
होती है पशुता-प्रवृत्ति प्रबला कर्मेन्द्रियासक्ति से।
देती है उसको बना अधमता की मूर्त्ति स्वार्थान्धता। ३।
हो सावेश नहीं मनुष्य करता है कौन-सी क्रूरता।
हो क्रोधान्ध महा अनर्थ करते होता नहीं त्रस्त है।
क्या है बर्बरता महा अधमता क्या दानवी कृत्य है।
प्राणी है यह सोच ही न सकता विक्षिप्त हो वैर से। ४।
चेष्टाएँ कितनी हुईं, तम टले, पापांधता दूर हो।
अत्याचार निरस्त हो, दनुजता हो वज्रपातांकिता।
तो भी क्या पशुता टली, अधमता क्या हो सकी ध्वंसिता।
क्या धी त्रस्त हुई सुने नरक की हृत्कम्पकारी कथा। ५।
तो क्या है यमयातनातिपरुषा क्या है महा भर्त्सना।
तो क्या हैं विकरालमूर्त्ति यम के उद्दंड दूताग्रणी।

जो हो शंकित अल्प भी न उनसे पापीयसी वृत्ति तो।
क्या है वैतरणी विभीषण क्रिया क्या नारकीयाग्नि है। ६।
जो होते कुछ भी सशंक, मति तो होती नहीं तामसी।
हो पाती तमसावृता न दृग की ज्योतिर्मयी दृष्टि भी।
तो व्यापी रहती नहीं हृदय में दुर्वृत्ति की कालिमा।
हैं जो लोग मदांध वे न डरते हैं अंधतामिस्र से। ७।
पाई है उसने प्रभूत पशुता दुर्वृत्तता दानवी।
हिंसा हिंसक जन्तु-सी कुटिलता सर्पाधिराजोपमा।
उत्पात - प्रियता प्रभंजन-समा दुर्दग्धता वह्नि-सी।
कुंभीपाक विपाक बात सुन क्यों काँपे महापातकी। ८।
देता है अलि - डंक-सा दुख उसे जो पंक-निक्षेप हो।
होती है अहि-दंशतुल्य परुषा पीड़ा अवज्ञा हुए।
देखे कीर्त्ति - कलाप - लोप उसको होता महाताप है।
पाता रौरव-वास दीर्घ दुख है खो गौरवों को सुधी। ९।
होते हैं उसके विचार-तरु के पत्ते छुरा-धार से।
देते हैं कर जो विपन्न बहुधा रक्ताक्त उद्बोध को।
जो होके विकलांग भाव उसके होते व्यथाग्रस्त हैं।
तो क्या है असिपत्र-से नरक का वासी नहीं भ्रष्ट-धी।१०।
है दुर्गन्ध - निकेतना कलुषिता निन्द्या जुगुप्सा-भरी।
हैं उन्मादमयी सनी रुधिर से हैं लोक-हिंसारता।

जो हो शंकित अल्प भी न उनसे पापीयसी वृत्ति तो।
क्या है वैतरणी विभीषण क्रिया क्या नारकीयाग्नि है। ६।
जो होते कुछ भी सशंक, मति तो होती नहीं तामसी।
हो पाती तमसावृता न दृग की ज्योतिर्मयी दृष्टि भी।
तो व्यापी रहती नहीं हृदय में दुर्वृत्ति की कालिमा।
हैं जो लोग मदांध वे न डरते हैं अंधतामिस्र से। ७।
पाई है उसने प्रभूत पशुता दुर्वृत्तता दानवी।
हिंसा हिंसक जन्तु-सी कुटिलता सर्पाधिराजोपमा।
उत्पात - प्रियता प्रभंजन-समा दुर्दग्धता वह्नि-सी।
कुंभीपाक विपाक बात सुन क्यों काँपे महापातकी। ८।
देता है अलि - डंक-सा दुख उसे जो पंक-निक्षेप हो।
होती है अहि-दंशतुल्य परुषा पीड़ा अवज्ञा हुए।
देखे कीर्त्ति - कलाप - लोप उसको होता महाताप है।
पाता रौरव-वास दीर्घ दुख है खो गौरवों को सुधी। ९।
होते हैं उसके विचार-तरु के पत्ते छुरा-धार से।
देते हैं कर जो विपन्न बहुधा रक्ताक्त उद्बोध को।
जो होके विकलांग भाव उसके होते व्यथाग्रस्त हैं।
तो क्या है असिपत्र-से नरक का वासी नहीं भ्रष्ट-धी।१०।
है दुर्गन्ध - निकेतना कलुषिता निन्द्या जुगुप्सा-भरी।
हैं उन्मादमयी सनी रुधिर से हैं लोक-हिंसारता।

पाती हैं प्रति यातना निरय की हो लीन दुर्नीति में।
लालाभक्षनिकेतना अललिता लालायिता वृत्तियाँ।१६।
चक्की में पिसते नहीं विवश हो, होते व्यथाग्रस्त क्यों।
कैसे शूकर से कदर्य्य, मुख बा-बा लीलना चाहते।
जो होते न कुकर्म में निरत तो जाता न रेता गला।
कैसे शूकर-आननादि नरकों-सी यंत्रणा भोगते।१७।
देखे दुर्गति पाप में निरत की, कामांध की दुर्दशा।
नाना शूल-समूह से हृदय को पाके बिधा प्रायशः।
बारंबार विलोक मत्त मति को मोहादि से मर्दिता।
होती हैं सुख ज्ञात संडसन की सारी सुनी साँसतें।१८।
होती है सुखिता पिये रुधिर के, है नोचती बोटियाँ।
प्यारा है उसको निपात वह है उत्पात-उत्पादिका।
लेती है प्रिय प्राण प्राणिचय का, है त्राण देती कहाँ।
क्रूरों की कटुतामयी कुटिलता है गृध्रभक्षोपमा।१९।
पक्षी को पशुवृन्द को पटक के हैं पीटती प्रायशः।
बाणों से कर विद्ध गृध्र बन हैं देती बड़ी यंत्रणा।
हैं कोंचा करती सदैव, बढ़के हैं गोलियाँ मारती।
हैं विश्वासन-सी निकृष्ट, नर की मांसाशिनी वृत्तियाँ।२०।
जो होवें वह गृध्र क्षीण खग को चोंचें चला चोंथते।
जो हों निर्बल को विदीर्ण करते हो क्रुद्ध क्रूराग्रणी।

है अग्नि-गर्भ हो जाता।
हिमराशि-विनिर्मित अचल।४।

जो नगर अपर अलका था।
थी जहाँ खिंची सुख-रेखा।
उसको क्षिति हिलते क्षण में।
अन्तर्हित होते देखा।५।

निधिना अवलोक जहाँ की।
था वरुण-कलेजा हिलता।
बहु-योजन-व्यापी भूतल।
है वहाँ अचाध्यक मिलता।६।

अति तरल सलिल कहलाकर।
है बूँद बूँदपन खोती।
है स्रोत सरित बन पाता।
सरि निधि में मिल निधि होती।७।

फिर रही किसी फिरकी-से।
है काल कहीं फुरतीला।
होती रहती है भव में।
पल-पल परिवर्तन-लीला।८।

[२]

है बीज अंकुरित होता।
अंकुर तरु है बन पाता।

हो शाखा - पत्र - सुशोभित।
है तरु प्रसून पा जाता।१।

खिल - खिल प्रसून छविशाली।
बनता है फल का दाता।
फल बीज से भरित होकर।
है सृजन-दृश्य दिखलाता।२।

बहु - वाष्प - समूह सघनता।
है घनमाला कहलाती।
घन है बूँदों से भरता।
बूँदें हैं वारि बनाती।३।

सागर हो या हो वसुधा।
जल कहाँ नहीं दिखलाता।
वह तप - तपकर तापों से।
है पुनः वाष्प बन जाता।४।

तृण हैं मिट्टी में उगते।
मिट्टी में हैं पल पाते।
जल गये, राख होने पर।
मिट्टी में हैं मिल जाते।५।

जो चरे गये पशुओं से।
वे हैं मल बने दिखाते।

फिर बाहर निकल उदर के।
मिट्टी ही हैं हो जाते।६।

ऐसी ही विधियों से ही।
है बना विश्व यह सारा।
चाहे हो कोई रजकण।
या हो नभतल का तारा।७।

है संसृति का संचालन।
है प्रकृति - प्रवृत्ति - प्रवर्त्तन।
है भरित गूढ़ भावों से।
भव का अद्भुत परिवर्त्तन।८।

[३]

जो तपते हुए तवे पर।
कुछ बूँदें हैं पड़ पाती।
तो वे छन - छनकर छन में।
अन्तर्हित हैं हो जाती।१।

समझा जाता है जलकर।
वे हैं विनष्ट हो जाती।
पर वाष्प - रूप में पल में।
वे हैं परिणत हो पाती।२।

जल तेल धूम होता है।
वर्त्तिका राख है बनती।
दीपक के बुझ जाने पर।
है ज्योति ज्योति में मिलती।३।

मरने पर प्राणी-तन को।
पंचत्व प्राप्त होता है।
अजरामर जीव कभी भी।
निज स्वत्व नहीं खोता है।४।

अवसर पर वसन बदलता।
जैसे जन है दिखलाता।
वैसे ही जीव पुरातन।
तन तज, नव तन है पाता।५।

जैसे मिट्टी में मिल तन।
है विविध रूप धर पाता।
तृण-लता गुल्म पादप हो।
बनता है बहु-फल-दाता।६।

वैसे ही निज जीवन का।
होता है वह निर्माता।
अनुकूल योनियों में जा।
है जीव कर्म-फल पाता।७।

है वस्तु - विनाश असंभव ।
बतलाते हैं यह बुध जन ।
है दशा बदलती रहती ।
है मृत्यु एक परिवर्त्तन ।८।

[४]

नैमित्तिक

प्रलय

भले ऊषा आती रहे ।
लिये अञ्जलि में सुमन अपार ।
बनी अनुरंजित कर अनुराग ।
वारती रवि पर मुक्ता-हार ।१।

खग-स्वरों में भर मंजुल नाद ।
सजाये अपना उज्ज्वल गात ।
अरुण अरुणाभा से हो लसित ।
प्रति दिवस आये दिव्य प्रभात ।२।

गगन-मंडल में ज्योति पसार ।
जगमगायें तारे छविधाम ।
दिव्य नंदनवन-सुमन-समान ।
बन परम रम्य लोक अभिराम ।३।

हरित तरु-दल से कर बहु केलि।
परसता लतिका ललित शरीर।
वहन कर सौरभ का संभार।
बहे कुंजों में मंजु समीर।४।

भरा नगरों में रहे विनोद।
सुखों का हो बहुविध विस्तार।
बने अत्यंत प्रफुल्ल त्रिलोक।
विहँसता रहे सकल संसार।५।

ध्वनित हों समय-करों से छिड़े।
प्रकृति - तंत्री के अद्भुत तार।
विश्व - कानों में गूँजा करे।
अलौकिकतम उसकी झंकार।६।

किन्तु क्या उसको, जिसका आज।
टूटता है साँसों का तार।
नहीं जो जुड़ पाता है कभी।
काल-कर का सह सबल प्रहार।७।

गगनचुम्बी उसके प्रासाद।
मोहते रहें, बनें छविमान।
रात में जिनके कलश विलोक।
कलानिधि भी हों मुग्ध महान।८।

लगाये उसके उपवन बाग।
फूल-फल लायें बन छविवन्त।
बढ़ाता उनकी शोभा रहे
समय पर आकर सरस वसन्त।९।

स्नेह-परिपालित सकल कुटुम्ब।
प्रीति में रत पूरा परिवार।
समुन्नत हो पाये सुख भूरि।
बने बहु वैभव-पारावार।१०।

किया जिन भावों का उपयोग।
लिया जिन मधुर रसों का स्वाद।
बनें वे उन्नत पाकर समय।
या बताये जावें अपवाद।११।

कलित क्रीड़ाओं के प्रिय धाम।
घूमने-फिरने के मैदान।
सुसज्जित विलसित हों सर्वदा।
या बनें प्रेत-निवासस्थान।१२।

क्या उसे जिसकी ग्रीवा-मध्य।
अचान्चक पड़ा काल का फन्द।
समय के फरफन्दों में फँसे।
हो गईं जिसकी आँखें बन्द।१३।

बनेगा पाँच तत्त्व की मूर्ति।
मरे पर, पाँच तत्त्व का गात।
ज्योति में मिल जायेगी ज्योति।
वात में मिल पायेगा वात।१४।

व्योम में समा जायगा व्योम।
नीर भी बन जायेगा नीर।
मृत्तिका में होयेगा मग्न।
मृत्तिका से संभूत शरीर।१५।

कर्म-अनुसार लाभ कर योनि।
जीव पा जाता है तन अन्य।
किन्तु व्यक्तित्व किसी का कभी।
यों नहीं हो पाता है धन्य।१६।

व्यक्ति में रहता है व्यक्तित्व।
उसी से है उसका संबंध।
पर मिला एक वार वह कभी।
नियति का है यह गूढ़ प्रबंध।१७।

पंचतन्मात्राओं का मिलन।
लाभ कर आत्मा का संसर्ग।
प्राणियों का करता है सृजन।
पृथक होते हैं जिनके वर्ग।१८।

वर्ग में परिचय का प्रिय कार्य।
कर सका है केवल व्यक्तित्व।
विना व्यक्तित्व महत्त्व-विकास।
व्यर्थ हो जाता है अस्तित्व।१९।

मिल सका किसे पूर्व व्यक्तित्व।
जन्म ले-लेकर भी शत बार।
मरे के लिये सभी मर गया।
भले ही मरा न हो संसार।२०।

गमन है पुनरागमन-विहीन।
भाव है सकल अभाव-निलय।
कहा जाता है भय-सर्वस्व।
मरण माना जाता है प्रलय।२१।

[५]

जगद्विजयी उठता है काँप।
कान में पड़े काल का नाम।
मृत्यु का भीषण दृश्य विलोक।
न लेगा कौन कलेजा थाम।१।

यही है वह कराल यमदण्ड।
दहलता है जिससे संसार।

वार बेकार न जिसकी हुई।
यही है वह बाँकी तलवार।२।

यही है काली की वह जीभ।
लपलपाती अतीव विकराल।
जिसे है सृष्टि देखती सदा।
करोड़ों के लोहू से लाल।३।

यही है वह त्रिनेत्र का नेत्र।
खुले जिसके होता है प्रलय।
ज्वाल से जिसके हो-हो दग्ध।
भस्म होता है विश्व-वलय।४।

यही है वह रण का उन्माद।
कटाये जिसने लाखों शीश :
प्रहारों से जिसके हो व्रणित।
रुधिर-धारा में बहे क्षितीश।५।

यही है वह जल-प्लावन जो कि।
देश को करता है उत्सन्न।
प्राणियों का लेता है प्राण।
बनाकर उनको विपुल विपन्न।६।

यही है वह भारी भूकंप।
काल का जो है महाप्रकोप।

धरा का फट जाता है हृदय।
हुए लाखों लोगों का लोप।७।

अयुत-फणधर का है फुफकार।
भीतिमय है भौतिक उत्पात।

मरण है वज्रपात-सन्देश।
है महा सांघातिक आघात।८।

सशंकित हुआ कहाँ कब कौन।
प्रलय का अवलोके भ्रू वंक।

विश्व के अन्तर में है व्याप्त।
प्रलय से अधिक मरण-आतंक।९।

[६]

क्षणिक जीवन के विविध विचार।
कीर्त्ति-रक्षण के नाना भाव।

स्वर्ग-सुख-लाभ, नरक-आतंक।
संकटों से बचने के चाव।१।

कराते हैं नर से शुभ कर्म।
भिन्न होते हैं उनके रूप।

साधनाएँ होती हैं सधी।
साधकों की रुचि के अनुरूप।२।

मंदिरों के चमकीले कलश।
लगाये हरे-भरे बहु बाग।
सरों में उठती तरल तरंग।
सुर-यजन-पूजन का अनुराग।३।

भंग यदि कर पायें निज मौन।
तो बतायेंगे वे यह बात।
सभी हैं स्वर्गलाभ के यत्न।
कीर्त्ति-रक्षण इच्छा-संजात।४।

विरागी जन का गृह-वैराग्य।
तापसों के नाना तप-योग।
त्यागियों के कितने ही त्याग।
शान्ति-कामुक के शान्ति-प्रयोग।५।

विपद्-निपतित का पूजा-पाठ।
विनय से भरी विपन्न पुकार।
मुक्ति के सुपथों का संधान।
मृत्युभय के ही हैं प्रतिकार। ६।

संकटों के संहारनिमित्त।
किये जाते हैं जितने कर्म।
पुण्य के उपकारक उपकरण।
जिन्हें माना जाता है धर्म। ७।

भाव वे जो होते हैं सुखित।
दीन-दुखियों को दान दिला।
सर्वों में अवलोके दृग खोल।
मृत्यु का भय प्रतिबिंबित मिला। ८।

काल है बहुत बड़ा विकराल।
हो सका उसका कभी न अन्त।
वंक भृकुटी उसकी अवलोक।
दैव बनता है महा दुरन्त। ९।

बहाता है वह हो-हो कुपित।
जग-दृगों से जितनी जलधार।
कँपाता है वह जितने हृदय।
बहु व्यथाएँ दे बारम्बार।१०।

अचाञ्चक जितनों पर सब काल।
किया करता है वह पवि-पात।
मचाता रहता है जी खोल।
जगत में वह जितना उत्पात। ११।

कर सका है उतना कब कौन।
हो सका कब उसका अनुमान।
भयंकर ऐसा है यह रोग।
नहीं जिसका हो सका निदान। १२।

मरण-भय का ही है परिणाम।
विश्व का प्रबल निराशावाद।
श्रवणगत होता है सब ओर।
उर कँपाकर जिसका गुरु नाद। १३।

क्षणिकता जीवन की अवलोक।
बन गया है असार संसार।
कहाँ है ठीक-ठीक बज रहा।
आज आशा-तंत्री का तार। १४।

विरागी जन के कुछ साहित्य।
सुनाते हैं वह निर्मम राग।
बना जिससे बहु जीवन व्यर्थ।
ग्रहण कर महा अवांछित त्याग। १५।

मृत्यु के पंजे में पड़ गये।
छूटता है सारा संसार।
मिटा करता है वह व्यक्तित्व।
नहीं मिल पाता जो दो बार। १६।

रही जो हृदयेश्वरी सदैव।
प्रीति की मूर्त्ति जो गई कहीं।
कलेजे के टुकड़े जो बने।
आँख की पुतली जो कि रही। १७।

जब बालू की भीत के सदृश
पतनशील है प्राणी।
तब किसलिये किसी का कोई
क्यों है गला दबाता।
ओले के समान जब जन-तन
है गलता दिखलाता। ३।
तब क्यों बार-बार कल-छल कर
है बलवान कहाता।
जब बुलबुले-समान बात कहते
है मनुज बिलाता।
उथल-पथल किसलिये मचाता है
तब कोई पल-पल।
चलदल-दल-गत सलिल-बिन्दु-सम
जब जीवन है चंचल। ४।

प्रलय-प्रसंग

[८]

खुले, रजनी में निद्रा-गोद।
जब शयन करता है मनुजात।
अंक में उसके रखकर शीश।
भूलकर भव की सारी बात। १।

सुषुप्तावस्था का यह काल।
कहा जाता है नित्य प्रलय।
क्योंकि हो जाता है उस समय।
गहन निद्रा में भव का लय।२।

मृतक के लिये विना क्षय हुए।
क्षयित होता है विश्व-वलय।
अतः प्राणी का प्राण - प्रयाण।
कहाता है नैमित्तिक प्रलय।३।

मनोहर लोक-विलोचन-चोर।
गगन-सर-सरसीरुह अभिराम।
तामसी रजनी के सर्वस्व।
जगमगाते तारे छवि-धाम।४।

धरातल - जैसे ही हैं ओक।
अतः उनका भी होगा नाश।
एक दिन वे, हो बहुशः खंड।
गँवायेंगे निज दिव्य प्रकाश।५।

बना नभ-तल को ज्योति-निकेत।
हुआ करता है उल्कापात।
और क्या है ? वह है, द्युतिप्राप्त—
मृतक तारक-तनांश-विनिपात।६।

धरा पर लाखों बरसों बाद।
काल का जब होगा आघात।
उस समय उसके भी तन-खंड।
करेंगे अरबों उल्कापात। ७।

पिंड हो या हो कोई लोक।
जब कि उसका होता है नाश।
है महाप्रलय कहाता वही।
प्राकृतिक है यह भव अवकाश। ८।

सकल लोकों का करके नाश।
प्रकृति को दे देना विश्राम।
बनाना भव को तिमिराच्छन्न।
है महा महाप्रलय का काम। ९।

काल का है प्रकाण्ड व्यापार।
प्रकृति का विध्वंसक आरोप।
लोप-लीलाओं का है केन्द्र।
लोक कम्पित कर प्रलय-प्रकोप।१०।

[९]

काल-सागर में बन निस्सार।
एक दिन डूबेगा संसार। १।

तब दिवस-मणि मणिता कर लाभ।
न मण्डित हो पायेगा व्योम।
न रजनी के रंजन के हेतु।
विलस हँस रस बरसेगा सोम।
करेगा नभतल में न विहार।२।

ललकते लोचन के सर्वस्व।
मनोहर मोहक परम ललाम।
गगनतल के तारक-समुदाय।
न बन पायेंगे, हो छविधाम।
प्रकृति-उर-विलसित मुक्ता-हार।३।

विहँसती लसती भरी उमंग।
रंगिणी ऊषा प्रातःकाल।
खुले प्राची-दिगंगना-द्वार।
न झाँकेगी घूँघट-पट टाल।
लिये रवि-पूजन का संभार।४।

सुनाता बड़े रसीले राग।
बहाता गात-विमोहक वात।
खिलाता सुन्दर सरस प्रसून।
न आयेगा उत्फुल्ल प्रभात।
कर जगत में नव ज्योति-प्रसार।५।

धरा पर उज्ज्वल चादर डाल।
रजकणों को कर रजत-समान।
दलन कर रजनी का तमतोम।
दृगों को कर दिव्यता-प्रदान।
दिखायेंगे न दमकते वार। ६।

गगनतल-चुम्बी मेरु-समूह।
न पहनेंगे कमनीय किरीट।
कलित कर से उनपर राकेश।
सकेगा नहीं छुटाएँ छींट।
न शृंगों का होगा शृंगार। ७।

दिखायेंगे न दिव्यतम दृश्य।
विरचकर विचित्रतामय वेश।
विविधताओं से हो परिपूर्ण।
बड़े ही सुन्दर बहुशः देश।
करेंगे नहीं विभव-विस्तार। ८।

वहन कर बहु विभूति-अनुभूति।
सृजन कर सरस हृदय-समुदाय।
ग्रहण कर नूतनता-संपत्ति।
नागरिकतामय नगर-निकाय।
न खोलेंगे विमुग्धता-द्वार। ९।

करेंगी उन्हें नहीं अति कान्त।
नवल कोमल किसलय कर दान।
बना पादपचय को हरिताभ।
तानकर सुन्दर लता-वितान।
वनों में लसित वसंत-बहार।१०।

करेंगे कलिका का न विकास।
परसकर उसका मृदुल शरीर।
करेंगे सुमन को न उत्फुल्ल।
डुलाकर मंजुल व्यजन समीर।
प्रकृति के कर अतीव सुकुमार।११।

करेगा नहीं मनों को मुग्ध।
भरेगा नहीं मही में मोद।
बनायेगा न वृत्ति को मत्त।
वस्तुओं में भर भूरि विनोद।
सरसतम ऋतुओं का संचार।१२।

न होगी कहीं जागती ज्योति।
कहीं भी होगा नहीं प्रकाश।
भर गया होगा तम सब ओर।
हो गया होगा भव का नाश।
वाष्पमय होगा सब व्यापार।१३।

अचिन्तित है यह गूढ़ रहस्य।
भले ही कह लें इसे परत्र।
और क्या कहें, कहें क्यों ? किन्तु
भरा होगा इसमें सर्वत्र।
सकल लोकों का हाहाकार।१४।

[१०]

एक दिन आयेगा ऐसा।
घहरते आयेंगे बहु घन।
लगेगा लगातार होने।
कम्पिता भू पर वज्र-पतन।१।

पसारे हाथ न सूझेगा।
तिमिर छा जायेगा इतना।
न अनुमिति हो पायेगी, वह।
बनेगा घनीभूत कितना।२।

मेघ कर महाघोर गर्जन।
करेगा लोकों को स्तंभित।
जल बरस मूसलधारों से।
बना वसुधातल को प्लावित।३।

डुबा देगा समस्त महि को।
बना सर-सरिताओं को निधि।

महा उत्ताल तरंगों से।
तरंगित विस्तृत हो वारिधि। ४।

सहस्रानन कृतान्त - व्रत ले।
विष-वमन अयुत मुखों से कर।
करेगा सहलाहल महि को।
ककुभ में बहु कोलाहल भर। ५।

भय-भरे सारे भुवनों के।
बहु निकट बहुधा हो-हो उदय।
दिवाकर निज प्रचंड कर से।
करेगा भव को पावकमय। ६।

जायगा खुल प्रलयंकर का।
तीसरा अति भीषण लोचन।
बनेगा जिससे ज्वालामय।
सकल लोकों का कंपित तन। ७।

सकल ओकों को लोकों को।
सकल ब्रह्मांडों को छन-छन।
दलित मर्दित ध्वंसित दग्धित।
करेगा शिव - तांडव - नर्त्तन। ८।

पतित यों होंगे तारकचय।
उठे कर के आघातों से।

गिरा करते हैं जैसे फल।
प्रभंजन के उत्पातों से।९।

पदों के प्रबल प्रहारों से।
विचूर्णित होगा वसुधातल।
विताड़ित होकर, जायेगा—
कचूमर पातालों का निकल।१०।

समय-आघातों से इतना।
बिगड़ जायेगा आकर्षण।
परस्पर टकरा, तारों का।
अधिक निपतन होगा प्रतिक्षण।११।

बनेगा महालोम-हर्षण।
उस समय अन्तक-मुख-व्यादन।
कालिका लेलिहान जिह्वा।
काल का विकट कराल वदन।१२।

गगन में होगा परिपूरित।
प्रचुरता से विनाश का कण।
लोक में होगा कोलाहल।
वायु में होगा भरा मरण।१३।

नियति-दृग के सम्मुख होगा।
विश्व - हृत्कंपितकारी तम।

प्रकृति-कर से चलता होगा।
काल-जैसा विस्फोटक बम।१४।

रहेगा छाया सन्नाटा।
समय का मुख नीरव होगा।
अवस्था होवेगी प्रकृतिस्थ।
सूक्ष्मतम अणुगत भव होगा।१५।

[११]

शार्दूल-विक्रीडित

है पाताल-पता कहाँ, गगन भी है सर्वथा शून्य ही।
भू है लोक अवश्य, किन्तु वह क्या है एक तारा नहीं।
संख्यातीत समस्त तारक-धरा के तुल्य ही लोक हैं।
लोकों की गणना भला कब हुई, होगी कभी भी नहीं।१।

क्या की है, यह सोचके, विबुध ने लोकत्रयी-कल्पना।
जो हैं ज्ञापित नाम से वसुमती, आकाश, पाताल के।
तारे हैं नभ में अतः गगन ही संकेत है सर्व का।
जो हो, किन्तु रहस्य लोकचय का अद्यापि अज्ञात है।२।

तारों में कितने सहस्रकर से भी सौगुने हैं बड़े।
ऐसे हैं कुछ सूर्य ज्योति जिनकी भू में न आई अभी।
होता है यह प्रश्न, क्या प्रलय में हैं ध्वंस होते सभी।
है वैज्ञानिक धारणा कि इसकी संभावना है नहीं।३।

ज्यों भू में बहु जीव नित्य मरते होते समुत्पन्न हैं।
वैसे ही नभ-मध्य नित्य बनते हैं छीजते लोक भी।
है स्वाभाविक प्रक्रिया यदि यही, तत्काल ही साथ ही।
सारे तारक-व्यूह का विलय तो क्यों मान लेगा सुधी। ४।

शंकाएँ इस भाँति की बहु हुईं, हैं आज भी हो रही।
है सिद्धान्त-विभेद भी कम नहीं, है तर्क-सीमा नहीं।
तो भी है यह बात सत्य, पहले जो विश्व सूक्ष्माणु था।
सो कालान्तर में पुनः यदि बने सूक्ष्माणु वैचित्र्य क्या। ५।

वेदों से यह बात ज्ञात विबुधों के वृन्द को है हुई।
जो है सक्रिय भाग सर्व भव का सो तो चतुर्थांश है।
है शेषांश क्रिया-विहीन, अब भी, जो सर्वथा रिक्त है।
कैसी अद्भुत गूढ़ उक्ति यह है, सत्ता महत्तांकिता। ६।

जो है निष्क्रिय तीन अंश कृतियाँ जो हैं चतुर्थांश में।
पायेगा भव पूर्णता कब? इसे क्यों धी सकेगी बता।
होवेगा कब नाश सर्व भव का? कोई इसे क्यों कहे।
ये बातें मन-बुद्धि-गोचर नहीं, प्रायः अविज्ञेय हैं। ७।

शास्त्रों में विधि-कल्प के प्रलय के कालादि की कल्पना।
है गंभीर विचार-भाव-भरिता विद्वज्जनोद्बोधिनी।
तो भी वे कह नेति-नेति वसुधा को हैं बताते यही।
है संसार रहस्य, है प्रकृति की मायातिमायाविनी। ८।

जो पूरे परमाणु-वाद-रत हैं, विज्ञान-सर्वस्व हैं।
वे भी देख विचित्रता प्रकृति की होते जडोभूत हैं।
क्यों कोई खग विश्वव्याप्त नभ की देगा इयत्ता बता।
कोई कीट वसुंधरा-विभव का क्यों पा सकेगा पता। ९।

आविष्कारक कर्मशील बहुशः हैं मेदिनी में हुए।
इच्छा के अनुकूल कूल पर जा हैं शोध भूयः किये।
पाये हैं उनके प्रयत्न-कर ने प्रायः कई रत्न भी।
संसारांबुधिरत्नराशि फिर भी दुष्प्राप्य दुर्बोध है। १०।

आके भूतल में विलोक निशि में आकाश-दृश्यावली।
होता है मनुजात बुद्धिहत-सा सोचे स्वअल्पज्ञता।
पाये हैं कुछ बुद्धिमान जन ने एकाध मोती कहीं।
बेजाने संसार-सिंधु अब भी छाने बिना है पड़ा। ११।

वे थे शक्ति-निधान साथ उनका था दानवों ने दिया।
क्या है मानव-शक्ति, और उसकी क्या है क्रियाशीलता।
मेधावी सुर ने समुद्र मथ के जो रत्न पाये गिने।
तो क्यों रत्न-समूह विश्व-निधि के पाते धरा स्वल्पधी। १२।

त्रयोदश सर्ग

कान्त कल्पना

सिन्दूर

[१]

सिखाये अनुरंजन का मंत्र।
जमाये अनुपम अपना रंग।
लोक-हित-पंकज-पुंज-निमित्त।
कहाये विलसित बाल-पतंग। १।

भरे रग-रग में भव-अनुराग।
मानसों को कर बहु अभिराम।
रखे शुचि रुचि की लाली मंजु।
लालिमा दिखला परम ललाम। २।

सिद्ध हो कल कृति-नयन-निमित्त।
अलौकिक रस-अंकित वह विन्दु।
याद आता है जिसे विलोक।
सुधारस-वर्षणकारी इन्दु। ३।

लाभ कर हृदय-रंजिनी कान्ति।
लाल हो लसित लालसा-ओक।

उसे, है जिसे, लोक-हित प्यार।
दिखा अवलोकनीय आलोक। ४।

मंजु आरंजित मुख का राग।
करे जन-जन रंजन भरपूर।
बने वसुधा सोहाग-सर्वस्व।
भारती-भूति-भाल-सिन्दूर। ५।

प्रभाकर

[२]

दृगों पर पड़ा असित परदा।
उरों में अँधियाला छाया।
समाया नस-नस में तामस।
भरा तम घर - घर में पाया। १।

ज्योति के लिये न फिर कैसे।
दुखित जनता-मानस तरसे।
प्रभाकर भारत-भूतल का।
तिमिर हर लो सहस्र कर से। २।

[३]

अरुणता अरुण नहीं पाता।
उषा क्यों आरंजित होती।

विभा का बीज धरातल में।
कान्त किरणावलि क्यों बोती। १।

गिरि-शिखर क्यों शोभा पाता।
मणि-जटित कल किरीट पाकर।
ललित क्यों लतिकाएँ होतीं।
मंजुतम मुक्ताओं से भर। २।

सरि-सरोवर में क्यों बिछतीं।
चादरें स्वर्ण-तार-विरचित।
अंक प्राची का क्यों लसता।
विपुल हीरक-चय से हो खचित। ३।

कंठ क्यों खुलता विहगों का।
कुसुम-कुल-कलिका क्यों खिलती।
विलसता क्यों प्रभात का मुख।
प्रभाकर-प्रभा जो न मिलती। ४।

[४]

क्षपाकर की छवि छिनती है।
तेजहत होते हैं तारे।
गिरि-गुहा में तम छिपता है।
बने अंधे निशिचर सारे। १।

उसे कहते दिल दुखता है।
यामिनो लुटती है जैसी।
कहें क्या ऐसी विभुता को।
प्रभाकर यह प्रभुता कैसी। २।

आलोक

[५]

भरत-सुत का मुख अति कमनीय।
हो गया है श्रीहीन नितान्त।
क्या पुनः पूर्व तेज कर प्राप्त।
बनेगा नहीं कलानिधि कान्त। १।
जगी जगती में जिसकी ज्योति।
समालोकित कर सारे ओक।
करेगी क्या भारत-भू लाभ।
फिर अलौकिकतम वह आलोक। २।

[६]

मत मिले तारकचय की ज्योति।
भले ही उगे न मंजु मयंक।
न दीखे दीपावलि की दीप्ति।
छिपाये चपला को घन अंक। १।

प्रभा पायेगा पूत प्रभात।
समालोकित होंगे सब ओक।
बनेगा दिवा दिव्य-से-दिव्य।
दिवापति का पाकर आलोक। २।

चारु चरित

[७]

किसके लालन-पालन से है रहती मुख की लाली।
भूतल में किसके कर से प्रतिपत्ति गई प्रतिपाली।
किसका आनन अवलोकन कर मानवता है जीती।
सुरुचि-चकोरी किस मयंक-मुख का मयूख है पीती। १।
कुजन लौह किस पारस के परसे है सोना बनता।
किसका कीर्त्ति - वितान सकल वसुधातल में है तनता।
किसके दिव्यभूत मुख पर है वह आलोक दिखाता।
जिसे विलोक कलंक - तिमिर का है विलोप हो जाता। २।
किसके दृष्टिपूत दृग में है वह लालिमा विलसती।
जिसके बल से अनुरंजनता है वसुधा में बसती।
किसका तेजःपुंज कलेवर वह कौशल करता है।
जो तामसी वृत्ति रजनी में दिव्य ज्योति भरता है। ३।
किसका मंजुल मनोभाव है वह फल कुसुम खिलाता।
जिसके सौरभ से मन-उपवन है सुरभित हो जाता।

है किसकी अनुपम कृपालुता कल्पद्रुम की छाया।
पा जिसका अवलम्बन मानव ने वांछित फल पाया। ४।
किसके अंकुश में मद - सा मदमत्त द्विरद दिखलाया।
किसे मोहती नहीं काम की महामोहिनी माया।
किसको ललना-लोल-नयन लालायित नहीं बनाता।
कुसुमायुध के आयुध को है कौन कुसुम कर पाता। ५।
किसे लोभ को ललितभूत लहरें हैं नहीं नचाती।
किसके सम्मुख लोक - लालसाएँ हैं ललक न आती।
कामद सुखद वरद बहु रसमय परम मनोहर प्यारी।
है किसकी कमनीय कामना कामधेनु - सी न्यारी। ६।
जो कोपानल मति - विलोप का साधन है हो पाता।
जिसका धूम विवेक - विलोचन को है अंध बनाता।
जो अन्तस्तल को विदग्ध कर - कर है बहुत सताता।
वह आकर किसके समीप है तेज - पुंज बन जाता। ७।
किसपर कभी मोह ने अपनी नहीं मोहनी डाली।
किसकी ममता गई लोक - ममता - रंगत में ढाली।
किसके दिव्य दिवस हैं किसकी विभामयी हैं रातें।
परम पुनीत विभूति - भरित हैं चारु चरित की बातें। ८।

[८]

मनुज - कुल मंजुल मानस-हंस।
मनुजता-कलिका कलित विकास।

सुरुचि-सरसी का सलिल ललाम।
कामना कान्त कमलिनी-वास। १।
कीर्त्ति - कौमुदी कौमुदीनाथ।
सुकृति-सरिता का सरस प्रवाह।
ख्याति महिला का है सर्वस्व।
पूत जीवन पावन अवगाह। २।
वह मुकुर है वह जिसमें सांग।
हुए प्रतिविम्बित शुचितम भाव।
कुजन-अय को करता है स्वर्ण।
डाल पारस-सा प्रमित प्रभाव। ३।
बता पतितों को अपतन-मंत्र।
लाभ की उसने कीर्त्ति महान।
कुमति को पढ़ा सुमति का पाठ।
अगति को करके प्रगति-प्रदान। ४।
वह जलद है वह जिसका वारि।
हो सका हितकर सुधा-समान।
बन सके मरु-से जीवन-हीन।
कृपा से किसकी जीवनवान। ५।
बो सके अवनी में वे वीज।
उसी के कर नितान्त कमनीय।

उगे जिससे वे पादप-पुंज।
बने जो सुरतरु-से महनीय। ६।

मिले बल उसका बढ़ा समाज।
लाभ कर लोक-रंजिनी ख्याति।
हो गये हरे-भरे बहु वंश।
फली-फूली उससे सब जाति। ७।

मनुज-जीवन होता है धन्य।
सफल बनते हैं सारे यत्न।
हो सका महिमावान न कौन।
पा गये चारु चरित-सा रत्न। ८।

मधुकर

[९]

भूलता भ्रमरी को कैसे।
भाँवरें क्यों भरता फिरता।
सुविकसित सुमन - समूहों पर।
मत्त बन - बनकर क्यों गिरता। १।

किसलिये काँटों से छिदता।
किसलिये तन की सुध खोता।
कमल में कैसे बँध जाता।
जो न मधुरत मधुकर होता। २।

सन्देश

[१०]

भले ही हो मेरा मुख बन्द।
सजल दृग क्यों न सके अवलोक।
हाँ परम कुंठित है मम कंठ।
क्या नहीं मुखरित मानस ओक। १।

किसी अन्तर्दर्शी को छोड़।
कौन अन्तर-तर सका विलोक।
तिमिरमय हो सारा संसार।
कौन है सकल लोक-आलोक। २।

परम नीरव हो अन्तर्नाद।
किन्तु हैं अन्तर्यामी आप।
मुझे है इतना भी न विवेक।
पुण्य क्या है प्रभु क्या है पाप। ३।

महा अद्भुत है विश्व-विधान।
बुद्धि क्यों उसमें करे प्रवेश।
क्या कहूँ और कहूँ किस भाँति।
मौन ही है मेरा सन्देश। ४।

भेद

[११]

भेद तब कैसे बतलायें।
भेद जब जान नहीं पाते।
फूल क्यों महँक-महँककर यों।
दूसरों को हैं महँकाते। १।
किसलिये खिल-खिल हँसते हैं।
किसलिये वे मुसकाते हैं।
देख करके किसकी रंगत।
फूल फूले न समाते हैं। २।

कमनीय कामना

[१२]

बहु गौरवित दिखाये जाये न गर्व से गिर।
सब काल हिम-अचल-सा ऊँचा उठा रहे शिर।
अविनय - कुहेलिका से हो अल्प भी न मैली।
सब ओर सित सिता-सी हो कान्त कीर्त्ति फैली। १।
विलसे बने मनोहर बहु दिव्यभूत कर से।
संस्कृति - सरोजिनी हो सरसाति स्वत्व सरसे।
भावे स्वकीयता ही परकीयता न प्यारी।
जातीयता - तुला पर ममता तुले हमारी। २।

न विलासिता लुभाये न विभूति देख भूले।
कृति-कंजिनी विलोके सद्भाव-भानु फूले।
उसको बुरी लगन की लगती रहें न लातें।
न विवेक-हंस भूले निज नीर-क्षीर बातें। ३।
तन-सुख-सेवार में फँस गौरव रहे न खोती।
संसार-मानसर में मति क्यों चुगे न मोती।
लगते कलंक को वे क्यों लाग से न धोयें।
कैसे कुलांगनाएँ कुल का ममत्व खोयें। ४।
खारी कुभावनाएँ जायें सदैव पीसी।
कमनीय कामनाएँ हों कल्पवेलि की-सी।
सुविभूतिदायिनी हो बन सिद्धि-सहचरी-सी।
हो साधना पुनीता सब काल सुरसरी-सी। ५।
मानस-मयंक-जैसा हँस-हँस रहे सरसता।
सब पर रहे मनुजता सुन्दर सुधा बरसता।
करके विमुग्ध भव को निज दिव्य दृश्य द्वारा।
उज्ज्वल रहे सदा ही चित-चित्रपट हमारा। ६।

[१३]

बादल की बातें

क्यों भरे रहते हैं इतने।
लाल-पीले क्यों होते हैं।

बाँधकर झड़ी आँसुओं की।
किसलिये बादल रोते हैं। १।
रंग बिगड़ा जो औरों का।
घरों में तो वे क्यों पैठे।
ताकते मिले राह किसकी।
पहाड़ों पर पहरों बैठे। २।
किसलिये ऊपर-नीचे हो।
चोट पर चोटें सहते हैं।
चाट से क्यों गिरि-चोटी के।
चाटते तलवा रहते हैं। ३।
तरस खाकर भी कितनों को।
वे बहुत ही तरसाते हैं।
कभी तर करते रहते हैं।
कभी मोती बरसाते हैं। ४।
क्यों बहुत ऊपर उठते हैं।
किसलिये नीचे गिरते हैं।
किसलिये देख-देख उनको।
कलेजे कितने चिरते हैं। ५।
कभी क्यों पिघल पसीजे रह।
प्यार से वे जाते हैं भर।

कभी क्यों गरज-गरज बादल।
मारते रहते हैं पत्थर ।६

हवा को हवा बताते या।
हवा हित के दम भरते हैं।

भागते फिरते हैं घन या।
हवा से बातें करते हैं।७

बरसता रहता है जल या।
आँख से आँसू छनता है।

कौन-से दुख से बादल का।
कलेजा छलनी बनता है।८

दिखाकर अपना श्यामल तन।
कौन-से रस से भरते हैं।

घेरते घिरते आकर घन।
किन दिलों में घर करते हैं।९

जब मिले मिले पसीजे ही।
सके रस-बूँदों में भी ढल।

रंग अपना क्यों पानी खो।
बदलते रहते हैं बादल।१०

शारद-सुषमा

[१४]

लसी क्यों नवल वधूटी-सी।
नीलिमा नीले नभ-तल की।
रँगीली उषा अंक में भर।
लालिमा क्यों छगुनी छलकी। १।

चन्द्र है मंद-मंद हँसता।
चाँदनी क्यों यों खिलती है।
बता दो आज दिग्वधू क्यों।
मंजु मुसुकाती मिलती है। २।

वेलियाँ क्यों अलवेली बन।
दिखाती हैं अलवेलापन।
पेड़ क्यों लिये डालियाँ हैं।
फूल क्यो वैठे हैं बन-ठन। ३।

तितलियाँ नाच रही हैं क्यों।
गीत क्यों कीचक गाते हैं।
चहकती हैं क्यों यों चिड़ियाँ।
मधुप क्यों मत्त दिखाते हैं। ४।

विमलसलिला सरिताएँ क्यों।
मधुर कल-कल ध्वनि करती हैं।

क्यों ललित लीलामय लहरें।
मंजु भावों से भरती हैं। ५।

हिम-मुकुट हीरक-चय-मंडित।
नगनिकर ने क्यों पाया है।
धवलता मिस वसुधा-तल पर।
क्षीर-निधि क्यों लहराया है। ६।

सर कमल-कुल लोचन खोले।
किसे अवलोकन करते हैं।
कान्त कूलों पर सारस क्यों।
सरसता-सहित विचरते हैं। ७।

पहनकर सजी सिता साड़ी।
तारकावलि मुक्तामाला।
आ रही है क्या विधु-वदना।
शरद-ऋतु-सी सुरपुर-बाला। ८।

कुसुमाकर

[१५]

बनाते क्यों हैं मन को मुग्ध।
गूँजते फिरते मत्त मिलिन्द।
कोंपलों से बन-बन बहु कान्त।
भरे फल-फूलों से तरु-वृन्द। १।

अनारों-कचनारों के पेड़।
लाभ कर अनुरंजन का माल।
किस ललक का रखते हैं रंग।
लाल फूलों से होकर लाल।२।

कलाएँ कौन लाल की देख।
कर रही हैं लोकोत्तर काम।
कालिमा-अंक को बना कान्त।
पलाशों की लालिमा ललाम।३।

पा गये रंजित रुचिर पराग।
किसलिये हैं पुलकित जलजात।
मिले बहु विकसित कुसुम-समूह।
हुआ क्यों लसित लता का गात।४।

क्यों गुलाबी रंगत में डूब।
गुलाबों में झलका अनुराग।
खिले हैं क्यों गेंदे के फूल।
बाँधकर सिर पर पीली पाग।५।

तितलियाँ क्यों करती हैं नृत्य।
पहनकर रंग-बिरंगे चीर।
वहन कर सौरभ का संभार।
चल रहा है क्यों मलय-समीर।६।

दिशाओं को कर ध्वनित नितान्त ।
सुनाता है क्यों पंचम तान ।
बनाता है क्यों बहु उन्मत्त ।
कोकिलों का उन्मादक गान ।७।

याद कर किसका अनुपम रूप ।
गईं अपने तन की छवि भूल ।
मुसकुराईं क्यों किसपर रीझ ।
रंगरलियाँ कर कलियाँ फूल ।८।

हुआ क्यों वासर सरस अपार ।
बनी क्यों रजनी बहु मधुमान ।
मारता है शर क्यों रतिकान्त ।
कान तक अपनी तान कमान ।९।

आ गया कुसुमाकर ले साज ।
प्रकृति का हुआ प्रचुर शृंगार ।
धरा बन गई परम कमनीय ।
पहनकर नव कुसुमों का हार ।१०।

कमनीय कला

[१६]

रंजिता राका-रजनी-सी ।
बने उससे रंजनरत मति ।

सरस बन जाये रस बरसे।
रसिक जन की रहस्यमय रति।१।

तामसी मानस का तम हर।
जगाये ज्योति अलौकिकतम।
चुराती रहे चित्त चसके।
चमककर चारु चाँदनी-सम।२।

सुधा बरसा-बरसा बहुधा।
करे वसुधा का बहुत भला।
कलानिधि कान्त कला-सी बन।
कामिनी की कमनीय कला।३।

अमरपद

[१७]

कवित्त

कोई काल कैसे नाम उनका करेगा लोप
जिनको प्रसिद्ध कर पाती है परम्परा।
जिनकी रसाल रचनाओं से सरस बन
रहता सदैव याद पादप हरा-भरा।
'हरिऔध' होते हैं अमर कविता से कवि
कमनीय कीर्त्ति है अमरता सहोदरा।

सुधा हैं बहाते कवि-कुल वसुधातल में
सुधा कवि-कुल को पिलाती है वसुंधरा ।१।
चिरजीवी कैसे वे रसिक जन होंगे नहीं
नाना रस ले-ले जो रसायन बनाते हैं।
लोग क्यों सकेंगे भूल उन्हें जो लगन साथ
कीर्त्ति-वेलि उर-आलबाल में लगाते हैं।
'हरिऔध' कैसे वे न जीवित रहेंगे सदा
जग में सजीव कविता जो छोड़ जाते हैं।
कैसे वे मरेंगे जो अमर रचनाएँ कर
मर मेदिनी ही में अमरपद पाते हैं ।२।

जले तन

[१८]

बावले बन जाते थे हम।
देख पाते जब नहीं वदन।
याद हैं वे दिन भी हमको।
वारते थे जब हम तन-मन ।१।
कलेजे छिले पड़े छाले।
हो रही है बेतरह जलन।
आग है सुलग रही जी में।
कहायें क्यों न अब जले तन ।२।

[१९]

फूले-फले

बुरों से बुरा नहीं माना।
भले बन उनके किये भले।
हमारी छाया में रहकर।
चाल चलकर भी लोग पले ।१।

पास आ क्यों कोई हो खड़ा।
हो गये हैं जब हम खोखले।
कहाँ थी पूछ हमारी नहीं।
कभी थे हम भी फूले-फले ।२।

[२०]

कलियाँ

बीच में ही जाती हैं लुट।
क्या उन्हें कोई समझाये।
कलेजा मुँह को आता है।
किसलिये सितम गये ढाये ।१।

बुरी है दुनिया की रंगत।
किसलिये कोई घबराये।
क्या कहें बातें कलियों की।
फूल तो खिलने भी पाये।२।

[२१]

फूल

रंग कब बिगड़ सका उनका।
रंग लाते दिखलाते हैं।
मस्त हैं सदा बने रहते।
उन्हें मुसुकाते पाते हैं ।१।

भले ही जियें एक ही दिन।
पर कहाँ वे घबराते हैं।
फूल हँसते ही रहते हैं।
खिला सब उनको पाते हैं ।२।

[२२]

विवशता

मल रहा है दिल मला करे।
कुछ न होगा आँसू आये।
सब दिनों कौन रहा जीता।
सभी तो मरते दिखलाये ।१।

हो रहेगा जो होना है।
टलेगी घड़ी न घबराये।
छूट जायेंगे बन्धन से।
मौत आती है तो आये ।२।

[२३]

प्यासी आँखें

कहें क्या बातें आँखों की।
चाल चलती हैं मनमानी।
सदा पानी में डूबी रह।
नहीं रख सकती हैं पानी ।१।

लगन है र था जलन है।
किसी को कब यह बतलाया।
जल भरा रहता है उनमें।
पर उन्हें प्यासी ही पाया ।२।

[२४]

आँसू और आँखें

दिल मसलता ही रहता है।
सदा बेचैनी रहती है।
लाग में आ-आकर चाहत।
न जाने क्या-क्या कहती है।१।

कह सके यह कोई कैसे।
आग जी की बुझ जाती है।
कौन-सा रस पाती है जो।
आँख आँसू बरसाती है।२।

[२५]

आँख का जलना

ललाई लपट हो गई है।
चमक बन पाई चिनगारी।
आँच-सी है लगने लग गई।
की गई जो चोटें कारी।१।

फूलना-फलना औरों का।
चाहिये क्या इतना खलना।
बिना ही आग जल रही है।
आँख का देखो तो जलना।२।

[२६]

आँख फूटना

और का देखकर भला होते।
है भलाई उमंग में आती।
है सुजनता बहुत सुखी होती।
रीझ है रंगतें दिखा जाती।१।

जो न अनदेखपन बुरा होता।
किसलिये डाह कूटती छाती।
तो किसी नीच को बिना फूटे।
किसलिये आँख फूटने पाती।२।

[२७]

आँख की चाल

लाल होती हैं लड़ती हैं।
चाल भी टेढ़ी चलती हैं।
बदलते भी उनको देखा।
बला लाती हैं, जलती हैं ।१।
बिगड़ती-बनती रहती हैं।
उन्होंने खिंचवाईं खालें।
भली हैं कभी नहीं आँखें
देख ली हैं उनकी चालें ।२।

[२८]

आँख और अमृत

करें जो हँस-हँसकर बातें।
बिना ही कुछ बोले-चाले।
पिलायें प्यार दिखाकर जो।
छलकते प्रिय छवि के प्याले ।१।
बनी आँखें ही हैं ऐसी।
उरों में जो अमृत ढालें।
सदा जो ज्योति जगा करके
अँधेरे में दीपक बालें ।२।

[२९]

आँख और अँधेर

दिवाकर की भी हुई कृपा न।
भले ही वे हों किरण-कुबेर।
उसे दिन भी कर सका न दूर।
सामने जो था तम का ढेर। १।

ज्योति भी भागी तजकर संग।
दृगों पर हुआ देख अंधेर।
कौन किसका देता है साथ।
दिनों का जब होता है फेर। २।

[३०]

नुकीली आँख

प्यार के रंगों में रँगकर।
अगर बन गई रँगीली हो।
क्या हुआ तो जो हो चंचल।
फबीली हो, फुरतीली हो। १।

चाहते हैं रस हो उसमें।
आँसुओं से वह गीली हो।
अगर है नोक-झोंक तो क्या।
भले ही आँख नुकीली हो। २।

[३१]

नयहीन नयन

दिखाकर लोचन अपना लोच।
नहीं करते किसको आधीन।
किन्तु ऐसा है कौन कठोर।
कौन दृग-सा है दयाविहीन। १।

चुराता है चित को चुपचाप।
लिया करता है मन को छीन।
कलेजे में करता है छेद।
नयन कितना है नय से हीन। २।

[३२]

ज्योतिविहीन दृग

उस दिवाकर को जिसका तेज।
दिया करता है परम प्रकाश।
उस दिवस को जो ले दिव-दीप्ति।
किया करता है तम का नाश। १।

उस कुमुद को जो है वह कान्त।
कौमुदी जिसकी है द्युति पीन।
उन ग्रहों को जो हैं अति दिव्य।
करे क्या ले दृग ज्योति-विहीन। २।

[३३]

अंधी आँख

कलेजों को देती है बेध।
चलाकर तीखे-तीखे तीर।
छातियों को देती है छील।
किसलिये बन-बनकर बेपीर। १।
सितम करती हैं अंधाधुंध।
तनिक भी नहीं लगाती देर।
किसलिये अंधी बनकर आँख।
मचाती है इतना अंधेर। २।

[३४]

आनन्द

कंज का है दिनमणि से प्यार।
चन्द्रमा है चकोर-चितचोर।
नवल घन श्यामल कांति विलोक।
नृत्य करने लगता है मोर। १।
पपीहा है स्वाती-अनुरक्त।
भ्रमर को है जलजात पसन्द।
वही करता है उससे प्रीति।
मिला जिसको जिससे आनन्द। २।

[३५]

बड़ी-बड़ी आँखें

छोड़ सीधी सधी भली राहें।
जब बुरी राह में अड़ी आँखें।
बेकसों और बेगुनाहों पर।
बेतरह जब कड़ी पड़ी आँखें। १।

जब न सीधी रहीं बनीं टेढ़ी।
लाड़ को छोड़कर लड़ीं आँखें।
रह गई कौन-सी बड़ाई तब।
क्यों न सोचें बड़ी-बड़ी आँखें। २।

[३६]

आँख की कला

बहुत रस बरसाया है तो।
बनाया है मतवाला भी।
तनों में जीवन डाला है।
तो पिलाया विष-प्याला भी। १।

रखी जो मुँह की लाली तो।
बनाया है मुँह काला भी।
सुधारस जो है आँखों में।
तो हलाहल है, हाला भी। २।

[४१]

लाल-लाल आँख

भाव ही भाव का विधायक है।
किसलिये हम कहीं दलक देखें।
चित्र क्यों आँकते रहें अरुचिर।
क्यों नहीं मंजु छवि छलक देखें।१।

क्यों विलोकें विरोधिनी बातें।
क्यों न मनमोहिनी झलक देखें।
क्यों नहीं लाल-लाल आँखों में।
हम किसी लाल की ललक देखें।२।

[४२]

आँसू भरी आँखें

हैं दिलों को नरम बना देता।
मैल मन का कभी मिलीं धोती।
हैं किसी चित्त में जगह करती।
हैं उरों में भरी कसर खोती।१।

आग जी की कहीं बुझाती हैं।
हैं कहीं बीज प्यार का बोती।
आँसुओं से भरी हुई आँखें।
हैं कहीं पर बखेरती मोती।२।

[४३]

प्यार और आँख

जो किसी से नहीं भरे हैं हम।
क्यों न हित का उभार तो होगा।
चल रहा ठीक-ठीक वेड़ा है।
किसलिये वह न पार तो होगा।१।

है कसर जो भरी नहीं जी में।
क्यों न संसार यार तो होगा।
प्यार से हैं अगर भरी आँखें।
क्यों न दिल में दुलार तो होगा।२।

[४४]

आँखों के डोरे

रंग रखना पड़ा इसी से ही।
हैं किसी रंग से न कोरे ये।
है लसी लाल लालिमा जिसमें।
हैं उसी रंग-बीच बोरे ये।१।

लोक-अनुराग के रुचिर सर के।
हैं बड़े ही ललित हिलोरे ये।
हैं लकीरें ललामता-कर की।
आँख के लाल-लाल डोरे ये।२।

[४५]

कान्त छवि के विकास अनुपम हैं।
या किसी राग के बसेरे हैं।
लालसा के सरस नमूने हैं।
या लगन के ललाम घेरे हैं।

या रुचिर रस सुचारु कर विरचित।
भाव के कान्ततम फरेरे हैं।
आँख के रंग में रँगे डोरे।
कौन-से चित्र के चितेरे हैं।२।

[४६]

आँख की सितता

है हँसी-सी विकासवाली वह।
है मुकुर-सी मनोज्ञ आभामय।
है दिखा दिव्यता दमक जाती।
है ललिततम ललामता-आलय।१।

है सहज भाव के सहित उसमें।
सात्विकी वृत्ति की अपरिमितता।
है सिता-सी मनोहरा सरसा।
है सुधा-सिक्त आँख की सितता।२।

[४७]

काली पुतली

कालिमामयी कहें उसको।
बतायें उसे गरलवाली।
न सुन्दरता होवे उसमें।
ऐंठ लेवे कोई लाली।१।

किन्तु उससे ही मिलती है।
लोक-आँखों को उजियाली।
जगत में अँधियाला होता।
न होती जो पुतली काली।२।

[४८]

रँगी आँखें

जगमगाती न किसलिये मिलतीं।
ज्योति के जाल से जगी आँखें।
देखने को ललामता भव की।
क्यों ललककर न हों लगी आँखें।१।

भूलतीं क्यों भलाइयाँ विभु की।
प्रेम के पाग में पगी आँखें।
क्यों नहीं श्यामता-रता होतीं।
श्याम के रंग में रँगी आँखें।२।

[४९]

आँख की लालिमा

उषा-सी लोक-रंजिनी बन।
साथ लाती है उजियाली।
अलौकिक कान्ति-कला दिखला।
दूर करती है अँधियाली ।१।

बना करती है बन-ठन के।
छलकती छविवाली प्याली।
लालिमा विलसित आँखों की।
मुँहों की रखती है लाली ।२।

[५०]

लसती लालिमा

सुखों को सुखित बनाती है।
ललकते उर में है बसती।
सदा अनुराग-रंग दिखला।
प्यारवालों को है कसती ।१।

कभी खिलती मिल जाती है।
कभी दिखलाती है हँसती।
कालिमा को कलपाती है।

[५१]

आँख का पानी

मुँह दिखाते बने न औरों को।
और मुँह की सदा पड़े खानी।
पत उतर जाय, हो हँसी, ऐसी—
हो किसी से कभी न नादानी।१।

बेबसी, बेकसी, खुले खुल ले।
बेहयाई न जाय पहचानी।
बह सके तो घड़ों बहे आँसू।
पर न गिर जाय आँख का पानी।२।

[५२]

लजीली आँख

हो सकी जब कि लाल-पीली तू।
तब कहें क्योंकि तू रसीली है।
जब कटीली कहा गया तुझको।
तब कहें क्योंकि तू छबीली है।१।

फबतियाँ लोग जब लगे लेने।
तब कहें क्योंकि तू फबीली है।
जब नहीं लाज रख सकी अपनी।
तब कहाँ आँख तू लजीली है।२।

[५३]

अपने दुखड़े

हम बलाएँ लिया करें उनकी।
और हम पर बलाएँ वे लायें।
है यही ठीक तो कहें किससे।
क्या करें चैन किस तरह पायें।१।

किस तरह रंग में रँगें उनको।
आह को कौन ढंग सिखलायें।
जो पसीजे न आँसुओं से वे।
क्यों कलेजा निकाल दिखलायें।२।

[५४]

आँसू

साँसतें करके औरों की।
साँसतें सहते हैं आँसू।
अगर कुछ असर नहीं रखते।
किसलिये बहते हैं आँसू।१।

क्यों नहीं उसके सब दुखड़े।
किसी से कहते हैं आँसू।
कलेजा मलने ही से तो।
निकलते रहते हैं आँसू।२।

[५५]

आँसू की बूँद

नरम करती है जो मन को।
तो भलाई कर पाती है।
पर गरम बन करके वह क्यों।
किसी का भरम गँवाती है।१।

ठीक करती रहती है जो।
कहीं की आग बुझाती है।
बूँद आँसू की पानी हो।
कहीं क्यों आग लगाती है।२।

[५६]

टपकते आँसू

रंग में औरों के दुख के।
कब नहीं रँगते हैं आँसू।
भला औरों का करने को।
सदैव उमगते हैं आँसू।१।

पास रहकर आहें सुन-सुन।
प्रेम में पगते हैं आँसू।
बढ़ गये टपक फफोलों को।
टपकने लगते हैं आँसू।२।

[५७]

आँसू

दूसरों का दुख औरों से।
कौन कातर बन कह पाया।
पास सारे पीड़ित जन के।
तरस खा-खाकर रह पाया।१।
समय की सभी साँसतों को।
कौन साहस कर सह पाया।
जगत-दुख की धाराओं में।
कौन आँसू-सा बह पाया।२।

[५८]

आँख का रोना

सामने दुख-रवि को देखे।
कब नहीं बन पाई कोई।
देख करके आहें भरते।
सभी नींदें किसने खोईं।१।
न जाने कितनी रातों में।
ये नहीं सुख से हैं सोई।
कौन रोया इतना, जितनी।
आजतक आँखें हैं रोई।२।

[५९]

आँख का जल

पास अपने कोई पापी।
नहीं पाता पावन सोता।
बड़े ही बुरे-बुरे धब्बे।
अधम प्राणी कैसे धोता।१।

कालिमामय कोई कैसे।
कालिमाएँ अपनी खोता।
जलन जी की कैसे जाती।
जो न आँखों का जल होता।२।

[६०]

आँसू का बरसना

जी तड़पता है तो तड़पे।
पता क्यों पाते हैं आँसू।
नहीं रुकते हैं रोके से।
चले दिखलाते हैं आँसू।१।

आज क्यों मेरी आँखों में।
उमड़ते आते हैं आँसू।
लगाकर होड़ बादलों से।
क्यों बरस जाते हैं आँसू।२।

[६१]

आँसू और धूल

बूँद बन गये मोतियों-से।
दृगों में हिलते हैं आँसू।
किसी को रस देने के लिये।
आम-से छिलते हैं आँसू।१।

प्यारवाली बहु आँखों में।
बहुत ही खिलते हैं आँसू।
एक दिन ऐसा आता है।
धूल में मिलते हैं आँसू।२।

[६२]

आँख भर आना

सदय निर्दय को करता है।
लोचनों में लाया आँसू।
कठिन को मृदुल बनाता है।
जन-नयन में छाया आँसू।१।

द्रवित कर देता है चित को
दृगों में दिखलाया आँसू।
नरों में भरता है करुणा।
[illegible]

[६३]

आँसू का तार

रात बीते दिन आता है।
धूप में मिलती है छाया।
तब कहाँ रह जायेगा दुख
जहाँ मुख सुख ने दिखलाया। १।

चाहिये धीरज भी रखना।
बहुत ही जी क्यों घबराया।
पता पा जायेंगे दिल का।
तार आँसू का लग पाया। २।

[६४]

आँसू का चलना

विरह की क्यों कटतीं रातें।
बीतते दुख के दिन कैसे।
जलन किस तरह दूर होती।
क्यों भला मिलते सुख वैसे। १।

हरे बनकर क्यों हो पाते।
कलेजे जैसे-के-तैसे।
न चलते जो वैसे आँसू।
मिले सोते बहते जैसे। २।

[६७]

जी की गाँठ

ऐंठ दिखलाकर ऐंठेंगे।
सुनेंगे बात नहीं धी को।
बहुत ही गहरी हो रंगत।
पर कहेंगे इसको फीकी। १।

पेट जलता ही रहता हो।
पूरियाँ खायेंगे घी की।
करेंगे गँठजोड़ा तो भी।
खुलेगी गाँठ नहीं जी की। २।

[६८]

काल और समय

आँख में जगह मिली जिसको।
कलेजे में जो पल पाया।
अंक में कल कपोल ने ले।
जिसे मोती-सा चमकाया। १।

समय की बात निराली है।
काल कब किसका कहलाया।
वही आँसू भूतल पर गिर।
धूल में मिलता दिखलाया। २।

[६९]

आँसू और दिल

आँसुओ, यह बतला दो, क्यों।
कभी झरनों-सा झरते हो।
कभी हो झड़ी लगा देते।
कभी बेतरह बिखरते हो। १।

गिर गये जब आँखों से तब।
किसलिये उनको भरते हो।
निकल आये दिल से, तब क्यों।
फिर जगह दिल में करते हो।२।

[७०]

कोई दिल

आग को तब बुझते देखा।
जब बुझाये उसको पानी।
भागना जलते को तजकर।
बताई गई बेइमानी।१।

तुम्हें आता देखे आँसू।
दुखी हो आँख बहुत रोई।
निकल जल रहे कलेजे से।
खोजते हो क्या दिल कोई।२।

[७१]

पानी खोना

कभी है चित्त सुखित होता।
दुखों से सुख का मुख धोकर।
चमकने लगता है सोना।
आँच खाकर निर्मल होकर।१।

कलेजा होता है ठंढा।
बहाकर आँसू रो-रोकर।
आग जी की बुझ जाती है।
बड़ा प्यारा पानी खोकर।२।

[७२]

आँख और कालिमा

कीर्त्ति का वर वितान भव में।
कान्त सितता से तनती हैं।
दिखा स्वाभाविक सुन्दरता।
सरस भावों में सनती हैं।१।

लालिमा की ललिताभा से।
रुचिर रुचियों को जनती हैं।
कालिमा से कलंकिता हो।
कलमुँही आँखें बनती हैं।२।

[७३]

आँसू छनना

कपोलों पर गिर पड़ते हैं।
कभी काजल से सनते हैं।
वाल के फंदों में फँसकर।
बेड़ियाँ कभी पहनते हैं।१।

बरौनी से छिद जाते हैं।
कभी बेबस-से बनते हैं।
कौन-सी छान-बीन में पड़।
आँख से आँसू छनते हैं।२।

[७४]

दिल और आँसू

पसीजे उन्हें देख वे भी।
सितम जो करते रहते हैं।
बहे उनके वे भी पिघले।
संगदिल जिनको कहते हैं।१।

जले तन को जल बनते हैं।
कलेजा तर कर देते हैं।
आँख में भर-भरकर आँसू।
दिलों में घर कर लेते हैं।२।

[७५]

तिल और आँसू

सामना दुख - लहरों का कर।
सुखों की नावें खेते हैं।
लगे रहते हैं त्यों हित में।
विहग ज्यों अंडे सेते हैं।१।

दूर कर बला दूसरों की।
बलाएँ सिर पर लेते हैं।
आँख के तिल से मिल आँसू।
मोम सिल को कर देते हैं।२।

[७६]

निकलें आँसू

मकर के हाथ मोह में पड़।
भूल करके बिक लें आँसू।
हँसी के फंदों में फँसकर।
वहाँ कुछ क्षण टिक लें आँसू।१।

कहाँ किसने उनको छेंका।
कुछ घड़ी तक छिक लें आँसू।
छुड़ाना है दुख से दिल को।
क्यों न दृग से निकलें आँसू।२।

[७३]

आँसू छनना

कपोलों पर गिर पड़ते हैं।
कभी काजल से सनते हैं।
बाल के फंदों में फँसकर।
बेड़ियाँ कभी पहनते हैं।१।

बरौनी से छिद जाते हैं।
कभी बेबस-से बनते हैं।
कौन-सी छान-बीन में पड़।
आँख से आँसू छनते हैं।२।

[७४]

दिल और आँसू

पसीजे उन्हें देख वे भी।
सितम जो करते रहते हैं।
बहे उनके वे भी पिघले।
संगदिल जिनको कहते हैं।१।

जले तन को जल बनते हैं।
कलेजा तर कर देते हैं।
आँख में भर-भरकर आँसू।
दिलों में घर कर लेते हैं।२।

[७५]

तिल और आँसू

सामना दुख - लहरों का कर।
सुखों की नावें खेते हैं।
लगे रहते हैं त्यों हित में।
विहग ज्यों अंडे सेते हैं।१।

दूर कर बला दूसरों की।
बलाएँ सिर पर लेते हैं।
आँख के तिल से मिल आँसू।
मोम सिल को कर देते हैं।२।

[७६]

निकलें आँसू

मकर के हाथ मोह में पड़।
भूल करके बिक लें आँसू।
हँसी के फंदों में फँसकर।
वहाँ कुछ क्षण टिक लें आँसू।१।

कहाँ किसने उनको छेंका।
कुछ घड़ी तक छिक लें आँसू।
छुड़ाना है दुख से दिल को।
क्यों न दृग से निकलें आँसू।२।

[७७]

बूँदों में

बहुत-से खेल मिले महि के।
खेलाड़ी की कुछ कूदों में।
भरा है भव का मीठापन।
फलों के मधुमय गूदों में।१।
असुख ऊँचे पहाड़ देखे।
छिपे कुछ छोटे तूदों में।
रहा है दुख-सागर लहरा।
आँसुओं की कुछ बूँदों में।२।

[७८]

दिव्य दृष्टि

किसी में हास मिला हँसता।
किसी में दुख-दल दिखलाया।
किसी में विरह बिलखता था।
किसी में पीड़ा को पाया।१।
किसी में खिंची हुई देखी।
कलह की बड़ी कुटिल रेखा।
आँसुओं की बूँदों को जब।
दृष्टि को दिव्य बना देखा।२।

[७९]

खुली आँखें

किसी में मकर मिला फिरता।
किसी में भूख भरी पाई।
किसी में चोट तड़पती थी।
किसी में साँसत दिखलाई।१।

किसी में लगन की लहर थी।
किसी में था लानत - लेखा।
आँसुओं की बूँदों को जब।
खोलकर आँखों को देखा।२।

[८०]

आँसू आना

पतित तो पैसेवाले हैं।
पेट पचके जो पाते हैं।
तब कहाँ भलमनसाहत है।
जो नहीं भूखे भाते हैं।१।

लोग तो पड़े भूल में हैं।
भले कैसे कहलाते हैं।
देख दुखिया-दुख आँखों में।
जो नहीं आँसू आते हैं।२।

[८१]

आँसू गिरना

किसलिये कढ़ें कलेजे से।
बला से क्यों न घिरें आँसू।
कभी दुख-जल-लहरों में आ।
न तो उभरें न तिरें आँसू। १।

किसी की आँखों में आकर।
फिराये क्यों न फिरें आँसू।
देश की गिरी दशा देखे।
गिराये जो न गिरें आँसू। २।

[८२]

आँसुओं का सागर

अंक में रुचि के भरता है।
मोद मुक्ता - छवि से छहरा।
दिव्यतम भव को करता है।
कीर्त्ति का कान्त केतु फहरा। १।

भाव पर सरस तरंगों से।
रंग दे देता है गहरा।
प्रेम - परिपूरित आँखों में।
आँसुओं का सागर लहरा। २।

[८३]

शार्दूल-विक्रीडित

थोड़ा ज्ञान हुए, महान बनना, सीधे नहीं बोलना।
मान्यों का करना न मान, सुनना बातें न धीमान की।
बोना बीज प्रपंच का सदन में, बातें बनाना वृथा।
लेना काम न बुद्धि से खल मिले, है बुद्धिमत्ता नहीं। १।

देखे दुर्गति देश की, विवशता उत्पीड़िता जाति की।
देखे क्रन्दन क्षुधादग्ध जन का, संताप संत्रस्त का।
देखे ध्वंस प्रशंसनीय कुल का, निर्वंश सद्वंश का।
जाते हैं जल क्यों नहीं, सजल हो पाते नहीं नेत्र जो। २।

तो है व्यर्थ अपूर्व वाक्य-रचना ओजस्विनी वक्तृता।
तो है व्यर्थ गभीर गर्जन, बुरी है दीर्घ आयोजना।
तो है व्यर्थ समस्त व्यंग, गहरी आलोचना लोक की।
सेवा हो सकती अनन्य मन से जो मातृ-भू की नहीं। ३।

है लक्षाधिप की कमी न, फिर भी कंगाल हैं कोटिशः।
होते हैं व्यय व्यर्थ; किन्तु बहुशः हैं पोच पाते नहीं।
होती है बहु दुर्दशा, पर खड़े होते नहीं रोंगटे।
देती है व्यथिता बना न मति को क्यों भारती-भू-व्यथा। ४।

भीता है वह सत्प्रवृत्ति जिससे भू को मिली भव्यता।
त्यक्ता है वह शान्ति जो जगत में है क्रान्ति-विध्वंसिनी।
देखे दुर्गति नीति की मनुजता अत्यन्त है चिन्तिता।
यों हो मर्दित भारतीय सुत से क्यों भारती-भूतियाँ।५।

होवे पावनतारता सुचरिता सद्वृत्ति से पूरिता।
कान्ता कीर्त्ति-कलाप से विलसिता लोकोपकारांकिता।
पा सत्यामृत का प्रवाह सरसा होती रहे सर्वदा।
सद्भावाचल-शृंग से निपतिता हो भारती-भू नहीं।६।

पाके श्री सुत सर्वदा सुखित हों होवें यशस्वी सुधी।
ऐसी उत्तम नीति हो, बन सके जो प्रीति-संवर्द्धिनी।
होवे मानवता-प्रवृत्ति प्रबला हो लालसा उज्ज्वला।
होवे भारत-भू भला, उतरती दीखे सदा आरती।७।

वेदों से भववंद्य ग्रंथ किसकी सद्वृद्धि के स्वत्व हैं।
पैदा हैं किसने किये सुजन वे जो सत्यसर्वस्व हैं।
ऊँचा है कहता हिमाद्रि किसको सर्वोच्चता को दिखा।
पाके भारत-सा सपूत भव में है भाग्यमाना मही।८।

हो पाये अवतार भार हरने की दृष्टि से ही जहाँ।
भाराक्रान्त जिसे विलोक विधि भी होते महाभीत थे।
तो होगा बहुदग्ध क्यों न उर, क्यों होगी न पीड़ा बड़ी।
जो भारत के भारभूत नर से हो भारभूता धरा।९।

क्यों होगा उसका उभार उसमें होगी न क्यों भीरुता।
होते भी सुविभूतियाँ न वह क्यों होगी व्यथा से भरी।
दैवी भूति-निकेत दिव्यसुर-से प्राणी कहाँ हैं हुए।
भीता भारत-जात भार-भय से क्यों भारती-भूमि हो।१०।
है औदार्यमयी समस्त भव के सद्भाव से है भरी।
होती है मुदिता विलोक जगती लीलावती मूर्त्तियाँ।
सारी मोहक मंजु सृष्टि - ममता है मोह लेती उसे।
संसिक्ता रस से महानहृदया है विश्व की बंधुता।११।
तो हत्या करतीं कभी न इतनी पापीयसी वृत्तियाँ।
हो पाईं जितनी जिन्हें सुन किसे होती नहीं है व्यथा।
तो धर्मान्ध नहीं कृतान्त बनते कृत्या कहाती न थी।
प्राणी निष्ठुर चित्तमध्य बसती जो विश्व की बंधुता।१२।
वे दानव हैं जो अधर्म करते हैं धर्म की ओट में।
वे हैं पामर ढूँढ़ते गरल हैं जो पुण्य-पाथोधि में।
वे सद्ग्रंथ कदापि हैं न जिनमें हैं ईदृशी पंक्तियाँ।
जो हैं धर्म-विहीन, विश्व-ममता के मर्म से वंचिता।१३।
देते हैं प्रिय ज्योति मंद हँसके हैं मोह लेते उसे।
हैं तारे-सम नेत्र के, वसुमती के 'इन्दु' आनन्द हैं।
वे आके रस जो नहीं बरसते, होती रसा क्यों रसा।
तो होती वसुधा न सिक्त, कर में होती सुधा जो नहीं।१४।

तो होता तम-भरा सर्व महि में होती न दृश्यावली।
तो होती मलिना दिशा न मिलती छाई कहीं भी छटा।
हो जाती मरु-मेदिनी, नयनता पाती महाअंधता।
देते जो न दिनेश दिव्य बनके भू-भूति को दिव्यता।१५।

चतुर्दश सर्ग

सत्य का स्वरूप

विभु-विभूति

[१]

भरा है नभतल में भरपूर।
कौन-से श्यामल तन का रंग।
मिले किसके कर का अवलंब।
अधर में उड़े असंख्य पतंग।१।

किस अलौकिक विभु का वन भव्य।
आरती करती है सब काल।
जगमगाती जगतीतल-ज्योति।
गगन में अगणित दीपक बाल।२।

किसे अर्पित होता है नित्य।
उषा के अन्तर का अनुराग।
चाँदनी खिलती मिलती है।
लाभ कर किसका दिव्य सुहाग।३।

बताता है किसको रसधाम।
बरस, घन, नभ में हो समवेत।
किया करता है उन्नत मेरु।
उच्चता का किसको संकेत।४।

किसे देते हैं पादप-वृन्द।
बहु नमित हो फल का उपहार।
पिन्हाती हैं लतिकाएँ रीझ।
किसे कल कुसुमावलि का हार।५।

किसे नदियाँ कर कल-कल नाद।
सुनाती हैं अति सुन्दर तान।
याद कर किसको विपुल विहंग।
किया करते हैं मंजुल गान।६।

उठा करती है उदधि - तरंग।
चूमने को किसका पग पूत।
वितरता है सौरभ - संभार।
मलय-मारुत बन किसका दूत।७।

तिमिर में है जगती भव-ज्योति।
भाव में है सच्ची अनुभूति।
विलोकें क्यों न दृगों को खोल।
कहाँ है विभु की नहीं विभूति।८।

सनातन धर्म

छप्पै

[२]

वह लोकोत्तर सत्य नियति का जो है धाता।
भव की अनुभव-पूत भक्ति का जो है दाता।
वर विवेक-विज्ञान-नयन का जो है तारा।
पाकर जिसकी ज्योति जगमगाया जग सारा।
हैं भुक्ति-मुक्ति जिसकी प्रिया शुचितम जिसका कर्म है।
सब काल एकरस जो रहा वही सनातन धर्म है।१।

वंदनीयतम वेदमंत्र उसके हैं ज्ञापक।
सकलागम हैं परम अगम महिमा के मापक।
उसकी विभुता विविध उपनिषद हैं बतलाते।
सारे नियमन नियम स्मृति सकल हैं सिखलाते।
उसके आदर्श पुराण के कथानकों में हैं कथित।
भारत से अनुपम ग्रंथ में उसकी गरिमा है ग्रथित।२।

मानवता का मूल सदाशयता का मंदर।
सदाचार कमनीय स्वर्ग का पूज्य पुरंदर।
भव-सभ्यता-सुमेरु दिव्यता का कल केतन।
लोक-शान्ति का सेतु भव्य भावना-निकेतन।

नायक है सकल सुनीति का, नैतिक बल का है जनक।
है वह पारस जिसको परस लोहा बनता है कनक।३।

सर्वभूत-हित-महामंत्र का सबल प्रचारक।
सदय हृदय से एक-एक जन का उपकारक।
सत्य भाव से विश्व-बंधुता का अनुरागी।
सकल-सिद्धि-सर्वस्व सर्वगत सच्चा त्यागी।

उसकी विचार-धारा धरा के धर्मों में है बही।
सब सार्वभौम सिद्धान्त का आदिप्रवर्त्तक है वही।४।

बुद्धदेव के धर्मभाव में वही समाया।
उसको ही जरदश्त-हृदय में विलसित पाया।
है ईसा की दिव्य उक्ति का वही विधाता।
वही मुहम्मद की विभूति का है निर्माता।

अवनीतल का सारा तिमिर उसके टाले ही टला।
वह है वह पलना सकल-मत-शिशु जिस पलने में पला।५।

पशु मानव हो गये लाभ कर दिव्य सहारा।
पावन बने अनेक अपावन जिसके द्वारा।
जो दे-दे बहु कष्ट लोक-कंटक कहलाया।
उसने कुसुम-समान उसे भी रुचिर बनाया।

सिदियन-सी कितनी जातियाँ चारु रंगतों में ढलीं।
पाकर उसको सुधरीं सभी सफल बनीं फूलीं-फलीं।६।

उसके खोले खुले बड़े पेचीले ताले।
उसने सुलझा दिये, गये जो उलझन डाले।
खुली कौन-सी ग्रंथि नहीं उसके कर द्वारा।
दिया उसी ने तोड़ विश्व का बंधन सारा।
देश काल को देख कब बना नहीं वह दिव्यतर।
कब उसने गति बदली नहीं समय-प्रगति अवलोककर।७।

है उसमें वह भूति जो असुर को सुर कर दे।
है उसमें वह शान्ति शान्ति जो भव में भर दे।
है उसमें वह शक्ति पतित को पूत बनाये।
है उसमें वह कान्ति रजकणों को चमकाये।
जिससे अमनुजता असमता सब दिन रहती है डरी।
उसकी उदारतम वृत्ति में वह उदारता है भरी।८।

अचल हिमाचल उठा शीश गुणगण गाता है।
पावनता सुरसरित का सलिल बतलाता है।
गाकर गौरव-गीत विबुध बल-बल जाते हैं।
अवनीतल में कीर्त्ति - पताके लहराते हैं।
उसकी संस्कृति के सूत्र से सुख-वितान जग में तना।
उसके बल से संसार में भारत-मुख उज्ज्वल बना।९।

ऐसा परम पुनीत सनातन धर्म निराला।
दूर करे सब तिमिर दिखा बहु दिव्य उँजाला।

भ्रम-प्रमाद-वश कभी न वह अनुदार कहाये।
सब उससे सुर-तरु-समान वांछित फल पाये।
जल पवन रवि-किरण-सम उसे।
मनुज - मात्र अपना कहे।
सारे वसुधातल में सदा
शान्ति - सुधा - धारा बहे।१०

भाव-विभूति

[३]

बहुत सूखे हृदयों को सींच।
सरसता कर असरस को दान।
दया है उस द्रविता का नाम।
बरस जाये जो जलद-समान।१।
सुन जिसे श्रवण हो सुधा-सिक्त।
सुनाये हृत्तंत्री वह राग।
करे जो जन-रंजन सब काल।
वही है आरंजित अनुराग।२।
है सरस भावुकता - परिणाम।
करुण रस का उर में संचार।
कहाँ तब पाया हृदय पसीज।
दृगों में बही न जो रस-धार। ३।

शान्ति-जननी सत्यता-विभूति ।
पूततम भावों की है पूर्त्ति ।
महो में है बहु महिमावान ।
दिव्य है मानवता की मूर्त्ति । ४ ।

कान्त कृति-रत्न-राजि खनि मंजु ।
सुरुचि-स्वामिनी सुअनुभवनीय ।
परम कामदा साधना-सिद्धि ।
सुमति है कामधेनु कमनीय । ५ ।

ललित रुचि है कुसुमालि-समान ।
कल्पतरु - से हैं भाव ललाम ।
लोक-अभिनन्दन कान्त नितान्त ।
शील है नन्दन-वन अभिराम । ६ ।

मलिन मन को धो हर तन-ताप ।
खोलता है सुरपुर की राह ।
धरा में सदाचार सब काल ।
सुरसरी का है पूत प्रवाह । ७ ।

रहे जिससे जीवन का रंग ।
वही है बहु कमनीय उमंग ।
हंस जिससे मुक्ता पा जाय ।
वही है मानस - मंजु - तरंग । ८ ।

प्रेमाश्रु

[४]

सिंची वह सरस बन-बन जिससे
वह मानवता - क्यारी।
जिसमें विकसित मिली रुचिर रुचि
की कुसुमावलि सारी।
जिसकी बूँद - बूँद में ऐसे
सिक्त भाव हैं पाते।
जिसके बल से नीरस उर भी
हैं रसमय बन जाते। १।
जिसमें अललित लोभ की लहर
कभी नहीं लहराती।
जिसमें छल-बल की प्रपंच की
भँवर नहीं पड़ पाती।
जिसमें विविध विरोध वैर के
बुद्बुद नहीं दिखाते।
जिसमें कलह - कपट - कुचाल के
हैं शैवाल न पाते। २।
सदा डूब जाती है जिसमें
अहितकारिता - नौका।

मिली न जिसमें रुधिर-पान-रत
कुत्सित नीति - जलौका ।
जिसमें मद - मत्सर - प्रसूत वह
वेग नहीं मिल पाता ।
पड़ जिसके प्रपंच में जनहित-
पोत टूट है जाता । ३ ।

जिसकी सहज तरलता है
पविता को तरल बनाती ।
जिसकी द्रवणशीलता है
वसुधा में सुधा बहाती ।
जिसके पूत प्रवाह से धुले
मानस का मल सारा ।
नहीं नयन से क्यों बहती वह
प्रेम-अश्रु की धारा । ४ ।

प्रेम-तरंग

छप्पै

[५]

वसुधा पर विधु - सदृश सुधा है वह बरसाता ।
वह है जलद-समान जगत का जीवन-दाता ।

प्रेमाश्रु

[४]

सिंची वह्न सरस वन-वन जिससे
वह मानवता - क्यारी ।
जिसमें विकसित मिली रुचिर रुचि
की कुसुमावलि सारी ।
जिसकी बूँद - बूँद में ऐसे
सिक्त भाव हैं पाते ।
जिसके बल से नीरस उर भी
हैं रसमय बन जाते । १ ।
जिसमें अललित लोभ की लहर
कभी नहीं लहराती ।
जिसमें छल-बल की प्रपंच की
भँवर नहीं पड़ पाती ।
जिसमें विविध विरोध वैर के
बुद्बुद नहीं दिखाते ।
जिसमें कलह - कपट - कुचाल के
हैं शैवाल न पाते । २ ।
सदा डूब जाती है जिसमें
अहितकारिता - नौका ।

मिली न जिसमें रुधिर-पान-रत
कुत्सित नीति - जलौका।
जिसमें मद - मत्सर - प्रसूत वह
वेग नहीं मिल पाता।
पड़ जिसके प्रपंच में जनहित-
पोत टूट है जाता। ३।
जिसकी सहज तरलता है
पविता को तरल बनाती।
जिसकी द्रवणशीलता है
वसुधा में सुधा बहाती।
जिसके पूत प्रवाह से धुले
मानस का मल सारा।
नहीं नयन से क्यों बहती वह
प्रेम-अश्रु की धारा। ४।

प्रेम-तरंग

छप्पै

[५]

वसुधा पर विधु - सदृश सुधा है वह बरसाता।
वह है जलद-समान जगत का जीवन-दाता।

वही सदा है कामधेनु कामद कहलाता।
वही कल्पतरु-तुल्य बहु फलद है बन पाता।
जो जन रंजित हो सके भव-अनुरंजन-रंग से।
जिसका मानस हो लसित पावन प्रेम-तरंग से। १।

सत्य-संदेश

[६]

भक्त-जन-रंजन की वर भक्ति।
करेगी किस उर में न प्रवेश।
रुचिर जीवन न बनेगा कौन।
सुन सुरुचि-भरित सत्य-संदेश। १।

जगेगा भला न किसका भाग।
लगेगा किसे न प्यारा देश।
बनेगा कौन न शुचिता-मूर्त्ति।
हृदय से सुने सत्य-संदेश। २।

परम भय-संकुल हो सब काल।
अभय करता है वर आदेश।
तरंगाकुल भव-सिंधु-निमित्त।
पोत है पूत सत्य-संदेश। ३।

दूर करता है तम-अज्ञान।
हटाता है भव-रजनी-क्लेश।

उरों में जगा ज्ञान की ज्योति।
भानुकर-सदृश सत्य-संदेश। ४।

सत्य-संदेश

[७]

सुन जिसे भव जाता है भूल।
स्वर्ग की सरस सुधा का स्वाद।
भरित मिलता है किसमें भूरि।
भारती-वीणा का वह नाद। १।

सुन जिसे मति होती है मुग्ध।
उमंग नर्त्तन करता है त्याग।
विपुल पुलकित बनती है भक्ति।
मिला किसमें वह अनुपम राग। २।

सुन पड़ा जिसमें अनहद नाद।
हुआ जिसमें समाधि-धन-गीत।
सुरति है जिसकी सहज विभूति।
मिला किसमें वह श्रुति-संगीत। ३।

रूप किसका है भव-अनुराग।
लोक-हित-व्रत है किसका वेश।
सुर-विटप-सदृश फलद है कौन।
भूत-हित-पूत सत्य-संदेश। ४।

विवाह

[८]

पूततम है विधान विधि का।
नियति का है नियमित नियमन।
प्रकृति का है अनुपम आशय।
वेद का वन्दित अनुशासन।१।

वंश - वर्द्धक वसुधा-हित-रत।
सदाचारी सपूत को जन।
क्षेत्र में विश्व-सृजन के वह।
सदा करता है वीज-वपन।२।

शान्ति का है वर आवाहन।
सुकृति का संयत आराधन।
मधुरता का विकास मधुमय।
सरसता का सुन्दर साधन।३।

रमा का रंजन होता है।
गिरा गौरवित दिखाती है।
मंजुतम मूर्त्ति त्याग की बन।
सती सत उससे पाती है।४।

विलसता सुरतरु है उसमें।
मलय-मारुत वह पाता है।

स्वर्ग - जैसा सुन्दर उससे।
गृही का गृह बन जाता है।५।
बालकों का विधु-सा मुखड़ा।
नयन को कैसे दिखलाता।
सुधारस कानों में कैसे।
मृदु वचन उनका बरसाता।६।
अलौकिक रत्न लाभ कर क्यों।
दिव्य जगतीतल बन जाता।
लाल माई के क्यों मिलते।
जो न जुड़ता पावन नाता।७।
भूति से उसकी जल-पय-सम।
एक हो जाते हैं दो मन।
मिलाता है दो हृदयों को।
मुक्ति - साधन विवाह-बंधन।८।

धर्म-धारणा

[९]

सहज सनातन धर्म हमारा।
परम अपावन जन-निमित्त है पावन सुरसरि - धारा।
भव-पथ के भूले-भटके को दिव्य-ज्योति ध्रुव - तारा।
पाप-पुंज-रत पामर नर को खरतर असि की धारा।

विवाह

[८]

पूततम है विधान विधि का।
नियति का है नियमित नियमन।
प्रकृति का है अनुपम आशय।
वेद का वन्दित अनुशासन।१।

वंश - वर्द्धक वसुधा-हित-रत।
सदाचारी सपूत को जन।
क्षेत्र में विश्व-सृजन के वह।
सदा करता है वीज-वपन।२।

शान्ति का है वर आवाहन।
सुकृति का संयत आराधन।
मधुरता का विकास मधुमय।
सरसता का सुन्दर साधन।३।

रमा का रंजन होता है।
गिरा गौरवित दिखाती है।
मंजुतम मूर्त्ति त्याग की बन।
सती सत उससे पाती है।४।

विलसता सुरतरु है उसमें।
मलय-मारुत वह पाता है।

स्वर्ग - जैसा सुन्दर उससे।
गृही का गृह बन जाता है।५।

बालकों का विधु-सा मुखड़ा।
नयन को कैसे दिखलाता।
सुधारस कानों में कैसे।
मृदु वचन उनका बरसाता।६।

अलौकिक रत्न लाभ कर क्यों।
दिव्य जगतीतल बन जाता।
लाल माई के क्यों मिलते।
जो न जुड़ता पावन नाता।७।

भूति से उसकी जल-पय-सम।
एक हो जाते हैं दो मन।
मिलाता है दो हृदयों को।
मुक्ति - साधन विवाह-बंधन।८।

धर्म-धारणा

[१]

सहज सनातन धर्म हमारा।
परम अपावन जन-निमित्त है पावन सुरसरि - धारा।
भव-पथ के भूले-भटके को दिव्य-ज्योति ध्रुव - तारा।
पाप-पुंज-रत पामर नर को खरतर असि की धारा।

सकल काल अभिमत फलदायक है सुरतरु-सा न्यारा।
विविध - रोग - उपशम - अधिकारी है परिशोधित पारा।
ज्ञान-निकेतन अखिल सिद्धि-साधना-सदन अति प्यारा।
भुक्ति-मुक्ति वर भक्तिविधायक सिद्ध - समाधि - सहारा।
त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तपोधन ने है उसे सुधारा।
ले अवतार आप त्रिभुवर ने प्रायः उसे उबारा।
वह विकास है वह जिससे विकसित है अनुभव सारा।
धरा-ज्ञान-विज्ञान दिव्य लोचन का है वह तारा।
भू के सकल पंथ मत में है उसका प्रबल प्रसारा।
नभ में दीपक बले उसी की जगी ज्योति के द्वारा।
सँभल उसी की पून शान्ति के कर से हुए उतारा।
मधुर बन सकेगा वसुधातल का अशान्ति-जल खारा।१।

उद्‌बोधन

[१०]

किसी की उँगली का संचार।
भर सका जिसमें बहु प्रिय राग।
हो सका जिसमें ध्वनित सदैव।
भूतभावन - पावन - अनुराग ।१।

सुनाता है भवहित - संगीत।
छिड़े पर जिसका अनुपम तार।

खोल देती है हृदय - कपाट।
सुभंकृत हो जिसकी झंकार। २।
सुने जिसका वहु व्यंजक बोल।
सुरुचि सकती है शुचि पग पूज।
मानसों को करती है पूत।
सुगुंजित हो-हो जिसकी गूँज। ३।
पान कर जिसका रस स्वर्गीय।
कान बन सका सुधा का पात्र।
उस अलौकिक तंत्री का नाद।
सुने वसुधातल - मानवमात्र। ४।

[११]

सती ने किससे पाई सिद्धि।
रमा ने कान्ति परम कमनीय।
गिरा किससे पाये अनुभूति।
बनी सब भव में अनुभवनीय। १।
लाभ कर किससे दिव्य विकास।
हुए उद्भासित सारे ओक।
अलौकिकता किसकी अवलोक।
लोक को मिला विपुल आलोक। २।

मिली दिनमणि को किससे ज्योति ।
कलानिधि को अति कोमल कान्ति ।
समुज्ज्वल किससे हुए दिगन्त ।
पा सकी वसुधा किससे शान्ति । ३ ।

कौन है भव का सुन्दर भाव ।
कौन है शिव-ललाट की लीक ।
धरातल के सारे शुभ कर्म ।
कहाये किसके कान्त प्रतीक ।४ ।

भाल पर किसके है वह तेज ।
काँपता है जिससे तम-पुंज ।
विलोके किसकी प्रगति ललाम ।
भव-अहित-दल बनते हैं लुंज । ५ ।

कौन है वह कमनीय प्रवाह ।
झलकता है जिसमें विभु-विम्ब ।
देखते हैं किसमें बुध-वृन्द ।
क्यों मिलित हुए विम्ब-प्रतिविम्ब । ६ ।

कौन है वह विस्तृत आकाश ।
मिल गये जिसका निर्मल अंक ।
चमकते हैं बन - बन बहु कान्त ।
लोक - हित नाना मंजु मयंक । ७ ।

दिव्यताएँ उसको अवलोक।
दिव्यतम बनता है भव-कूप।
अपावन जन का है अवलम्ब।
परम पावन है सत्य-स्वरूप। ८।

[१२]

हँसी है कभी उड़ाती उसे।
कभी छलती है मृदु मुसुकान।
कभी आँखों के कुछ संकेत।
नहीं करते उसका सम्मान। १।

कभी मीठी बातों का ढंग।
दिया करता है परदा डाल।
कभी चालाकी दिखला रंग।
चला करती है उससे चाल। २।

झमेले करती हैं उत्पन्न।
कभी लालच की लहरें लोल।
कभी रगड़े करते हैं तंग।
बनाकर उसको डाँवाडोल। ३।

कभी जी की कसरें धुन बाँध।
किया करती हैं टाल-मटोल।

देखकर उसका बिगड़ा रंग।
नहीं वह कुछ सकता है बोल। ४।

धूल कितनी आँखों में झोंक।
कहीं पर बिछा कपट का जाल।
सदा ही बात बना कुछ लोग।
दिया करते हैं उसको टाल। ५।

वैर के बो-बो करके बीज।
जो घरों में बोते हैं आग।
बहुत ही जले-भुने वे लोग।
न करते कैसे उसका त्याग। ६।

बोलते ही रहते हैं झूठ।
बहुत लोगों की है यह बान।
जिसे वे करते नहीं पसंद।
करेंगे कैसे उसका मान। ७।

सदा पाते रहते हैं लोग।
लोक में फल स्वकर्म-अनुरूप।
उन्हें कब नहीं मिला है दंड।
सके जो देख न सत्य-स्वरूप। ८।

[१३]

बिछाकर अलकावलि का जाल।
धता है उसे बताता काम।

नहीं लग लगने देता - उसे।
कामिनी-कुल का रूप ललाम। १।

रोकता है पढ़ मोहन - मंत्र।
मोहनी डाल - डालकर मोह।
उसे प्रायः देता है डाँट।
दिखाकर निज दबंगपन द्रोह। २।

डराता है कर आँखें लाल।
उसे अभिमानी का अभिमान।
बहुत फैला अपना तमपुंज।
तमक उसको देती है तान। ३।

पास आने देता ही नहीं।
किया करता है पथ - अवरोध।
डाल बाधाएँ हो - हो क्रुद्ध।
उसे बाधित करता है क्रोध। ४।

सामने अपने उसे विलोक।
छटकने लग जाता है क्षोभ।
दूर उसको रखने के लिये।
ललचता ही रहता है लोभ। ५।

देखती उसे आँख - भर नहीं।
काँपती है सुन उसका नाम।

साथ में उसको लेकर चले।
कब चला लम्पटता का काम। ६।

नहीं अभिनन्दित करता उसे।
परम निन्दित निन्दा का चाव।
मानता है उसको रिपु-तुल्य।
लोक हिंसा - प्रतिहिंसा - भाव। ७।

बताता उसको हितकर नहीं।
नीचतम मानस-मलिन-स्वभाव।
चाहते हैं भ्रमांध भव - मध्य।
भाव का उसके परम अभाव। ८।

मानता मन का उसको नहीं।
जुगुप्सा - लिप्सा - कुत्साधाम।
उसे कहके लालित्य - विहीन।
स्वयं बनता है दंभ ललाम। ९।

कभी करती है उससे मेल।
कभी बन जाती है प्रतिकूल।
पड़े निज भूल - भुलैयाँ - मध्य।
क्यों न करती प्रवंचना भूल।१०।

भले ही हो वह भवनिधि-पोत।
हो सकेगी क्यों उससे प्रीति।

करेगी क्यों प्रिय पटुता-संग।
कुटिलता कटुता की कटु नीति।११।

जब नहीं तिमिर सकेगी टाल।
करे तब क्यों प्रकाश की साध।

वदन क्यों उसका सके विलोक।
अधमता होती है जन्मांध।१२।

करेगी कैसे उसे पसंद।
जो कि है परम पुण्य की मूर्त्ति।

सदा है पापरता चित - वृत्ति।
कुजनता है पामरता - पूर्त्ति।१३।

उलूक - प्रकृति का है दुर्भाग्य।
जो न समझे, न सके अवलोक।

दिवाकर के समान है दिव्य।
सत्य है सकल लोक - आलोक।१३।

[१४]

द्रवित हो बहुत पसीज - पसीज।
दुखित दुख-तिमिरपुंज को टाल।

झलकती किसकी है प्रिय ज्योति।
करुण रस - धारा में सब काल। १।

दान कर देता है सर्वस्व।
समझकर उसे कीर्त्ति - उपहार।
कहे किसके बनता है रीझ।
हृदय सहृदय का परम उदार। २।

दशा दयनीय जनों की देख।
सदयता को वह सका न रोक।
याद आता है किसका रूप।
दया की दयालुता अवलोक। ३।

विविध विद्या - बल से कर दूर।
अविद्याजनित विकार - विभेद।
किस भुवन-वंदित का कर साथ।
बन सका वन्दनीय निर्वेद। ४।

दानवी प्रकृति परम दुर्दान्त।
प्राप्त कर किससे बहु शुचि स्फूर्त्ति।
बनी सहृदयता मृदुता - धाम।
सुजनता जनता-ममता-मूर्त्ति। ५।

सुधा से कर मरु-उर को सिक्त।
सिता-सी फैला कोमल कान्ति।
हुए किस रजनी-पति से स्नेह।
बन सकी राका-रजनी-शान्ति। ६।

लाभ कर ममता विश्व-जनीन।
सृजन कर भौतिक शान्ति-विधान।
मिले किसका महान अवलम्ब।
बनी मानवता महिमावान। ७।

विलोके किसको गौरव-धाम।
गौरवित बनता है गंभीर।
देखकर किसको धर्मधुरीण।
धीरता नहीं त्यागता धीर। ८।

बना करती है किसे विलोक।
सुमति की मूर्त्ति परम रमणीय।
सदाशयता सुख्याति सकान्ति।
सुकृति की कीर्त्ति-कला कमनीय। ९।

बढ़ाकर शालीनता-प्रभाव।
शिष्टता में भर भूरि उमंग।
विलसती है किसको अवलोक।
शील मानस महनीय तरंग। १०।

नाचता है किस घन को देख।
सर्वदा सदाचार-मनमोर।
देखता है किस विधु की कान्ति।
सच्चरित बनकर चरितचकोर। ११।

जी रही है भव-पूत विभूति।
देखकर किसके मुख की ओर।
कौन है सद्‌गति का सर्वस्व।
रुचिरतम सुरुचि-चित्त का चोर। १२।

ज्ञान-विज्ञान-सहित रुचि साथ।
भावनाओं में भर अनुरक्ति।
गई खिल देखे किसका भाव।
भुवन - भावुकता - भरिता भक्ति। १३।

विश्व-गिरि-शिखरों पर सर्वत्र।
गड़ गई गौरव पा अविलम्ब।
धर्म की ध्वजा उड़ी भव-मध्य।
मिले किसके कर का अवलम्ब। १४।

दिव्य भावों का है आधार।
नियति का नियमनशील निजस्व।
लोक - पति का है भव्य स्वरूप।
सत्य है भव - जीवन - सर्वस्व। १५।

[१५]

अन्न दे देना भूखों को।
पिलाना प्यासे को पानी।

दीन - दुखिया - कंगालों को।
दान देना बनकर दानी। १।

बुरा करना न दूसरों का।
नहीं कहना लगती बातें।
सँभल सेवा उसकी करना।
न कटती हैं जिसकी रातें। २।

कभी रखना न मैल दिल में।
चलाना कभी नहीं चोटें।
क्यों न टोटा पर टोटा हो।
पर गला कभी नहीं घोटें। ३।

काटना जड़ बुराइयों को।
बदी को धता बता देना।
चाल चल-चल या छल करके।
कुछ किसी का न छीन लेना। ४।

डराना बेजा धमकाना।
सताना डाँटें बतलाना।
खिजाना साँसत कर हँसना।
दूसरों का दिल दहलाना। ५।

बुरा है, इसी लिये इनसे।
सदा ही बच करके रहना।

बुरे भावों की लहरों में।
भूलकर भी न कभी बहना। ६।

समझना यह, जिन बातों का।
हमें है दुख होता रहता।
सुने, वैसी ही बातों को।
विवश हो कोई है सहता। ७।

सोचना, यह, दिल का छिलना।
कपट का जाल बिछा देना।
बहँकना मनमाना करना।
बलाएँ हैं सिर पर लेना। ८।

जानना यह, काँटे बोना।
कुढ़ाना दे - देकर ताना।
कलेजा पत्थर का करना।
बेतरह है मुँह की खाना। ९।

मूसना माल न औरों का।
चूसना लहू न लोगों का।
बाँधकर कमर दूर करना।
देश के सारे रोगों का। १०।

खोलना आँखें अंधों की।
राह भूलों को बतलाना।

समझना सब जग को अपना।
काम पड़ गये काम आना।११।
बड़ाई सदा बड़ों को रख।
कहे पर कहा काम करना।
जाति के सिरमौरों की सुन।
समय पर उनका दम भरना।१२।
भागना झूठी बातों से।
धाँधलों से बचते रहना।
कभी जो कुछ कहना हो तो।
सँभल करके उसको कहना।१३।
बुराई सदा बुराई है।
भलाई को न भूल जाना।
भले का सदा भला होगा।
यह समझना औ' समझाना।१४।
जन्तुओं के सुख - दुख को भी।
मानना निज सुख - दुख - ऐसा।
सभी जीवों के जी को भी।
जानना अपने जी - जैसा।१५।
हरे पत्ते की हरियाली।
फूल का खिलना कुम्हलाना।

देखकर, आँखोंवाले वन।
दया उनपर भी दिखलाना।१६।
भले कामों के करने में।
न बनना कसर दिखा कच्चा।
भाव बच्चों - जैसा रखना।
सत्य का है स्वरूप सच्चा।१७।

[१६]

शार्दूल-विक्रीडित

जो हो सात्विकता भरी न उसमें, जो हो नहीं दिव्यता।
जो हो बोधक नहीं पूत रुचि का, जो हो नहीं शुद्ध श्री।
तो है व्यर्थ, प्रवंचना - भरित है, है धूर्त्तता चिह्न हो।
होवे भाल विशाल का तिलक जो सत्यावलम्बी नहीं।१।
तो क्या है वह लालिमा तिलक की जो भक्तिरक्ता नहीं।
तो क्या है वह श्वेतता न जिसमें है सात्विकी सिक्तता।
रेखाएँ रमणीय, कान्त रचना, आकार की मंजुता।
तो क्या है उनमें नहीं यदि लसी सत्यादृता पूतता।२।
नाना योग-क्रिया-कलाप-विधि से आराधना इष्ट की।
पूजा - पाठ - व्रतोपवास - जप की यज्ञादि की योजना।
देवोपासन मन्दिरादि रचना पुण्यांग की पूर्त्तियाँ।
तो क्या हैं यदि साधना-नियम में है सत्य-सत्ता नहीं।३।

होती हैं सब सिद्धियाँ करगता अंगीकृता ऋद्धियाँ।
जाती है बन सेविका सफलता सद्वृत्ति - उद्बोधिता।
है आज्ञा मतिमानता मनुजता ओजस्विता मानती।
होगी क्यों ऋत कल्पना न उसकी जो सत्य-संकल्प है। ४।

जो है ज्ञान-निधान कष्ट उसको देगी न अज्ञानता।
जो है लोभ - विहीन तृप्त उसको लेगी न लिप्सा लुभा।
मोहेगी न विमुक्त मुक्तिरत को मुक्तावली - मालिका।
होवेगा वह क्यों असत्य प्रतिभू जो सत्य-सर्वस्व है। ५।

जो माला फिरती रहे प्रति घटी होगा न तो भी भला।
जो संध्या करते त्रिकाल हम हों तो भी नपेगा गला।
जो हों योग - क्रिया सदैव करते तो भी न होंगे सुखी।
होती है यदि अज्ञता विमुखता से सत्यता वंचिता। ६।

अन्यों के छिनते न स्वत्व लुटते तो कोटिशः सद्म क्यों।
क्यों होते नगरादि ध्वंस वहती क्यों रक्त-धारा कहीं।
कैसे तो कटते कराल कर से लाखों करोड़ों गले।
पृथ्वी हो रत सर्व-भूत-हित में जो सत्य को पूजती। ७।

क्यों होते बहु वंश ध्वंस मिलते वे आज फूले - फले।
उल्लू है अब बोलता नित जहाँ होती वहाँ रम्यता।
होता देश वहाँ विशाल अब हैं कान्तार पाते जहाँ।
आस्था से अवलोकती वसुमती जो सत्यता-दिव्यता। ८।

भूमा में भव में विभूतितन में भू में मनोभाव में।
होते हैं जितने विकार मल या मालिन्य के सूत्र से।
देती हैं उनको निवृत्त कर वे सद्भाव-सद्बोध से।
हैं संशोधनशील दिव्य कृतियाँ सत्यात्मिका वृत्तियाँ। ९।

कोई है धन के लिये बहँकता कोई धरा के लिये।
कोई राग-विराग से विवश हो है त्याग देता उसे।
कोई वैर-विरोध-क्रोध-मत ले देता उसे है बिदा।
प्यारा है जितना प्रपञ्च उतना है सत्य प्यारा कहाँ। १०।

क्या होगा कपड़ा रँगे, सिर मुड़े, काषायधारी बने।
मालाएँ पहने, त्रिपुंडधर हो, लम्बी जटाएँ रखे।
क्या होगा सब गात में रज मले या वेश नाना रचे।
जो हो इष्ट प्रवञ्चना बन यती जो हो न सत्यव्रती। ११।

हो-हो आकुल स्वार्थ है दहलता, आवेश है चौंकता।
तृष्णा है मुँह ढाँकती, कुजनता है पास आती नहीं।
निन्दा है बनती विमूढ, डर से है भागती दुर्दशा।
देखे आनन सत्य का सहमती हैं सर्व दुर्नीतियाँ। १२।

तारों में दिव के सदैव किसकी है दीखती दिव्यता।
भूतों में भवभूतिमध्य किसका अस्तित्व पाया गया।
जीवों में तरु-लता आदि तक में है कौन सत्ता लसी।
कैसे तो न असत्य विश्व बनता जो सत्य होता नहीं। १३।

सारी विश्व-विभूति के विषय का आधार अस्तित्व है।
है अस्तित्व - प्रमाण सत्य वह जो सर्वत्र प्रत्यक्ष है।
अंतर्दृष्टि समष्टि व्यष्टिगत हो जो दृश्य है देखती।
तो होती रसवृष्टि है हृदय में सत्यात्मिका सृष्टि है। १४।
है विश्वस्त, विभूतिमान, भव का सर्वस्व, सर्वाश्रयी।
है विज्ञान - निधान, ज्ञान-निधि का विश्राम, शान्ताश्रयी।
वादों से बहु अन्यथाचरण से वैदग्ध - व्युत्पत्ति से।
तर्कों से वह क्यों असत्य बनता, है सत्य तो सत्य ही। १५।
चाहे हो रवि या शशांक अथवा हों व्योमतारे सभी।
चाहे हों सुरलोक के अधिप या हों देव देवांगना।
चाहे हो दिव-दामिनी भव-विभा चाहे महाअग्नि हो।
दिव्यों में उतनी मिली न जितनी है सत्य में दिव्यता। १६।
है रम्या गुरुतामयी सहृदया मान्या महत्त्वांकिता।
नाना दिव्य विभूति - भाव - भरिता कान्ता मनोज्ञा महा।
सौम्या शान्ति - निकेतना सदयता की मूर्त्ति संभाविता।
श्वेताभा-सदना सितासिततरा है सिद्धिदा सत्यता। १७।

पंचदश सर्ग

परमानन्द

आनन्द-उद्बोध

[१]

गले लग-लगकर कलियों को।
खिला करके वह खिलता है।
नवल दल में दिखलाता है।
फूल में हँसता मिलता है। १।

अंक में उसको ले-लेकर।
ललित लतिका लहराती है।
छटाएँ दिखला विलसित बन।
बेलि उसको बेलमाती है। २।

पेड़ के पत्ते-पत्ते में।
पता उसका मिल पाता है।
दिखाकर रंग-विरंगापन।
फलों में रस भर जाता है। ३।

हरित-तृण-राजिरंजिता हो।
उसे बहु व्यञ्जित करती है।

गोद में वसुधा की दबकी।
दूब उसका दम भरती है। ४।

शस्य, श्यामल परिधान पहन।
मन्द आन्दोलित हो-होकर।
ललकते जन के लोचन में।
भाव उसके देता है भर। ५।

बन, बहुत बन-ठनकर उसको।
पास बिठलाये रहता है।
बने रहकर उसका उपवन।
विकस हँस विलस निबहता है। ६।

रुचिर रस से सिंचित हो-हो।
बड़े मीठे फल चखता है।
सविधि आवाहन कर उसका।
वनस्पति निज पति रखता है। ७।

रमण कर तृण से तरु तक में।
भाँवरें भव में भरता है।
सहन आनन्द भला किसको।
नहीं आनन्दित करता है। ८।

[२]

जलधि के नील कलेवर को।
सुनहला वसन पिन्हाता है।

दिवाकर का कर जब उसमें।
जागती ज्योति जगाता है। १।

जब छलकतीं बूँदें उसकी।
मंजु मोती बन जाती हैं।
जब सुधा-धवल बनाने को।
चाँदनी रातें आती हैं। २।

तब ललकते दृगवालों को।
कौन उल्लसित बनाता है।
कौन उमगे जन-मानस को।
बहुत तरंगित कर पाता है। ३।

सरस धाराएँ सरिता को।
सुनातीं अपना कल-कल रव।
मनाती हैं जब राका में।
दीप-माला-जैसा उत्सव। ४।

नाचने लगती हैं लहरें।
चन्द्र-प्रतिबिम्बों को जब ले।
कौन तब उर-मन्दिर में आ।
बजाता है मंजुल तबले। ५।

शरद में जब सर शोभित हो।
मानसरवर बन जाता है।

जब कमल-माला अलिमाला।
हंस-मालाएँ पाता है। ६।
सलिल जब ले इनकी छाया।
ललित लीलामय बनता है।
कौन तब आ वितान अपना।
मुग्ध जन मन में तनता है। ७।
उड़ा छींटे क्षिति-अंचल में।
कान्त मुक्तावलि भरता है।
किसी उत्साहित जन-जैसा।
उत्स जब उत्सव करता है। ८।
मुकुर मंजुल गिरते जल में।
दिव्य दृश्यों को दर्शित कर।
उस समय दर्शक के उर में।
कौन ललकें देता है भर। ९।
मिले सौन्दर्य मलय-मारुत।
कुसुम-कोरक-सा है खिलता।
कौन-सा है वह रम्य स्थल।
जहाँ आनन्द नहीं मिलता। १०।

[३]

हिमाचल-जैसा गिरिवर जो।
गगन से बातें करता है।

उर-भवन में भावुक के जो।
भूरि भावों को भरता है। १।

लसित है जिसके अंचल में।
काश्मीरोपम रम्य स्थल।
जिसे अवलोके बनता है।
विमोहित वसुधा-अन्तस्तल। २।

दिवसमणि निज कर से जिसको।
मणि-खचित मुकुट पिन्हाता है।
नग - निकर से परिपूरित रह।
नगाधिप जो कहलाता है। ३।

देख कृति जिसकी क्षण-भर भी।
छटा है अलग नहीं होती।
जलद आलिंगन कर जिसपर।
बरसते रहते हैं मोती। ४।

अंक में जिसके रस रख-रख।
सरसता - सोता बहता है।
वह किसे मानस-वारिधि का।
कलानिधि करता रहता है। ५।

ज्योति जग में भर देते हैं।
कलश जिनके रवि-बिम्बोपम।

सहज सौन्दर्य - विभव जिनको।
सिद्ध करते हैं सुरपुर-सम।६।

पताका उड़ - उड़ पावनता।
पता का पथ बतलाती है।
मधुर ध्वनि जिनके घंटों की।
ध्वनित हो मुदित बनाती है।७।

भावमय दृश्यों का दर्शन।
भक्ति - रति उर में भरता है।
शान्तिमय जिनका वातावरण।
प्रभावित चित को करता है।८।

लसित जिनमें दिखलाती है।
भव्यतम मूर्त्ति भावना को।
सत्यता शिवता से भरिता।
देवता की बाँकी झाँकी।९।

बहु सुमन महँक-महँक महँका।
जिन्हें महनीय बनाते हैं।
दिव्य वे देवालय किसको।
उर-गगन द्युमणि बनाते हैं।१०।

रमा रमणीय करालंकृत।
कारु कार्यावलि कान्त निलय।

चारुतम चित्रों से चित्रित।
गगनचुम्बी नृप-मंदिर-चय।११।
विविधताओं से परिपूरित।
विश्व-वैचित्र्यों के सम्बल।
विपुल विद्यालय रंगालय।
उच्च दुर्गावलि रम्य स्थल।१२।
मनोहर नगर नागरिक जन।
विपणि की वस्तु उत्तमोत्तम।
धरा धनदों के सज्जित सदन।
दिव्य दूकानें नग निरुपम।१३।
विविध अद्भुत विभूतियों से।
भव्यता से भूषित जल-थल।
बनाते रहते हैं किसको।
हृदय-सर का प्रफुल्ल उत्पल।१४।
प्रकृति का है हँसमुख बालक।
आत्मसुख का अमूल्य सम्बल।
हास का है 'आनन्द'-जनक।
स्वर्ग-उपवन विकसित शतदल।१५।

[४]

सहज अनुराग-राग से जब।
रंगिणी ऊषा भरती है।

पाँवड़े डाल लाल पट के।
अरुण स्वागत जब करती है। १।

विहँसती दिशा-सुन्दरी से।
गले मिल जब मुसकाती है।

स्वयं आरंजित होकर जब।
उसे रंजिता बनाती है। २।

जब दिवसमणि गगनांगण को।
बना मणिमय छवि पाता है।

धरा को किरणावलि-विरचित।
दिव्यतम वसन पिन्हाता है। ३।

देख लुटते तारकचय को।
उन्हें अन्तर्हित करता है।

जगा जगती के जीवों को।
ज्योति जन-जन में भरता है। ४।

प्रभा देकर प्रभात को जब।
प्रभासंयुत कर पाता है।

लोक को उल्लासों से तब।
कौन उल्लसित बनाता है। ५।

लाल नीले पीले उजले।
जगमगाते नभ के तारे।

किरण - मालाओं से बनते।
किसी ललके दृग के तारे। ६।

तिमिर में जगमग-जगमग कर।
ज्योति जो भरते रहते हैं।
जो सदा चुप रह-रहकर भी।
न जाने क्या - क्या कहते हैं। ७।

मोहते हुए मनों को जब।
दिखाते हैं वे छवि न्यारी।
कौन तब देता है दिखला।
दृगों को फूली फुलवारी। ८।

कलानिधि मंद-मंद हँसकर।
जब कलाएँ दिखलाता है।
जिस समय राका-रजनी को।
चूमकर गले लगाता है। ९।

चाँदनी छिटक-छिटककर जब।
धरा को सुधा पिलाती है।
रजकणों का चुम्बन कर जब।
उन्हें रजताभ बनाती है। १०।

नवल श्यामलतन नीरद जब।
गगनतल में घिर आते हैं।

पुरन्दर - धनु से हो विलसित।
जब बड़ी छटा दिखाते हैं।११।
दामिनी दमक - दमक थोड़ा।
छटा चिति पर छिटकाती - सी।
अंक में नव जलधर के जब।
दिखाती है मुसुकाती - सी।१२।
किनारों पर उन जलदों के।
श्यामता है जिनकी विकसित।
अस्त होते रवि की किरणें।
लगाती हैं जब लैस ललित।१३।
गगनतल को उद्भासित कर।
चमकते हैं जब उल्काचय।
कौन तब इन बहु दृश्यों से।
बनाता है महि को मुदमय।१४।
मुग्धता का सुन्दर साधन।
विविध भावों का अभिनन्दन।
सुखों का है आनन्द सुहृद।
विकासों का है नन्दनवन।४।

[५]

मुग्धता जन - मानस में भर।
बहु कलाएँ दिखलाता है।

बैठ कोकिल - कुल-कंठों में।
कौन काकली सुनाता है।१।

चहकती ही वह रह जाती।
नहीं चाहत उसको छूती।
मिले किसका बल तूती को।
बोलती रहती है तूती।२।

पपीहा पी - पी कहता है।
प्यार से भरा दिखाता है।
गले से किसके गला मिला।
गीत उन्मादक गाता है।३।

कान में सुननेवालों के।
सुधा - बूँदें टपकाता है।
सारिका के सुन्दर स्वर को।
बहु सरस कौन बनाता है।४।

लोक - हितकारक शब्दों को।
आप रट उन्हें रटाता है।
शुकों के कोमल कंठों को।
कौन प्रिय पाठ पढ़ाता है।५।

लोक के ललचे लोचन को।
बहु - विलोचनता भाती है।

मोर के मंजुल नर्त्तन में।
कला किसकी दिखलाती है। ६।

मत्तता में गति में रव में।
रमण कर मोहित करता है।
कपोतों की सुन्दरता में।
कौन मोहकता भरता है। ७।

खगों के कलरव में जव में।
रंग-रूपों में है खिलता।
पंख छवि में रोमावलि में।
कहाँ आनन्द नहीं मिलता। ८।

[६]

विपंची के वर वादन में।
ध्वनित किसकी ध्वनि होती है।
तानपूरों की कोर-कसर।
कान्तता किसकी खोती है। १।

बज रही सारंगी-स्वर में।
रंग किसका दिखलाता है।
सितारों के तारों में भी।
तार किसका लग पाता है। २।

मचलना ठुमक - ठुमक चलना।
फूल - जैसा ही खिल जाना। २।
सुने देखे मानव किसकी।
याद करता है वह लीला।
सकल भव में जो है व्यापित।
बन महा अनुरंजन - शीला। ३।
कामिनी के उस मृदु मुख में।
कहा जो गया कलाधर-सा।
रस बरस जाने से जिसके।
सरस होती रहती है रसा। ४।
लोच-लालित उस लोचन में।
भरी है जिसमें रोचकता।
प्रेम - जलबिन्दु झलकते हैं।
जहाँ वैसे जैसे मुक्ता। ५।
अधर पर लसी उस हँसी में।
सुधा जो वसुधातल की है।
जिसे देखे पिपासिता बन।
लालसा सब दिन ललकी है। ६।
उन ललित हावों - भावों में।
केलियों में जिनकी कलता।

मोहती किसे नहीं, मनसिज।
पा जिसे भव को है छलता। ७।
उन विविध परिहासादिक में।
मुदित चित्त जिससे है खिलता।
कला किसकी दिखलाती है।
कौन है रमा हुआ मिलता। ८।
मानवों के प्रफुल्ल मुख पर।
छटा किसकी दिखलाती है।
वीर - हृदयों की वरता में।
भूति किसकी छवि पाती है। ९।
कौन करुणाद्रव बूँदों में।
झलकता पाया जाता है।
हास्य - रस के सर्वस्त्रों में।
कौन हँसता दिखलाता है। १०।
जुगुप्सा की लिप्साओं में।
कौन शुचि रुचि से रहता है।
कौन वह शान्तभूत चित में।
शान्तिधारा बन बहता। ११।
वह गरलता से बचने को।
सती की-सी गति-मति सिखला।

कौन बनता है महिमामय।
रुद्रता में शिवता दिखला। १२।

देख थर-थर कँपते नर को।
परम पाता-पद लेता है।
कौन भय-भरित मानसों को।
अभयता का वर देता है। १३।

विचित्र-चरित्र चरित्रों को।
सुचित्रित कर चमकाता है।
कौन अद्भुतकर्मा नर के।
अद्भुतों का निर्माता है। १४।

विविध भावों का है वैभव।
विभावों का है आलम्बन।
रसों का है आनन्द-रसन।
रसिक जन का है जीवन-धन। १५।

[८]

'बताता है किसको वह दिव्य।
कपोलों पर का कलिताभास।
प्रकट करता है किसकी भूति।
सरस मानस का मधुर विकास। १।

दृगों में भरकर कोमल कान्ति।
वदन को देकर दिव्य विकास।
किसे कहता है बहु कमनीय।
अधर पर विलसित मंजुल हास। २।

जगाकर कितने सुन्दर भाव।
भगाकर कितने मानस-रोग।
हुए उन्मुक्त कौन-सा द्वार।
खिलखिलाने लगते हैं लोग। ३।

दामिनी-सी बन दमक-निकेत।
सरसता-लसिता सिता-समान।
कढ़ी किससे पढ़ मोहनमंत्र।
मधुरिमामयी मंजु मुसकान। ४।

बना बहु भावों को उत्फुल्ल।
कर भुवन भावुकता की पूर्त्ति।
बढ़ाती है किसकी कल कीर्त्ति।
मनोहर प्रसन्नता की मूर्त्ति। ५।

बन विविध केलि-कला-सम्पन्न।
विमोहक सकल विलास-निवास।
विदित करता है किसकी वृत्ति।
किसी अन्तस्तल का उल्लास। ६।

चित को बहु चावों के साथ।
बनाता रहता है हिन्दोल।
किस समुद्वेलित निधिसंभूत।
चपलतम अट्टहास-कल्लोल।७।

विकच बन वारिज-वृन्द-समान।
दे भुवन-अलि को मोद-मरन्द।
मुग्ध करता है रच बहु रूप।
लोक-उर अभिनन्दन आनन्द।८।

[९]

कलुषित आनन्द

हैं बहुत ही उमंग में आते।
नाचते - कूदते दिखाते हैं।
वैरियों का विनाश अवलोके।
लोग फूले नहीं समाते हैं।१।

कम नहीं लोग हैं मिले ऐसे।
मौज जिनको रही बहुत भाती।
और की देखकर हँसी होते।
है हँसी-पर-हँसी जिन्हें आती।२।

वे लगे आसमान पर चढ़ने।
जो रहे राह के बने तिनके।

और को पाँव से मसल करके।
पाँव सीधे पड़े कहाँ किनके। ३।
काल - इतिहास बन्द ताले में।
देख लो ख्याति की लगा ताली।

कर लहू और पान कर लोहू।
क्या न मुँह की रखी गई लाली। ४।
काटकर लाख-लाख लोगों को।
जय - फरेरे गये उड़ाये हैं।

छीनकर राज छेद छाती को।
बहु महोत्सव गये मनाये हैं। ५।
लाल भू-अंक को लहू से कर।
बहु कलेजे गये निकाले हैं।

मोद से मत्त हो बजा बाजे।
सिर कतरकर गये उछाले हैं। ६।
आ चुके हैं अनेक ऐसे दिन।
जब नृमणि बिध गया बिलल्ले-से।

मच गई धूम जब बधाई की।
जब बजीं नौबतें धड़ल्ले से। ७।
क्यों बतायें महाकुकर्मों ने।
लोक का है अहित किया जितना।

आह ! आनन्द से महत्तम में।
किस तरह भर गया कलुष इतना । ८ ।

[१०]

दौड़कर नहीं उठाते क्यों।
क्यों मनुजता को ठगते हैं।
देख फिसले को गिर जाते।
लोग क्यों हँसने लगते हैं। १।

फाँसकर निज पंजे में क्यों।
शिकंजे में चाहे कसना।
करे मतिमंद किसी को क्यों।
किसी का मंद - मंद हँसना। २।

व्यंग से भरा हुआ क्यों हो।
मौन रह क्यों मारे ताना।
बने क्यों गरल तरल धारा।
किसी का मानस मुसकाना। ३।

अपटुता - पुट मृदुता में दे।
हृदय में क्यों कटुता भर दे।
हास नर-सद्भावों का क्यों।
किसी का अट्टहास कर दे। ४।

मुँह खुला जो न सुगंधित बन।
किसी से हिले-मिले तो क्या।
रज-भरा जो है मानस में।
फूल की तरह खिले तो क्या।५।

लोकरंजन करनेवाली।
चाँदनी जो न छिटक पाई।
किसलिये हृदय हुआ विकसित।
हँसी क्यों होठों पर आई।६।

मलिन हो पड़ा कीच में है।
परम उज्ज्वल पावन सोना।
बन गया जो विलसितामय।
किसी का सउल्लास होना।७।

विफल कर जीवन औरों का।
मिलेगी उसे सफलता क्यों।
जो नहीं फूल बरसती है।
कहें उसको प्रफुल्लता क्यों।८।

बना अवसन्न दूसरों को।
जो अहितरता अवनता है।
नहीं जो है प्रसन्न करती।
तो कहाँ वह प्रसन्नता है।९।

नहीं है जिसमें मधुमयता।
बना जो कटुता - अनुमोदक।
नहीं जो है प्रमोद देता।
मोद तो कैसे है मोदक।१०।

किसी उत्फुल्ल सरोरुह - सा।
हृदय को नहीं खिलाता जो।
कहें उसको विनोद कैसे।
विनोदित नहीं बनाता जो।११।

कलह को जो अंकुरित बना।
बचाये मुँह जैसे - तैसे।
बीज बो दे विवाद का जो।
कहें आमोद उसे कैसे।१२।

वह नहीं हँसा सका जिसको।
उसे फिर कौन हँसायेगा।
विषादित बना दूसरों को।
हर्ष क्यों हर्ष कहायेगा।१३।

सहज हो सुन्दर हो जिसमें।
कलुष का लेश नहीं होता।
वही आनन्द कहाता है।
बहाये जो रस का सोता।१४।

[११]

मिले कितने ऐसे जिनकी—
जीभ कटु कहु है रस पाती।
सुने पर-निन्दा कानों में।
है सुधा-बूँद टपक जाती। १।

गालियाँ बक-बक कर कितने।
परम पुलकित दिखलाते हैं।
बुराई कर-कर औरों की।
कई फूले न समाते हैं। २।

बला में डाल-डाल कितने।
बजाने लगते हैं ताली।
छीन लेते हैं हँस कितने।
पड़ोसी की परसी थाली। ३।

लूट ले-लेकर अन्यों को।
किसी को मिलती है थाती।
पीस पिसते को बनती है।
किसी की गज-भर की छाती। ४।

चहकते फिरते हैं कितने।
बने परकीया के प्यारे।

लोप कर अन्य कीर्त्ति कितने।
तोड़ते हैं नभ के तारे।५।

तोड़कर दाँत दूसरों का।
किसी के दाँत निकलते हैं।
उछलने लगते हैं कितने।
जब किसी को वे छलते हैं।६।

चोट पहुँचा-पहुँचा कितने।
काम चोरी का करते हैं।
बहुत हैं हरे-भरे बनते।
जब किसी का कुछ हरते हैं।७।

लुभा ललनाओं को कितने।
बहँक बनते हैं छविशाली।
जाल में फाँस युवतियों को।
बचाते हैं मुँह की लाली।८।

मोहते रहते हैं कितने।
मोह से हो-हो मतवाले।
छलकते प्याले बनते हैं।
छातियों में छाले डाले।९।

काम-मोहादि प्रपंचों से।
वासनाओं से हो बाधित।

प्रायशः होता रहता है।
मनुज आनन्द महाकलुषित।१०।

[१२]

परमानन्द

सत्य ही है जिसका सर्वस्व।
धर्ममय है जिसका संसार।
ज्ञानगत है जिसका विज्ञान।
रुचिरतम है जिसका आचार। १।

जिसे सच्चा है तत्त्व-विवेक।
शुद्ध है जिसका सर्व विचार।
लोकप्रिय है जिसका सत्कर्म।
प्रेम का जो है पारावार। २।

भूतहित से हो-हो अभिभूत।
भूतिमय है जिसकी भवभक्ति।
जिसे है करती सदा विमुग्ध।
मनुजता की महती अनुरक्ति। ३।

जो समझ पाता है यह मर्म।
सत्य-प्रेमी हैं सब मत पंथ।
एक हैं सार्वभौम सिद्धान्त।
मान्य हैं सर्व धर्म के ग्रन्थ। ४

देश को कहते हुए स्वदेश।
जिसे है सब देशों से प्यार।
सगे हैं जिसके मानव मात्र।
सदन है जिसका सब संसार। ५।

ललित लौकिकता में अवलोक।
अलौकिकता की व्यापक पूर्त्ति।
मानता है जो हो-हो मुग्ध।
विश्व को विश्वात्मा की मूर्त्ति। ६।

भरी है भव में जो सर्वत्र।
ज्ञान-अर्जन की सहज विभूति।
देख उसको जिसकी वर दृष्टि।
लाभ करती है प्रिय अनुभूति। ७।

जो कलुष का करता है त्याग।
सताता जिसे नहीं है द्वन्द्व।
जिसे उद्बोध-मर्म है ज्ञात।
वही पाता है परमानन्द। ८।

[१३]

दिव-विभा की विभूतियों में जो।
है सदा उस दिवेन्द्र को पाता।

जिस किरीटी-किरीट-मणियों का ।
एक मणि है द्युमणि कहा जाता । १ ।

देखता है विमुग्ध हो-हो जो ।
व्योम के दिव्यतम कतारों को ।
विभु महाअब्धि-अंक में विलसे ।
बुद्बुदोपम अनन्त तारों को । २ ।

दृष्टि में है बसी हुई जिसकी ।
लालिमा उस ललामतामय की ।
लोक की रंजिनी उषा जिससे ।
पा सकी सिद्धियाँ स्वआलय की । ३।

है प्रभावित हुआ हृदय जिसका ।
उस प्रभावान की प्रभा द्वारा ।
पा रही है विभूतियाँ जिससे ।
भा-भरी व्योम-सुरसरी-धारा । ४ ।

हैं सके देख दिव्य दृग जिसके ।
वह महत्ता महान सत्ता की ।
प्रीतिमय हो प्रसादिका जो है ।
सृष्टि के एक-एक पत्ता की । ५ ।

चित्त है यह बता रहा जिसका ।
लोकपति की विचित्र लीला है ।

है धरित्री भरी प्रसूनों से।
उडुगणागार व्योम नीला है।६।

है यही सोचती सुमति जिसकी।
मूल में है महान मौलिकता।
कल्पना है अकल्पना बनती।
लोक में है भरी अलौकिकता।७।

ब्रह्म की उस ललित कला को जो।
है लसी लोक-मध्य बन सुखकन्द।
देख पाया प्रफुल्ल हो जिसने
क्यों मिलेगा उसे न परमानन्द।८।

[१४]

निरवलम्बों का हो अवलम्ब।
व्यथाएँ कर व्यथितों को दूर।
तिमिर-परिपूरित चित्त-निमित्त।
सदा बन-बन सहस्रकर सूर।१।

वैरियों से कर कभी न वैर।
अहित-हित-रत रह-रह सब काल।
विलोके विपुल विभुक्षित-वृन्द।
समर्पण कर व्यंजन का थाल।२।

सदयता सहानुभूति - समेत।
दुर्जनों को दे समुचित दंड।
दलन कर वर विवेक के साथ।
पतित पाषण्डी-जन पाषण्ड।३।
मानकर उचित बात सर्वत्र।
दान कर सबको वास्तव स्वत्व।
छोड़कर दंभ - द्रोह - दुर्वृत्ति।
त्याग कर स्वार्थ - निकेत निजत्व।४।
छोड़ हिंसा-प्रतिहिंसा-भाव।
दूर कर मानस-सकल-विकार।
नीति - पथ पर हो दृढ़ आरूढ़।
त्याग कर सारा अत्याचार।५।
हो दलित - मानस-लौह-निमित्त।
मंजुतम पारस तुल्य महान।
किये कंगालों का कल्याण।
अकिंचन को कर कंचन-दान।६।
महँक की मोहकता अवलोक।
सच्चरित-सुमनों से कर प्यार।
प्रकृति के कान्त गले में डाल।
शील-मुक्तामणि मंजुल हार।७।

कर कुटिल-हृदय-हृदय को कान्त ।
मन्द मानस को कर सुखकन्द ।
लोक-कण्टक को विरच प्रसून ।
सुजन पाता है परमानन्द ।८।

[१५]

मनन कर सादर सत्साहित्य ।
सुने लोकोत्तर कविता - पाठ ।
किसी वांछित कर से तत्काल ।
खुले जी की चिरकालिक गाँठ ।

विषय का होवे मर्मस्पर्श ।
भरा हो जिसमें अनुभव - मर्म ।
ललित भावों में हो तल्लीन ।
किये कल-कौशलमय कवि-कर्म ।२।

धर्म ममता शुचिता सद्भाव ।
सदाशयता हों जिसके अंग ।
सुने वह विबुध - कंठसंभूत ।
मधुरतम पावन कथा-प्रसंग ।३।

लोक - परलोक-दिव्य - आलोक ।
लसित, जिसका हो धर्म - प्रसंग ।

सर्वहित हो जिसका सर्वस्व।
किये ऐसा पुनीत सत्संग ।४।

सरसतम स्वर-लय-ताल-समेत।
सुधारस - सिक्त कण्ठ से गीत।

लोकहित, भवरति, भाव-उपेत।
सुने रसमय स्वर्गिक संगीत ।५।

निगम का महा अगम झङ्कार।
आगमों का कमनीय निनाद।

श्रवण कर बड़े प्रेम के साथ।
उपनिषद् का अनुपम संवाद ।६।

लगा आसन, समाधि में बैठ।
कर्णगत हुए अनाहत नाद।

विलोके वांछनीय विभुमूर्त्ति।
कर अलौकिक रस का आस्वाद ।७।

हृदय में बहती है रसधार।
दिव्य बनता है मानस-द्वन्द्व।

विवृत हो जाते हैं युग नेत्र।
मनुज पाता है परमानन्द ।८।

[१६]

शार्दूल-विक्रीडित

हैं सेवा करती प्रसन्न मन से होते समुत्सन्न की ।
पोंछा हैं करती प्रफुल्ल चित से आँसू व्यथाग्रस्त का।
जाती हैं बन पोत पूत रुचि से दुःखाब्धि में मग्न का।
पूर्णानन्द - निकेतना प्रकृति की हैं सात्विकी वृत्तियाँ ।१।
प्यासे को जल दे, विपन्न जन को आपत्तियों से बचा।
चिन्ताएँ कर दूर चिन्तित जनों की चिन्त्य आदर्श से।
बाधाएँ कर ध्वस्त व्यस्त जन की संत्रस्त को त्राण दे।
होती है सुखिता सदा सदयता हो पूर्ण आनन्दिता ।२।
हो राका-रजनी - समान रुचिरा हो कीर्त्ति से कीर्त्तिता।
हो सत्कर्म - परायणा सहृदया हो शान्ति से पूरिता।
हो सेवा - निरता उदारचरिता हो लोक - सम्मानिता।
होती हैं अभिनन्दिता सुकृतियाँ हो भूरि आनन्दिता ।३।
पाता है वह सत्य का; पतित को है पूत देता बना।
पाते हैं उसको सचेत उसमें है पूर्त्ति चैतन्य की ।
है उद्धारक धर्म का सतत है सत्कर्म का संग्रही।
है आनन्द-निधान मूर्त्ति भव में श्रीसच्चिदानन्द की ।४।
चाहे हों रवि सोम शुक्र अथवा हो व्योम - तारावली।
चाहे हों ललिता लता - तृण हरे उत्फुल्ल वृन्दावली ।

चाहे हों भव भव्य दृश्य सबको देखे महादिव्यता।
क्यों आनन्दविभोर हो न वह जो आनन्दसर्वस्व है।५।
चाहे हो नभ नीलिमा - निलय या भू शस्य से श्यामला।
चाहे हो वन हरी भूमि अथवा हो वृक्ष रम्य स्थली।
पाता है वह प्रेमदेव - विभुता की व्यंजना विश्व में।
पूर्णानंद मिला कहाँ न उसको जो प्रेमसर्वस्व है।६।
है विख्यात मनोज्ञ मानसर के कान्तांबुजों की कथा।
देखा है खिलना गुलाब - कुल का नीपादि का फूलना।
जानी है कुसुमावली - विकचता आम्रादि की हृष्टता।
होती है अतुला प्रफुल्ल चित की आनन्द - उत्फुल्लता।७।
भू पाये ऋतु-कान्त-कान्ति उतनी होती नहीं मोदिता।
होता व्योम नहीं प्रसन्न उतना पा शारदी पूर्णिमा।
देखे दिव्य तमा विभूति भव की पा वृत्ति सर्वोत्तमा।
होती है जितनी विमुग्ध मन को आनन्द - उन्मत्तता।८।
देती है भर भाव में सरसता कान्तोक्ति में मुग्धता।
खोती है तमतोम लोक - उर का आलोक - माला दिखा।
कानों में चित में विमुग्ध मन में है ढाल पाती सुधा।
हो दिव्या सविता - समान कविता देती महानन्द है।९।
लाती है चुन फूल को सुकरता से नन्दनोद्यान से।
लेती है फल कल्प से सुरगवी को है सदा दूहती।

दे - देके तम को प्रकाश, भरती है भाव में भव्यता।
हो दिव्या दिव भासमान प्रतिभा पाती महानन्द है।१०।

पाते जीवन हैं प्रफुल्ल बनके सद्भाव - पौधे सदा।
होती है सरसा प्रवृत्ति - लतिका हो सर्वथा सिंचिता।
है सिक्ता बनती सुचारु रुचि ही दूर्वा-समा शोभना।
प्राणी के उर - भूमिमध्य महती आनन्द - धारा बहे।११।

नाना प्राणिसमूह पोषणरता है मेघमाला - समा।
है वैसी रस - दायिका सकल को जैसी कि देवापगा।
पाते हैं सुख - साधिका शरद् की शान्ता सिता - सी उसे।
हो जाती मति है महान - हृदया आनन्दमग्ना बने।१२।

झाँकी है उसकी कहाँ न, झुकके औ' झाँकके देख लो।
है होती रहती दिशा सुखरिता सत्कीर्त्ति - आलाप से।
है नाचा करती विभूति विभु की द्रष्टा - दृगों में सदा।
है आनन्दनिमग्नभूत जन को आनन्दमग्ना मही।१३।

प्यारा है जितना स्वदेश उतना है प्राण प्यारा नहीं।
प्यारी है उतनी न कीर्त्ति जितनी उद्धार की कामना।
उत्सर्गीकृत मातृभूमि पर जो सन्तान है, धन्य है।
पाता है वह महानन्द बनता जो त्यागसर्वस्व है।१४।

परमानन्द

जो है मूर्त्ति विवेक की, प्रगति है जो ज्ञान-विज्ञान की।
जो है सर्वजनोपकार - निरता प्रज्ञामयी मुक्तिदा।
जो है प्रेमपरायणा, मनुजतासर्वस्व, सत्यप्रिया।
है विद्या वह महानन्द - जननी, शुद्धा, परासंज्ञका।१५।

'पारिजात' का शुद्धाशुद्ध-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१७	क्रीडा	क्रीड़ा
७	१४	पीडित	पीड़ित
१६	१४	स्वाभावकी	स्वाभाविकी
२२	७	निविड	निविड़
२३	८	जडीभूत	जड़ीभूत
,,	१५	जड	जड़
,,	,,	अजड	अजड़
२५	७	जड	जड़
२६	६	क्रीडा	क्रीड़ा
४२	२०	मिस	मिष
४४	१०	प्रगटीं	प्रकटीं
४६	१६	तेजम्विता	तेजस्विता
४८	२०	रंजनी	रंजिनी
५१	२०	उडु	उडु
५१	१२	उडु	उडु
५३	९	उडु	उडु
५४	८	क्रीडाएँ	क्रीड़ाएँ
५६	११	हुई	हुईं
,,	१३	जडता	जड़ता
५७	१०	क्रीडा	क्रीड़ा
५९	३	सिचती	सिंचती
६०	१५	सानद	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	६	हैं	है
६७	६	उडुगण	उडुगण
७०	१०	उदु	उडु
७६	१८	क्रीडा	क्रीड़ा
८०	१७	उनके	उसके
८२	१५	जिसका	जिनका
११५	६	फला	वाला
१२७	७	नीधि	निधि
१६३	१	मूत्ति	मूर्त्ति
१७०	३	जिसकी	किसकी
१६४	१६	पर	पड़
२०१	१२	था	थीं
२०५	११	जाती	मिलती
,,	१३	त्रिहँग	त्रिहग
२३४	४	घड़ियाँ	छड़ियाँ
२३५	१२	मार	भर
२४४	१३	निले	मिले
२४६	३	सीचें	सोचें
२४८	१६	उनके	उसके
२४६	१६	फुत्कार	फूत्कार
,,	१७	समान	मसान
२५२	७	परती	करना
२६०	११	चढ़ते	मिलते
२७१	८	है	हैं
२८०	१२	की	को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८२	१४	हैं	है
२९८	७	सुमन	सुमनस
,,	७	सुनन्दन	नन्दन
३०१	४	रहता	हरता
३११	२	सँवारे	सँवारे
,,	७	सर्वोमत्त	सर्वोत्तम
३१४	१०	वधुता	बंधुता
,,	२०	उत्फुल्लिता	उत्फुल्लता
३१५	४	दिवि	दिव
,,	१२	,,	,,
३१७	४	अकम	अकर्म
३३४	१	दिवि	दिव
३४८	११	का	की
३५०	८	सकती	पाती
३५९	१	लातीं	लाती
,,	७	जडता	जड़ता
३६२	१२	हा	हो
३६३	२०	क्रद्ध	क्रुद्ध
३७०	८	भले	भले ही
३९८	७	प्रतिपाला	प्रतिपाली
४१२	६	कीत्ति	कीर्त्ति
४१४	१२	देता	देती
४२७	८	उजियाली	उँजियाली
४२८	४	उजियाली	उँजियाली
४४७	१४	पुएप	पुण्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध
४५६	२	सिची
४७६	१	चन
४८१	१७	सहन
४८२	१०	बहुत
,,	११	का
४९८	१	चित
५१४	५	ही

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध
४५६	३	सिची
४७६	१	वन
४८१	१७	सहन
४८२	१०	बहुत
,,	११	का
४९८	१	चित
५१४	५	ही